THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_178980

UNIVERSAL
LIBRARY

पौष, 1883
जनवरी, 1962
वर्ष 3 : अंक 4

पुरातत्व विशेषांक

संस्कृति

प्राच्या नव्या विलसतुतरां संस्कृतिर्भारतीया

सांस्कृतिक विचारो की प्रतिनिधि त्रैमासिक पत्रिका

सम्पादकीय मडल

श्री रामधारीसिह 'दिनकर'
डा० नगेन्द्र
श्री दु० क० हिंगोरानी
राजेन्द्र द्विवेदी (सचिव)

(चैत्र, आषाढ, आश्विन और पौष मे प्रकाशित)

'संस्कृति' मे प्रतिपादित विचार लेखको के होते है, सस्कृति के नही। अन्यत्र न छपी रचनाए ही स्वीकृत की जाती है, पर फिर उन्हे 'सस्कृति' का उल्लेख करके उद्धृत किया जा सकता है। ऐसे प्रकाशन की एक प्रति सपादक के पास भेजी जानी चाहिए।

समीक्षा के लिए पुस्तको की दो-दो प्रतिया भेजी जानी चाहिए। चन्दा मनी-आर्डर से भेजा जाना चाहिए।

सपादक 'सस्कृति'
वैज्ञानिक अनुसधान और सास्कृतिक कार्य मत्रालय, 1 ई० 3 करजन रोड बैरक्स, नई दिल्ली।

वार्षिक चन्दा : चार रुपये
एक प्रति : एक रुपया
आवरण : योगेन्द्रकुमार लल्ला

विषय-सूची

भारत में पुरातत्वीय कार्य

1 भारतीय पुरातत्व के सौ वर्ष
अमलानन्द घोष
9 भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण
यज्ञदत्त शर्मा
13 स्वाधीनता के बाद खोज और खुदाई
ब्रजवासीलाल
30 अभिलेखों विषयक शोध कार्य
बहादुरचन्द्र छाबडा
33 पुरातात्विक सरक्षण
एम० एन० देशपाडे
36 भारत में पुरातत्व प्रशिक्षण
वी० डी० कृष्णस्वामी
40 भारत की प्राचीन वस्तु सम्बन्धी विधि
अमलानन्द घोष
43 पुरातत्वीय महत्व के स्थलों पर संग्रहालय
केदारनाथ पुरी
48 भारतीय पांडुलिपियां
फूलचन्द्र पांडेय
52 अंग्रेजों का योगदान
डब्ल्यू० जी० आर्चर
54 पुरातत्व में विज्ञान का योगदान
बी० बी० लाल

विदेशों में पुरातत्व

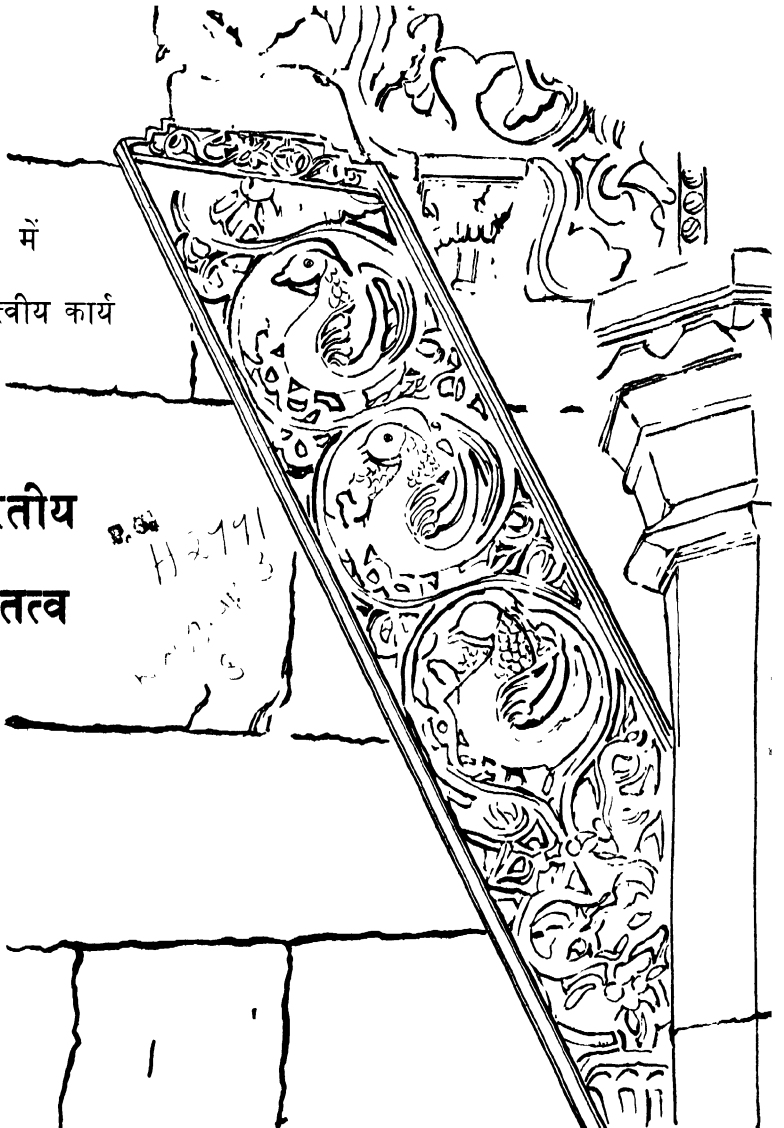
इडोनेशिया का पुरातत्व 66
एम० शरदजिलो
बिलोचिस्तान की प्रागैतिहासिक संस्कृति 68
रामकिशोर शर्मा
ईरान में पुरातत्व 71
महमूद तफज्जुली
नूबिया के स्मारक 73
एम० रियाद अलैतर
वियना में मुगल कला 76
प्रेमनारायण अग्रवाल

PROVIDERS OF READING MATERIALS
vitaran
Sultan Bazar

भारत में

पुरातत्वीय कार्य

भारतीय पुरातत्व के सौ वर्ष



अमलानन्द घोष

भारत की पुरातत्वीय सम्पत्ति अठारहवी शती के अन्तिम चरण मे ही ब्रिटिश ईस्ट इडिया कम्पनी के अधिकारियो का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने लगी थी। सन् 1874 मे सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश सर विलियम जोन्स की पहल और नेतृत्व मे कलकत्ता मे 'एशिया के इतिहास पुरावस्तुओ, कला, विज्ञान और साहित्यो का अन्वेषण' करने के लिए 'एशियाटिक' सोसायटी की स्थापना की गयी थी। इस सोसायटी के सस्थापको मे गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्ज भी थे, जिन्हे दस वर्ष पूर्व इस बारे मे अंग्रेजी के प्रसिद्ध साहित्यिक डा० सेमुअल जानसन का एक पत्र प्राप्त हुआ था, इस पत्र मे पूर्व की परम्पराओ और इतिहास की सम्यक् परीक्षा करने, उसके प्राचीन प्रासादो के अवशेषो का सर्वेक्षण करने और उसके ध्वस्त नगरो के अवशेषो का पता लगाने की सलाह दी गयी थी। सोसायटी की स्थापना से एशियाई अध्ययन मे बहुत बडी प्रेरणा मिली। सन् 1788 मे 'एशियाटिक रिसर्चेज' नामक एक पत्रिका प्रारम्भ की गयी और सन् 1814 मे सोसायटी के कार्यकर्ताओ द्वारा एकत्रित वस्तुओ को रखने के लिए एक सग्रहालय खोला गया।

पुरातत्व का अर्थ प्राचीनकाल के भग्नावशेषो की छानबीन और उनका अध्ययन है, परन्तु सोसायटी के कार्यकलापो का बहुत ही कम भाग इस अर्थ को पूरा करता था। स्मारको की रिपोर्टो के रूप मे जो भी सीमित पुरातत्वीय कार्य किया गया था, वह वैज्ञानिक ढग पर नही हुआ, बल्कि वह दतकथाओ और आश्चर्यपूर्ण विचारो का सम्मिश्रण था। भारतीय पुरा-सामग्री के बारे मे बहुत कुछ ऊलजलूल सोचा और प्रकाशित किया गया। फिर भी कुछ महत्वपूर्ण काम तो हुआ ही। उदाहरणार्थ सन् 1788 मे चार्ल्स विलकिन्स ने आदिकालीन भारतीय गुप्त और कुटिल लिपियो के उद्घाचन की कुजी प्रस्तुत की। होरेस हेमेन विल्सन ने अफगानिस्तान का उल्लेखनीय अन्वेषण किया और उसके बारे मे उस युग की उल्लेखनीय रिपोर्ट प्रकाशित हुई। स्मारको पर छिटपुट रिपोर्टें और सूचनाए भी छपती रही।।

सन् 1800 मे लार्ड वेलेजली ने फ्रांसिस बुकनन को मैसूर का सर्वेक्षण करने के लिए नियुक्त किया। सन् 1807 मे बुकनन को पुन बगाल के थल, इतिहास और पुरासामग्री का सर्वेक्षण करने के लिए नियुक्त किया गया। उसके बाद के आठ वर्षो मे बुकनन ने आठ जिलो का सर्वेक्षण किया। यद्यपि उसकी रिपोर्ट कभी भी प्रकाशित नही हुई, लेकिन 1838 मे उसका जो भी थोडा बहुत भाग उपलब्ध हुआ था, उससे बुकनन के पर्यवेक्षणो मे उनकी पैनी दृष्टि और शुद्धता का आभास होता है।

1838 मे कलकत्ता टकसाल के परखाध्यक्ष जेम्स प्रिंसेप ने ब्राह्मी लिपि का रहस्योद्घाटन किया, इसके पश्चात् ईसा पूर्व

की तीसरी शताब्दी के महान मौर्य सम्राट् अशोक के शिलालेखों का उद्घाचन किया गया और उसकी पश्चिम के कुछ शासकों से, जिनका उसके शिलालेखों मे उल्लेख किया गया था, समकालीनता स्थापित की गयी। प्राचीन भारत के इतिहास के अध्ययन का प्रारम्भ यदि अठारहवी शताब्दी के कुछ पूर्व नही तो उसके आखीर मे तो हो ही गया था, जब अशोक के पितामह चन्द्रगुप्त को सिकदर की जीवन गाथाओं के सेंड्रकोटाज के रूप मे पहचाना गया। अब यह इतिहास एक सुदृढ कालक्रम पर आधारित हो गया।

इस बीच जेम्स फर्गुसन ने उल्लेखनीय कार्य किया। उन्होंने अठारह वर्ष (1829 से 1847 तक) देश का भवन-निर्माण सम्बधी सर्वेक्षण किया और स्मारकों का व्यवस्थित रूप से वर्गीकरण किया।

कुछ थोडे से अपवादों को छोडकर जैसे बुकनन को काम पर लगाना और आगरा तथा दिल्ली के स्मारकों की कभी-कभी मरम्मत, अब तक सरकार ने पुरातत्वीय मामलो पर बहुत कम ध्यान दिया था।

सन् 1844 मे ब्रिटेन की रायल एशियाटिक सोसायटी द्वारा अजता तथा अन्य गुफाओं के रगचित्रों की प्रतिया करने और उन गुफाओं का परिरक्षण करने का अनुरोध किये जाने पर ईस्ट इडिया कम्पनी के कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स ने वर्तमान स्मारकों के स्वरूप, उनकी सख्या और हालत की ठीक-ठीक जानकारी एकत्रित करने के लिए एक आयोग बनाने का फैसला किया। तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड हार्डिंग ने यह प्रस्ताव रखा कि आयोग बनाने के पहले योग्य व्यक्तियों से स्मारकों की प्रारम्भिक रिपोर्टें तैयार करा ली जाए। इसके अनुसार कुछ स्मारकों का सर्वेक्षण करने के लिए कुछ अधिकारी तैनात किये गये पर विशेष काम नही हुआ।

1861 : भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण की स्थापना

सन् 1861 मे सेना-इजीनियर अलक्जेडर कनिघम ने, जो अपनी पुरातत्वीय गतिविधियों के कारण पहले ही प्रसिद्धि पा चुके थे, इस गत्यवरोध को समाप्त करने के लिए साहसपूर्ण कदम उठाया। उन्होंने तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड कैनिंग के मन मे यह बात बैठा दी कि देश मे अन्वेषण का योजनाबद्ध कार्यक्रम अपनाये जाने की महती आवश्यकता है। लार्ड कैनिंग ने उनके प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और उसने भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण की स्थापना की और कनिघम को ही पुरातत्वीय सर्वेक्षक बनाया गया। यह पहला अवसर था जब सरकार ने देश के प्राचीन स्मारकों और अवशेषों के प्रति अपने उत्तरदायित्व को स्पष्ट रूप से मान्यता प्रदान की। इसके साथ यह बात भी थी कि स्मारकों का परिरक्षण, सर्वेक्षण या अन्य किसी सगठन का कार्य नही माना गया था।

नवम्बर 1861 से जनवरी 1862 तक कनिघम ने प्राचीन चीन यात्री फाहियान और ह्वेनसाग के यात्रावर्णनों को आधार मानकर उत्तर भारत के अधिकाश क्षेत्रों का दौरा किया। उसने बहुत से स्मारकों और अवशेषों का सर्वेक्षण किया और उनकी विस्तृत चित्रों सहित पूरी-पूरी रिपोर्टें तैयार की। यह दुर्भाग्य ही था कि पता नही किन कारणों से सरकार ने सन् 1865 मे सर्वेक्षण को समाप्त करने का निर्णय कर लिया।

इसके बाद के पाच वर्षों मे स्मारकों के फोटो तैयार करने और भवननिर्माण सम्बन्धी अवशेषों के साचे ढले प्रतिरूप बनाने की ओर ध्यान दिया गया, लेकिन कोई ठोस काम नही हुआ। सन् 1870 मे ब्रिटिश सरकार के भारत सचिव लार्ड अर्जिल ने यह महसूस किया कि इस दिशा मे कुछ ठोस काम होना चाहिये और यह एक केन्द्रीय सगठन के द्वारा ही सम्भव हो सकता है। इसके परिणामस्वरूप भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण का पुनर्जन्म हुआ और लार्ड कनिघम स्वय उसके पहले महानिदेशक बनाये गये। इस बार उनकी सहायता के लिये दो (बाद मे तीन) सहायक रखे गये थे।

आगामी चौदह वर्ष तक अर्थात् 1865 तक कनिघम और उनके सहायकों ने उत्तरी और पूर्वी भारत के सभी स्थानो की यात्रा की और उन्होंने स्मारकों तथा अवशेषों का पता लगाया, उनका पुनरीक्षण किया और सिक्कों, उत्कीर्ण लेखों, मूर्त्तियों और अन्य पुरावस्तुओं का पता लगाया। स्वय कनिघम ने नीचे लिखे शब्दों मे इन सफलताओं का वर्णन किया है "मैने प्राचीन भारत के अधिकाश मुख्य शहरों और प्रसिद्ध स्थानों जैसे आरनोज की चट्टाने, तक्षशिला नगरी तथा सागला की गढी, जो सिकदर महान् के इतिहास से सम्बद्ध है, की पहचान की है और उनका पता लगाया है। मैंने भारत मे बुद्ध इतिहास से सम्बद्ध सभी शहरों अर्थात् प्रसिद्ध सकिसा, श्रावस्ती और कौशाम्बी की स्थिति का पता लगाया है। अन्य खोजों मे मैं भरहुत के महान् स्तूप का जिस पर बुद्ध के जीवन की महान् घटनाए खदी हुई हैं, उल्लेख कर सकता हू। मैंने सम्राट् अशोक के तारीख वाले तीन उत्कीर्ण लेखों का पता लगाया है और मेरे सहायकों ने अशोक के एक नये स्तभ का पता लगाया है। उन्होंने बेक्ट्रीयिन अक्षरों मे लिखे गये एक नये शिलालेख का पाठ खोजा है। बारहवा शिलालेख पूरा का पूरा इसी लिपि मे लिखा गया है। मैंने तिगवा, बिलसार, भीतरगाव, कुठेरा और देवगढ मे बने हुए गुप्त राजाओं के मन्दिरों की गुप्त स्थापत्य शैली का पता लगाया है। मैंने शक्तिशाली गुप्तवश के नये शिलालेखों का ऐरण, उदयगिर और अन्य स्थानों पर पता लगाया है।"

कनिघम ने जो महान् कार्य किया है उसकी इयत्ता और उपयोगिता को ध्यान मे रखते हुए, उनकी सफलताओं का उपर्युक्त विवेचन बिलकुल ढाचा मात्र ही प्रतीत होता है।

कनिघम ने केवल उत्तरी और पूर्वी भारत का ही सर्वेक्षण किया। पश्चिमी भारत का सर्वेक्षण करने के लिए 1873 मे जेम्स बर्गेस के तत्वावधान मे पश्चिमी भारत पुरातत्वीय सर्वेक्षण सगठित किया गया और सन् 1881 मे दक्षिणी भारत पुरातत्वीय सर्वेक्षण का भी काम उन्हे सौप दिया गया।

सन् 1873 मे भारत सरकार ने स्थानीय सरकारो को अनुदेश दिये कि वे स्मारको का परिरक्षण करे। परन्तु सन् 1878 मे गवर्नर जनरल, लार्ड लिटन ने यह अनुभव किया कि स्मारको के परिरक्षण की जिम्मेदारी स्वय केन्द्रीय सरकार पर होनी चाहिए, क्योकि वे समझते थे कि इस मामले के अलावा शायद ही कोई और मामला हो जो सुप्रीम सरकार के प्रशासनिक और वित्तीय ससाधनो पर दावा कर सके। फलत 1881 मे एच० एच० कोल प्राचीन स्मारको के क्यूरेटर नियुक्त किये गये। अगले दो वर्षो मे कोल ने सतोषजनक कार्य किया, परन्तु 1883 मे यह पद समाप्त कर दिया गया तथा स्मारको का परिरक्षण एक बार फिर स्थानीय सरकारो की एक अस्पष्ट जिम्मेदारी हो गयी।

कनिघम ने स्वय अभिलेखो या उत्कीर्णलेखो के सग्रह और उनके उद्वाचन मे दिलचस्पी दिखायी, लेकिन इसके साथ ही उसने अनुभव किया कि उपलब्ध उत्कीर्णलेखो को सम्बन्धित वर्षो के अनुसार व्यवस्थित तरीके से छापा जाये। तदनुसार सन् 1883 मे जान फेथफुल फ्लीट को तीन वर्ष की अवधि के लिए सरकारी उत्कीर्णलेखज्ञ (एपीग्राफिस्ट) नियुक्त किया गया। सन् 1886 मे ई० हुल्श को दक्षिण भारत के उत्कीर्ण लेखो के लिये उत्कीर्णलेखज्ञ नियुक्त किया गया।

सन् 1885 मे कनिघम अन्तिम रूप से पदावमुक्त हो गये और इसके दूसरे वर्ष जेम्स बर्गेस उनके स्थान पर महानिदेशक बनाये गये। परन्तु अब महानिदेशक के कार्यो को अधिकाशत बाट दिया गया क्योकि अब उत्तर और पूर्व भारत के लिए दो और पश्चिमी तथा दक्षिण भारत के लिए स्वय बर्गेस इस प्रकार तीन स्थानीय सर्वेक्षक रखे गये थे। यह प्रणाली इतनी उलझनपूर्ण थी कि यह प्रभावी न हो सकी।

तीन वर्ष पश्चात् बर्गेस सेवानिवृत्त हो गये और इसके पश्चात् सरकार ने केन्द्रीय सगठन के रूप मे भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण को समाप्त करने का फैसला कर लिया। फलस्वरूप सारा पुरातत्वीय कार्य स्थानीय सरकारो के मत्थे मढ दिया गया और इसका नतीजा यह हुआ कि उसमे कोई प्रगति नही हुई। इस कार्य को एशियाटिक सोसायटी आफ बगाल को सौपने का भी प्रयत्न किया गया, परन्तु उसने इस उत्तरदायित्व को स्वीकार करने मे अपनी असमर्थता प्रकट कर दी। सोसायटी का निर्णय निस्सदेह बुद्धिमत्तापूर्ण था क्योकि उस समय (जैसा कि आज है) समस्त देश मे समन्वित कार्य केवल एक सुगठित केन्द्रीय सगठन द्वारा ही किया जा सकता था।

यह स्थिति सन् 1898 तक बनी रही। इस समय सरकार पुन अपने उत्तरदायित्वो के प्रति जागरूक हुई और उसने स्मारको के परिरक्षण के प्रयोजन से भारत को पाच मडलो मे बाटने और प्रत्येक मडल को एक पुरातत्वीय सर्वेक्षक के अधीन रखने का प्रस्ताव रखा। यह योजना पाच वर्ष की अल्पावधि के लिए मजूर की गयी।

निर्णय का काल (1899–1902)

सन् 1899 मे लार्ड कर्जन जब भारत मे गवर्नर जनरल बन कर आये तब उन्होने आते ही उस अस्तव्यस्त स्थिति की कल्पना कर ली जिसमे केन्द्रीय नेतृत्व के अभाव के कारण भारतीय पुरातत्व विभाग पडा हुआ था। उन्होने देखा कि स्थानीय सरकारो को पुरातत्व मे तनिक भी लगाव नही है और इसके परिणामस्वरूप, न केवल सुन्दर और प्रसिद्ध इमारते जीर्ण-शीर्ण होकर नष्ट हो रही है वरन् उनके परिरक्षण और उनकी मरम्मत के लिए न कोई सिद्धान्त ही है और न कोई एकरूपता। उन्होने कहा "यदि भारत मे जर्मनी की सत्ता होती, तो मुझे यह कहने मे जरा भी हिचक नही है कि वह इस कार्य पर कई लाख रुपये खर्च करती जब कि हम इस कार्य पर 61,000 रुपये लगाकर अपनी उदारता पर गर्व करते रहे है और इसे एक वर्ष पहले ही बढाकर 88,000 रुपये किया गया है।" 6 फरवरी 1900 को एशियाटिक सोसायटी आफ बगाल मे दिये गये अपने प्रसिद्ध भाषण मे उन्होने घोषणा की थी "अब उत्कीर्णलेख विद्या को अनुसन्धान से ज्यादा महत्व दिया जाना चाहिए और सरक्षण को अनुसन्धान से। मेरे मत से इस प्रकार हमारा कर्तव्य है कि हम खुदाई और खोज करे, वर्गीकरण कर, पुनरुद्धरण तैयार करे और उनके वर्णन तैयार करे, प्रतिलिपिया तैयार करे और उद्वाचन करे तथा उनका पोषण-सरक्षण भी करे।' अतएव पुरातत्व के सम्बन्ध मे उनकी व्यापक धारणा थी उसमे अन्वेषण, खुदाई, गवेषणा, उत्कीर्ण लेख विद्या, स्मारको का परिरक्षण और प्रकाशन तथा सग्रहालयो की स्थापना सभी शामिल थे।

अपने विचारो को मूर्त्तिमत करने मे कर्जन ने कोई विलम्ब नही किया और इसके फलस्वरूप भारतीय पुरातत्व मे एक नये युग का जन्म हुआ। सन् 1902 मे उसने ब्रिटिश सरकार के सामने यह प्रस्ताव रखा कि पुरातत्वीय सर्वेक्षको के काम के अधीक्षण और उसके समन्वय के लिए महानिदेशक का पद फिर से बनाया जाय। उन्होने यह प्रस्ताव भी रखा कि केन्द्रीय सरकार को स्थानीय सरकारो को पुरातत्वीय कार्य के लिए सालाना एक लाख रुपयो तक का सहायता अनुदान देना चाहिए। वास्तव मे यह कर्जन के पूर्ण केन्द्रीयकरण के आदर्श (जैसा कि हम देखेगे यह दो दशाब्द के बाद ही पूरा हो पाया) और तत्कालीन परिस्थिति के बीच एक समझौता था।

ब्रिटिश सरकार द्वारा इन प्रस्तावो के स्वीकार कर लिए जाने पर सन् 1902 मे जान मार्शल, जो इस समय छब्बीस वर्ष के थे, पुनर्गठित भारतीय सर्वेक्षण के प्रथम महानिदेशक बनकर भारत आये।

1902–21

जान मार्शल को देश के पुरातत्वीय कार्यकलापो को अत्यन्त अल्पावधि मे आयोजित करने मे सफलता मिल गयी। उनके आने के कुछ वर्ष बाद ही महत्वपूर्ण स्मारको का, जैसे कि दिल्ली और आगरा के, पूर्णत पुनर्नवन किया गया और कुछ महत्वपूर्ण

स्थलो पर खदाई का काम किया गया तथा संग्रहालयो के काम मे भी तेजी आयी। अधिनियम सन् 1904 में प्राचीन स्मारकों के परिरक्षण कुछ स्थानो मे खुदाई पर नियन्त्रण रखने, विशेष मामलो मे प्राचीन स्मारको, पुरातत्वीय, ऐतिहासिक या कलात्मक अभिरुचि की सामग्री की रक्षा और अर्जन के लिए प्राचीन स्मारक परिरक्षण अधिनियम पारित हो गया, जिसको बनाने के लिए कर्जन और मार्शल के आने के पूर्व ही सन् 1898 मे कार्रवाई शुरू हो गयी थी।

1899 मे पाच वर्ष की अवधि के लिए पाच मडलो की मजूरी दी गयी थी। मार्शल ने इस बात पर जोर दिया कि ये मडल स्थायी रूप मे रखे जाए, क्योकि पुरातत्व अधिकारियो का काम इस ढग का है कि वह किसी भी अन्य वर्तमान अभिकरण के द्वारा नही किया जा सकता और यह काम उसी समय बन्द हो सकेगा जब सरकार देश के प्राचीन अवशेषो के परिरक्षण के प्रति अपने उत्तरदायित्व को स्वीकार करना बन्द कर देगी। सन् 1906 मे सर्वेक्षण को स्थायी बना दिया गया उसमे महानिदेशक, सरकारी उत्कीर्णलेखज्ञ और सारे भारत (जिसमे बर्मा शामिल था और मैसूर शामिल नही था क्योकि उसका अपना सगठन था) के लिए छ मडल अधिकारी रखे गये।

इस प्रकार स्थायित्व मिल जाने और मार्ग-दर्शन के लिए स्पष्ट नीतियो का निर्धारण हो जाने पर, सर्वेक्षण विभाग ने अपना काम अधिक उत्साह और विश्वास के साथ शुरू किया। सैकडो स्मारक और प्राचीन स्थान रक्षित घोषित कर दिये गये और वे प्राचीन स्मारक परिरक्षण अधिनियम की व्याप्ति के अन्तर्गत आगये। स्मारको की बडे पैमाने पर मरम्मते की गयी और खुदाई का काम किया गया। शौकिया काम का स्थान व्यावसायिक उत्साह और तकनीक ने ले लिया।

सन् 1911 मे इस तथ्य की प्राच्य परिषद् मे बडी जोर से आलोचना की गयी कि सर्वेक्षण कार्य पूर्णतया अग्रेजो के हाथ मे है। इसका परिणाम यह हुआ कि उसके दूसरे वर्ष ही सरकार ने यह निर्णय किया कि सक्षम भारतीयो को सर्वेक्षण विभाग मे नियुक्त किया जाए। इस सम्बन्ध मे यह उल्लेखनीय है कि सन् 1921 मे ब्रिटिश सरकार ने यह निश्चय किया कि इस सेवा मे यूरोपियनो की सख्या चालीस प्रतिशत और भारतीयो की सख्या साठ प्रतिशत होनी चाहिए। यह बताने की कोई आवश्यकता नही रह जाती कि यह नियम बहुत समय पहले समाप्त हो चुका है और आज भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग के सभी कर्मचारी भारतीय ही है।

सन् 1921 मे भारत सरकार के अधिनियम, 1919, के अधीन पुरातत्व केन्द्रीय विषय माना गया और इस प्रकार सर्वेक्षण विभाग पूर्णत केन्द्रीय सगठन बन गया तथा प्रान्तो के पास प्राचीन स्मारक परिरक्षण अधिनियम के अधीन स्मारको और प्राचीन स्थलो को केवल रक्षित घोषित करने भी की शक्ति रह गयी। यह शक्ति भी भारत सरकार के अधिनियम 1935 के द्वारा केन्द्र को हस्तान्तरित कर दी गयी।

यहा सर्वेक्षण विभाग द्वारा सन् 1920 तक की गयी खुदाई का सक्षिप्त उल्लेख किया जा सकता है। जिस प्रकार कनिघम के समय बुद्ध से सम्बन्धित स्थलों मे खुदाई को ज्यादा महत्व दिया गया था. सारनाथ, श्रावस्ती, कुसीनगर और नालदा जो सबके सब गंगा घाटी मे आते है, मध्य भारत मे साची और पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त के अवशेषो पर पर्याप्त ध्यान दिया गया। बौद्ध स्थापत्य, कला और मूर्त्ति विद्या विषयक ज्ञान मे अत्यधिक वृद्धि हुई। शहरी स्थलो मे मध्य गगा कछार के बिहटा और पटना और उत्तर पश्चिम मे तक्षशिला मे खुदाई की गयी। पहला स्थान ईसवी सदी के प्रारम्भ के पूर्व का एक व्यापक व्यापारिक शहर सिद्ध हुआ। पटना के समीप खुदाई से पाटलिपुत्र के मौर्य राजभवन के अवशेषो का पता लगाया गया। यह माना गया कि यह भवन एक लकडी के ढाचे का बना था जो अस्सी या इससे भी अधिक प्रस्तर स्तम्भो पर रखा हुआ था। तक्षशिला की दीर्घकालीन खुदाई सन् 1913 मे शुरू हुई थी और वह सन् 1934 तक चलती रही। इससे तीन क्रमिक नगरो के अवशेषो का पता लगा। उनमे से सबसे प्राचीन भीर-मौद है जो ईसा पूर्व की पाचवी सदी के आसपास बना था और इस शहर ने सिकदर महान् का आक्रमण भी अवश्य ही देखा होगा। दूसरा शहर सरकाप है जो आर्य और ग्रीको के अधीन बसाया गया था और उसमे आर्य-पार्थियन काल का अत्यन्त व्यवस्थित नगर-आयोजन था। तीसरा शहर सिरसुख कुषाण युग मे बसाया गया था।

1921—28

सक्षेपत खुदाई के क्षेत्र मे सर्वेक्षण का यही उल्लेखनीय काम था। इसी बीच एक स्मरणीय घटना घटी अर्थात् पंजाब के माटगोमरी जिले मे हडप्पा तथा सिध के लरकाना जिले मे मोहन-जोदडो मे एक नयी सभ्यता का पता चला। अब ये दोनो जिले पाकिस्तान मे है। पहले स्थल पर सन् 1921 मे खुदाई शुरू हो गयी थी और दूसरे स्थल पर सन् 1922 मे शुरू हुई थी। उस समय प्रारम्भ मे ही यह मान लिया गया था कि इन दोनो स्थानो पर जिस सभ्यता के अवशेष (अब यह सभ्यता सिधु घाटी सभ्यता अथवा इससे भी सही अर्थ मे हडप्पा सभ्यता कहलाती है) मिले है, वह उस समय तक ज्ञात भारतीय पुराविद्या के सामान्य विस्तार के परे की सभ्यता थी। जब इन खोजो के सक्षिप्त नतीजे, जिनमे खुदे हुए विभिन्न लेखो वाली शैलखटी की मुद्राए भी थी, सन् 1941 मे लदन मे प्रकाशित हुए, तो विदेशी विद्वानो का ध्यान तुरन्त इस ओर गया कि इसी तरह की मुद्राए ईराक के बाबो के कुछ स्थलो पर पायी गयी थी और ये ईसा पूर्व की तीसरी सहस्राब्दी की थी। इस प्रकार भारत का पुरातत्व एकदम दो हजार वर्ष पीछे चला गया, क्योकि इसके पूर्व मुश्किल से ऐसी कोई बात थी जो उसे बुद्ध (ईसा पूर्व की पाचवी–छठी शताब्दी) से पहले की तारीख तक ले जाती। इन सब बातो से देश मे काफी उत्साह पैदा हो गया। सन् 1926 मे सर्वेक्षण के अन्तर्गत बढे हुए काम को पूरा करने के लिए एक अन्वेषण शाखा खोली गयी।

इस महत्वपूर्ण खोज पर आगे काम किये बिना नही रहा जा सकता था दोनो स्थलो पर सन् 1931 तक खुदाई चालू रखी गयी और दो बडे शहरो के अवशेषो को खोदकर निकाला गया। इस स्थिति में सिंध और बिलोचिस्तान का व्यापक सर्वेक्षण 1925 और 1931 के बीच के समय में होता रहा। सिंध मे हडप्पा सभ्यता के छोटे-छोटे अनेक स्थानो की खोज के अलावा एक महत्वपूर्ण खोज यह थी कि आमरी में पहले की और झुकार तथा चान्हूदडो मे कुछ बाद की सभ्यता के चिह्न मिले। बिलोचिस्तान मे भी विविध कालों से सम्बन्धित अनेक स्थलो की खोज की गयी। इनमें से कुछ हडप्पा सभ्यता के पूर्व के थे और कुछ उसके बाद के।

इस अवधि मे अन्य जिन बौद्ध स्थलो पर खुदाई की गयी थी उनमे नालदा, पहाडपुर और नागार्जुनकोडा शामिल है।

1928—44

1928 मे मार्शल महानिदेशक के पद से सेवा निवृत्त हुए। तीन वर्ष के पश्चात् इस विभाग के खर्च मे सभी ओर से कमी की चर्चा चली और इसके परिणामस्वरूप सन् 1932 मे अन्वेषण शाखा बन्द कर दी गयी तथा विभाग के सामान्य कामो के लिए आवश्यक निधि मे भी बहुत अधिक कटौती कर दी गयी।

इसी वर्ष विभाग के बाहर के लोगो को, जिनमे विदेशी भी शामिल थे, खुदाई के लिए प्रोत्साहित करने की दृष्टि से प्राचीन स्मारक परिरक्षण अधिनियम मे सशोधन किया गया। इससे फायदा उठाकर 'अमेरिकन स्कूल आफ इडिक एण्ड ईरानियन स्टडीज' तथा 'बोस्टन म्यूजियम आफ फाइन आर्टस्' ने सम्मिलित रूप से सन् 1935-36 मे उपर्युक्त चान्हूदडो मे खुदाई की। सन् 1935 मे येल और केम्ब्रिज विश्वविद्यालयो ने हेलमुट डि तेरा के नेतृत्व मे एक भूगर्भीय एव प्रागैतिहासिक अन्वेषण दल भारत भेजा। इस अन्वेषण दल ने देश मे, खासतौर से उत्तर पश्चिम मे अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य किया।

सन् 1939 में खुदाई की विधा और विभाग की नीतियो की प्रख्यात अग्रेज पुरातत्ववेत्ता सर लियोनार्ड वुली द्वारा, जिन्हें भारत सरकार ने अन्वेषण और खुदाई की नीति पर सलाह देने के लिए बुलाया था, कडी आलोचना की गयी। उन्होने जो भर्त्सना की थी, यद्यपि वह जल्दी मे किये गये पर्यवेक्षणों और पूर्वग्रहो पर आधारित थी तथापि वह पूर्णत अनुचित नही थी क्योकि यह बात तो सच ही थी कि भारतीय पुरातत्ववेत्ता यूरोप और अमेरिका मे विकसित खुदाई की विधाओ से अपरिचित थे और इसका नतीजा यह हुआ था कि उनके खुदाई के तरीके बिल्कुल ही पुराने थे। गहरी खुदाइयो के द्वारा सभ्यताओं का अनुक्रम स्थापित करने का कोई प्रयत्न शायद किया ही नही गया था और जिन स्थलों पर खुदाई करनी थी, उनके चुनाव के बारे मे भी कोई व्यवस्थित योजना नही थी। इसके कारण देश के बहुत बड़े भूभाग का पुरातत्व अधेरे मे ही बना रहा।

1940 और 1944 के बीच इस विभाग ने गगा-घाटी के ऊपरी भाग मे अहिच्छत्रा मे व्यापक खुदाई करने का काम अपने हाथ मे लिया और पहली बार इस क्षेत्र का ईसापूर्व की प्रथम सहस्राब्दी से लेकर लगभग 1,100 ईसवी तक के समय का अनुक्रम निश्चित किया।

1944 के पश्चात्

सन् 1944 मे डा० राबर्ट इरिक मोर्टेमेर ह्वीलर महानिदेशक नियुक्त किये गये। उनके भारत आने के अगले चार वर्षों में ही सर्वेक्षण विभाग में सर्वतोमुखी प्रगति हुई। उन्होने उसके मडलो तथा सग्रहालयो को पुर्नगठित किया और उसके अधिकारियो तथा विभाग के बाहर के लोगो को तक्षशिला, पूर्वी किनारे पर पाडिचेरी के पास आरिकियामेडु और दकन के नीचे के भाग मे ब्रह्मगिरि मे अपने तत्वावधान मे चलने वाली खुदाई के दौरान प्रशिक्षित किया। इनमे से प्रत्येक स्थान पर की गयी खुदाई से महत्वपूर्ण नतीजे निकले। उदाहरणार्थ तक्षशिला के द्वितीय शहर सरकाप मे उसकी रक्षा की दीवालो और उसके भीतर बसी हुई बस्ती के स्तरलेखीय (स्ट्रेटोग्राफिक) सम्बन्ध का पता लगा। हडप्पा मे एक ऐसी विशाल सुरक्षा दीवार को खोदकर निकाला गया, जिसका अभी तक कोई पता नही था। हडप्पा सभ्यता की एक श्मशान भूमि भी खुदाई मे निकली और इसकी पहचान की गयी। ब्रह्मगिरि मे ईसापूर्व की पहली सहस्राब्दी की ताम्र युगीन सभ्यता का पता लगाया गया और दक्षिण भारत के दीर्घ पाषाण और लौह युग की घटनाओ को सुदृढ आधार दिया गया, जो इस समय तक एक पहेली बनी हुई थी।

सन् 1950 मे भारत के सविधान ने पुरातत्व विभाग की शासकीय स्थिति मे दूर-व्यापी परिवर्तन कर दिये। भारत सरकार के 1919 और 1955 के अधिनियमो मे यह व्यवस्था थी कि पुरातत्व पूर्णतया केन्द्रीय विषय हो। इसके बदले मे सविधान ने निम्नलिखित बाते विहित की —

(1) ससद् द्वारा बनायी गयी विधि के द्वारा या उसके अधीन जिन प्राचीन और ऐतिहासिक स्मारको तथा पुरातत्वीय स्थलो को राष्ट्रीय महत्व का घोषित कर दिया जाय, वे केन्द्रीय सरकार के प्रभार मे रहने चाहिए,

(2) जो प्राचीन और ऐतिहासिक स्मारक पहले वर्ग मे नही आते वे राज्य (प्रातीय) सरकारो के प्रभार मे रहना चाहिए,

(3) जो स्थल और अवशेष पहले वर्ग मे नही आते उन पर केन्द्रीय सरकार तथा राज्य सरकार दोनो का क्षेत्राधिकार होगा।

इसके अनुसरण मे ससद् ने 1951 मे एक अधिनियम पारित किया और उसमे उन तमाम स्मारको तथा स्थलो को राष्ट्रीय महत्व का उद्घोषित कर दिया गया जो पहले प्राचीन स्मारक परिरक्षण अधिनियम के अधीन रक्षित थे। इनके साथ बहुत से ऐसे स्मारक और स्थल भी राष्ट्रीय महत्व के घोषित कर दिये गये जो स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व रजवाडो मे थे और जिन पर उस समय

तक सरकार का कोई पुरातत्वीय क्षेत्राधिकार नही था ।

देशी रियासतों में पुरातत्व की स्थिति

भारत के रजवाडो के भारतीय सघ मे विलय होने के पूर्व उनमे पुरातत्व सम्बन्धी जो काम हुआ था उसका उल्लेख किये बिना देश के पुरातत्वीय इतिहास की कोई भी समीक्षा अधूरी ही रहेगी। मैसूर मे सन् 1900 से अपना खुद का सगठन था और इसके थोडे समय बाद ही काश्मीर, पुदुकोट्टै तथा मयूरभज ने भी अपने-अपने सगठन स्थापित किये। उसके बाद हैदराबाद, ग्वालियर त्रावनकोर-कोचीन, भोपाल, बडौदा और जयपुर रियासतो ने भी सगठनो की सूची मे वृद्धि कर दी। जहा एक ओर उनमे से कुछ सगठन अन्यमनस्कता से तथा यदा-कदा काम करते थे, वही दूसरी ओर कुछ सगठनो ने अपने प्रभार के स्मारको की रक्षा करने और उन्हे बनाये रखने के लिए महत्वपूर्ण कार्य किया तथा खुदाई भी करायी। अन्य कुछ ऐसे रजवाडो को, जिनमे नियमित सगठन नही थे, केन्द्र सरकार से वित्त और परामर्श के रूप मे सहायता दी जाती थी।

भारत के स्वतन्त्र होने के साथ ही सभी रजवाड़े विलीन हो गये और उनके महत्वपूर्ण स्मारको को केन्द्रीय सरकार ने अपने हाथ मे लेकर उन्हे राष्ट्रीय महत्व के स्मारक घोषित कर दिया। इसके फलस्वरूप उन रजवाडो के पुरातत्व विभाग के बहुत से कर्मचारी सन् 1953 मे केन्द्रीय सर्वेक्षण विभाग मे ले लिये गये, जिनमे पुरातत्व विभाग थे। इसी प्रकार 1959 मे जम्मू और काश्मीर के कर्मचारी तथा महत्वपूर्ण स्मारक भी केन्द्रीय पुरातत्व विभाग के अन्तर्गत आ गये है।

अतएव स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद जबकि देश मे कुछ पहलुओ से पुरातत्वीय एकता स्थापित हो गयी है, वही सविधान के परतुको मे उत्पन्न होनेवाली कुछ केन्द्रापसारी शक्तिया भी साथ-साथ काम कर रही है। सविधान मे निहित यह बात स्मरणीय है कि जिन प्राचीन और ऐतिहासिक स्मारको को राष्ट्रीय महत्व का घोषित नही किया जाता, वे राज्य सरकारो के प्रभार मे रहेगे और जो पुरातत्वीय स्थल तथा अवशेष राष्ट्रीय महत्व के नही है उन पर भी राज्य सरकारो का सहवर्ती क्षेत्राधिकार होगा। इसका यह ध्वनितार्थ होता है कि सभी राज्यो को अपनी-अपनी पुरातत्वीय सेवाए खोलनी चाहिए और स्मारको की रक्षा तथा अपने प्रभार के खुदाई-स्थलो के नियन्त्रण के लिए विधान बनाना चाहिए। ऐसे राज्य जो एक तरह से स्वतन्त्रता प्राप्ति के पहले के देशी रजवाडो के उत्तराधिकारी है या उनसे बनाये गये है, उनमे उनके खुद के पुरातत्वीय सगठन (जहा वे पहले थे) है। अन्य राज्य इस बारे मे धीरे-धीरे विधान बना रहे है और अपने सगठन स्थापित कर रहे है। केन्द्रीय सरकार राज्यो को उनके इन प्रयत्नो मे प्रोत्साहित करने के लिए सहर्ष सहमत हो गयी है और राज्यो मे पाये जाने वाले स्मारको के कुछ विशिष्ट वर्गों के परिरक्षण तथा खुदाई के लिए सहायता अनुदान देने के लिए भी सनद्ध है।

राज्यो को महान् पुरातत्वीय कार्य करना है। कोई भी केन्द्रीय सस्था, चाहे वह कितनी भी बडी क्यो न हो, उन सभी स्मारको की प्रभावी ढग से देखभाल नही कर सकती, जो इस विशाल देश मे बिखरे पडे है और जिनमे से कुछ स्थानीय गर्व तथा भावनाओ के केन्द्र है। कुछ राज्य सरकारो ने इस दिशा मे थोडे समय के भीतर ही न केवल सक्रिय कदम उठाया है वरन् उन्होने महत्वपूर्ण अन्वेषण और खुदाई का काम भी किया है।

विश्वविद्यालयों और अन्य संस्थानों का योगदान

देश की वर्तमान पुरातत्वीय गतिविधियो का एक सुखद लक्षण यह है कि अनेक सस्थान, जिनमे विश्वविद्यालय भी शामिल है, पुरातत्वीय कार्य को करने के लिए सामने आये है। ऐसा पहला सस्थान कलकत्ता विश्वविद्यालय है, जिसने पूर्वी भारत के बानगढ मे काफी समय पहले अर्थात् 1937–41 मे खुदाई की थी। लगभग पिछले दस वर्षों मे डकन कालेज पोस्ट ग्रेजुएट एण्ड रिसर्च इस्टीट्यूट, पूना, के० पी० जायसवाल रिसर्च इस्टीट्यूट, पटना और इलाहाबाद, सागर, बडौदा तथा कलकत्ता विश्वविद्यालयो ने महत्वपूर्ण कार्य किया है। इस क्षेत्र मे वाराणसी और पटना विश्वविद्यालयो ने नया कदम रखा है।

क्षेत्रीय कार्य का समन्वय

इतने सारे सगठनो के, जिनमे सर्वेक्षण भी शामिल है, क्षेत्रीय काम मे हिस्सा लेने पर यह आवश्यक हो जाता है कि आतरिक समन्वय किया जाए, ताकि दुहरा काम न हो और सुयोजित प्रयत्नो की वृद्धि हो सके। पुरातत्व विभाग के केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड की स्थायी समिति यह समन्वय करती है। वह सभी सगठनो के क्षेत्रीय कार्यक्रमो की वार्षिक जाच करती है और अब तक सभी सगठनो ने समिति की सिफारिशो को निर्विवाद रूप मे स्वीकार किया है।

अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग

यूनेस्को के पुरातत्वीय एव सग्रहालय सम्बन्धी सगठनो से प्राय उनके जन्म से ही भारत का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। पुरातत्वीय सर्वेक्षण के सदस्य स्मारको की अन्तर्राष्ट्रीय समिति, कलात्मक और ऐतिहासिक तथा पुरातत्वीय खुदाई तथा सग्रहालयो के अन्तर्राष्ट्रीय आयोग के नियमित सदस्यो के साथ या तो सरकारी प्रतिनिधियो की हैसियत या अपनी निजी हैसियत से पत्र-व्यवहार करते रहे है। सशस्त्र युद्ध के अवसर पर सास्कृतिक सम्पत्ति की सुरक्षा सम्बन्धी करार के प्रारम्भिक हस्ताक्षर कर्ताओ मे से भारत भी एक था। उपर्युक्त अन्तर्राष्ट्रीय समिति ने पुरातत्वीय खुदाई पर लागू होनेवाले अन्तर्राष्ट्रीय सिद्धान्तो के बारे मे जो सिफारिशे की है, उनका सर्वेक्षण विभाग पूर्णत. अनुसरण कर रहा है।

नूबिया के पुरातत्वीय भडार को बचाने के लिए यूनेस्को ने जो अपील की थी, उसको पूरा करने के लिए पुरातत्वीय सर्वेक्षण उस क्षेत्र के प्रागैतिहासिक स्थलो की खुदाई के लिए शीघ्र ही अपना एक दल भेजेगा। यह सर्वथा उचित ही है।

(रूपान्तर : ना० प्र० पांडेय)



भारत का पुरातत्व सर्वेक्षण

यज्ञदत्त शर्मा

भारत के पुरातत्व सर्वेक्षण को अपने जीवन-काल के पिछले एक सौ वर्षों में ऐसे परिवर्तन-क्रमों में से होकर गुजरना पड़ा है, जिसने उसका पूरा कायाकल्प कर दिया है। जिसकी अवस्था कभी बहुत ही साधारण तथा प्रारम्भिक थी, उसी ने अब एक विशाल संगठन का रूप धारण कर लिया है। इतना ही नहीं उसका एकीकरण भी एक तर्क-संगत तथा व्यापक आधार पर हो चुका है। 1861 में पुरातत्व सर्वेक्षक के रूप में एलेक्जेण्डर कनिंघम की नियुक्ति के साथ जो संगठन आरम्भ में बनाया गया था वह अब एक ऐसे ठोस चौपहले स्तूप अर्थात् पिरामिड के समान हो गया है जिसके आधार में कार्यकर्ताओं का एक संगठित समूह है। उनके शिखर पर भारत के पुरातत्व महानिदेशक हैं। जो उद्देश्य पहले देश की पुरावस्तुओं की खोज तक सीमित था, वही अब समय पाकर व्यापक और विकसित

हो गया है। सर्वेक्षण अब ये कार्य करता है खोज, खुदाई, शिला-लेखो का पठन, प्रकाशन, प्राचीन स्मारको को बनाए रखना तथा उनका परिरक्षण करना, प्राचीन खडहरों का प्रदर्शन तथा परिरक्षण तथा नाना प्रकार के अभिलेखो को तैयार करना।

सर्वेक्षण भारत सरकार के वैज्ञानिक गवेषणा तथा सास्कृतिक कार्य मत्रालय के 'सम्बद्ध कार्यालय' के रूप मे कार्य करता है। सर्वेक्षण का निदेशालय भारत के पुरातत्व महानिदेशक के अधीन नयी दिल्ली मे स्थित है। एक सयुक्त महानिदेशक और क्रमश प्रशासन का, खोज का और प्राचीन स्मारको का दायित्व सभालने वाले तीन उप महानिदेशक, एक पुरातत्व इजीनियर, एक सहायक इजीनियर और एक सहायक अधीक्षक पुरातत्व महानिदेशक की सहायता करते है। पुरातत्व इजीनियर स्मारको को बनाए रखने और उनकी मरम्मत के बारे मे महानिदेशक को परामर्श देता है और इस प्रयोजन के लिए जो कार्य-प्राक्कलन तैयार होते है उनकी जाच करता है। निदेशालय के अभिन्न अग के रूप मे पुरातत्व-विज्ञान का एक स्कूल भी कार्य कर रहा है, जिसका उद्घाटन 1959 मे हुआ है।

सर्वेक्षण के दायित्वो तथा कर्त्तव्यो के परिपालन के लिए निम्न-लिखित कार्यपालिका इकाइया है—

सर्किल (जिनकी सख्या दस है), खुदाई शाखा, प्रागितिहास शाखा, उत्कीर्ण लेख-विज्ञान शाखा, रसायन शाखा, उद्यान शाखा तथा सग्रहालय शाखा।

इनको छोडकर थोडे या बहुत समय मे पूरी होने वाली कुछ विशेष परियोजनाए भी है, जो अतिरिक्त तदर्थ इकाइयो द्वारा निष्पादित की जा रही है जैसे एटलस शाखा, जिसका कार्य भारत का एक सम्पूर्ण तथा प्रामाणिक पुरातत्व एटलस तैयार करना है, दो देवालय-सर्वेक्षण परियोजनाए—एक उत्तर के लिए और एक दक्षिण के लिए और नागार्जुनकोण्डा खुदाई परियोजना, जिसने उस क्षेत्र की खुदाई का काम जो आध्र प्रदेश के नागार्जुन सागर बाध से शीघ्र ही जलमग्न हो जाने वाला है, लगभग पूरा कर लिया है।

सर्किल

पुरातत्व सर्वेक्षण के दो मुख्य काम है एक तो ऐसे प्राचीन स्मारको को बनाए रखना और उनका परिरक्षण करना, जिनको ससद् राष्ट्रीय महत्व वाले घोषित कर चुकी है, और दूसरा खोज और खुदाई द्वारा प्राचीन खडहरो के सम्बन्ध मे गवेषणा करना। पहला काम पूर्ण रूप से तथा बाद वाला आशिक रूप से उस सर्किल द्वारा किया जाता है जिसके कि क्षेत्राधिकार मे वह स्मारक और स्थान या क्षेत्र है जिसका परिरक्षण, जिसकी खुदाई या जिसके सम्बन्ध मे खोज करना है।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है पुरातत्व सर्वेक्षण का काम पहले खोज करना भर था। 1873 मे स्थानीय सरकारो को यह निदेश दिया गया कि वह प्राचीन स्मारको का परिरक्षण करे। प्राचीन स्मारको के सग्रहाध्यक्ष की नियुक्ति 1881 मे की गयी परन्तु दो ही वर्ष पश्चात् परिरक्षण एक बार फिर स्थानीय सरकारो को सौप दिया गया और तभी इस पद की भी समाप्ति कर दी गयी। 1919 मे भारत सरकार अधिनियम द्वारा यह दायित्व केन्द्रीय सरकार पर रखा गया।

सर्वेक्षण के काम के भौगोलिक वितरण को भी अनेक प्रक्रमो मे से होकर गुजरना पड़ा है। कनिघम के अधीन काम करने वाला पुरातत्व सर्वेक्षण जो सबसे पहले बनाया गया था, उत्तरी और पूर्वी भारत तक ही सीमित था। कुछ समय पश्चात् दो सर्वेक्षण इसमे और बढ़ाये गये, एक पश्चिम भारत के लिए 1873 मे और दूसरा दक्षिण भारत के लिए 1881 मे। 1885 मे कनिघम की सेवानिवृत्ति के पश्चात् उत्तरी और पश्चिमी भारत के लिए तीन स्थानीय सर्वेक्षक नियुक्त किये गये और जेम्स बर्गेस की महा-निदेशक के रूप मे नियुक्ति की गयी। 1889 मे उनके सेवानिवृत्त होते ही पुरातत्व सर्वेक्षण का कार्य बन्द हो गया और पुरातत्व सम्बन्धी जो कार्य स्थानीय सरकारो को ठीक जान पडा उसी को वे करती रही। 1899 मे भारत का विभाजन पाच सर्किलो मे किया गया। इनमे से प्रत्येक सर्किल एक पुरातत्व सर्वेक्षक के अधीन था जो अपने क्षेत्राधिकार से सबसे अधिक हितबद्ध स्थानीय सरकार के अधीन कार्य करता था। 1906 मे जान मार्शल के सर्वेक्षण के महानिदेशक होते ही सर्किलो की सख्या बढाकर छ कर दी गयी और भूतपूर्व देशी रजवाडो के अधीन आने वाले स्मारको का दायित्व बढते ही 1953 मे यह सख्या बढाकर नौ कर दी गयी। सर्किलो की सख्या मे प्रत्येक अभिवृद्धि के साथ ही उनके क्षेत्राधिकारो का पुनर्वितरण भी होता रहा। जम्मू और काश्मीर राज्य की अभिवृद्धि एक पृथक् सर्किल के रूप मे अभी हाल ही मे हुई है। आज के सर्किल और उनके प्रधान कार्यालय ये है—(एक) सीमात सर्किल, श्रीनगर, (दो) उत्तर पश्चिम सर्किल, देहरादून, (तीन) उत्तरी सर्किल, आगरा, (चार) केन्द्रीय सर्किल, भूपाल, (पाच) मध्य पूर्वी सर्किल, पटना, (छ) पूर्वी सर्किल, कलकत्ता, (सात) दक्षिण-पूर्वी सर्किल, विशाखापटनम्, (आठ) दक्षिण-पश्चिमी सर्किल, औरगाबाद, (नौ) पश्चिमी सर्किल, बडौदा और (दस) दक्षिणी सर्किल, मद्रास।

सीमान्त सर्किल मे केवल एक अधीक्षक है, परन्तु अन्य सर्किलो मे से प्रत्येक एक अधीक्षक और एक सहायक अधीक्षक के अधीन है। कुछ सर्किलो मे सरक्षण के बारे मे परामर्श देने के लिए तथा कार्यों का प्राक्कलन, पर्यवेक्षण और कभी कभी निष्पादन करने के लिए एक सहायक इजीनियर भी है। सर्किलो का सबसे प्रमुख कार्य स्मारको को बनाए रखना और उनकी मरम्मत करना है। उनका सबसे अधिक व्यय भी इसी सम्बन्ध मे होता है। इस काम के लिए सरक्षण सहायक या सब-ओवरसीयर होते है। प्रत्येक सरक्षण सहायक पर एक उपसर्किल का दायित्व होता है और प्रत्येक सर्किल मे छ या सात उपसर्किल होते है। परन्तु स्मारको के किसी महत्वपूर्ण समूह के लिए अभिरक्षक या अवेक्षक (केअर टेकर) भी हो सकता है। अभिरक्षक तो स्मारको की मरम्मत भी करवाता है, परन्तु अवेक्षक का कार्य अपने आने अधीन वाले स्मारको को केवल

ठीक दशा मे रखना भर है। निम्नतम स्तर पर स्मारक की रक्षा-प्रहरी व्यवस्था का भार स्मारक सेवक तथा पहरेदार पर होता है। नियत-कालिक सफाई तथा दिन-प्रतिदिन की छोटी-मोटी मरम्मत स्मारक साफ करने वालो तथा स्त्रियो द्वारा की जाती है। इसी प्रकार नाजुक काम जैसे जडाऊ काम का पुन.स्थापन आदि नक्काशी करने वालो द्वारा किया जाता है। कुछ स्मारको की मरम्मत मे माडेलरो की सहायता ली जाती है, जिससे खडित मूर्त्तियो की उचित मरम्मत करायी जा सके। सर्किल के प्राविधिक कर्मचारियो मे फोटोग्राफर, सर्वेक्षण तथा मानचित्र बनाने वाले भी होते हैं जो प्रकाशन तथा अन्य प्रयोजनो के लिए अभिलेख तथा चित्र तैयार करते हैं।

सीमित प्रकार की खुदाई का काम भी सर्किल द्वारा किया जा सकता है। अधीक्षक या सहायक अधीक्षक ये कार्य प्राविधिक सहायको की सहायता से करते हैं। पचवर्षीय योजनाओ के अधीन चार खोज सहायक देश की पुरातत्व सामग्री का सर्वेक्षण गाव-गाव घूम कर प्रत्येक सर्किल मे कर रहे हैं। इन खोज सहायको का लक्ष्य यह है कि विद्यमान प्राचीन स्मारको तथा अन्य पुरावस्तुओ के सम्बन्ध मे जानकारी का अभिलेख तैयार करने के लिए वे जिले के सभी स्थानो मे जाए। योजनाओ के अधीन सर्वेक्षक के तीन पद मजूर किये गये हैं जिससे प्रत्येक सर्किल मे ऐसे सरक्षित स्मारको तथा उनके परिवर्ती क्षेत्रो के नक्शे तैयार किये जाए, जिनके बारे मे अभी तक कोई योजना नही बनी है। इस परियोजना का उद्देश्य संरक्षित क्षेत्रों को परिभाषित करना है जिससे भविष्य मे अधिक्रमणो की रोक हो सके।

खुदाई शाखा

पहले तो खोज और खुदाई ही पुरातत्व सर्वेक्षण के सगठन का मुख्य दायित्व था। उसके द्वारा अनेक ऐतिहासिक स्थानो की खुदाई करायी गयी, जिनमे से अधिकाश बुद्ध कालीन थे। हडप्पा और मोहनजोदडो की खोजे और क्रमश: 1921 और 1922 मे वहा की खुदाइयो के आरम्भ होने पर सर्वेक्षण के दायित्व और कार्य काफी बढ गये। तब 1926 मे खुदाई शाखा का जन्म हुआ। परन्तु विश्वव्यापी सामान्य गिरावट के फलस्वरूप छटनी का ऐसा प्रकोप आया कि 1932 मे यह शाखा भी समाप्त कर दी गयी।

डा० (आजकल सर की उपाधि से विभूषित) आर० ई० मार्टीमिर ह्वीलर ने सर्वेक्षण के महानिदेशक का पद सम्भालने के कुछ ही समय पश्चात् 1944 मे फिर एक सहायक अधीक्षक के अधीन काम करने वाली एक खुदाई शाखा का सृजन किया। सहायक अधीक्षक का कार्यालय अब नागपुर में है और यह शाखा जनबल और सामग्री से इस प्रकार सुसज्जित है कि वह खुदाई के बडे-बडे कार्य आरम्भ कर सकती है।

प्रागितिहास शाखा

पुरातत्व सर्वेक्षण मे बहुत समय तक प्रागितिहास की उपेक्षा होती रही। 1945 मे पहली बार डा० ह्वीलर द्वारा किये गये पुनर्गठन के अधीन सहायक अधीक्षक के स्तर का प्रागितिहास का पद बनाया गया। 1959 मे प्रागितिहास के लिए अधीक्षक का एक पद और बढ़ाया गया जिससे बढ़ा हुआ काम भी पूरा हो सके। यह शाखा अब नागपुर मे है और सारा देश इसके क्षेत्राधिकार मे है।

उत्कीर्ण लेख विज्ञान शाखा

भारत मे पुरातत्व को सुदृढ बनाने मे उत्कीर्ण लेख विज्ञान सम्बन्धी गवेषणा का मुख्य हाथ रहा है क्योकि गत शताब्दी की दूसरी पच्चीसी मे ब्राह्मी और खरोष्ठी लिपियो के गूढाक्षरो के स्पष्टीकरण ने ही पहली बार भारतीय पुरातत्व को कालक्रम का सुदृढ धरातल प्रदान किया है। मुख्य रूप से खोज मे तल्लीन रहने पर भी प्रथम पुरातत्व सर्वेक्षक कनिघम ने उत्कीर्ण लेख-विज्ञान के क्षेत्र मे महत्वपूर्ण अशदान किया। 1872 मे जेम्स बर्गेस द्वारा की गयी 'इडियन ऐन्टीक्वेरी' की स्थापना से उत्कीर्ण लेख विज्ञान को नया बल मिला। 1881 मे कनिघम ने जान फेथफुल फ्लीट के निदेशन के अधीन उत्कीर्ण लेख विज्ञान का एक सर्वेक्षण स्थापित करने की सिफारिश की। 1883 मे वे सरकारी अभिलेख विशेषज्ञ नियुक्त किये गये। उनकी नियुक्ति पहले प्रयोगात्मक आधार पर केवल तीन वर्ष के लिए हुई थी। बर्गेस ने सिफारिश की कि सस्कृत, पाली तथा द्राविड भाषाओ के लिए भी उत्कीर्ण लेख विशेषज्ञ के पद मजूर किये जाय। इस योजना के अनुमोदित हो जाने पर 1886 मे डा० ई० हुलत्ज की नियुक्ति दक्षिण भारत के अभिलेख विशेषज्ञ के रूप मे कर दी गयी। यह नियुक्ति भी पहले केवल तीन वर्ष के लिए की गयी थी। 1886 मे फ्लीट की नियुक्ति के समापन पर अन्य प्रान्तो का उत्कीर्ण लेख विज्ञान सम्बन्धी कार्य भी पुरातत्व सर्वेक्षण के क्षेत्राधिकार के अधीन आ गया। बर्गेस ने 1888 मे 'एपीग्राफिया इडिया' का आरम्भ किया और हुलत्ज दक्षिण भारत के उत्कीर्ण लेख सम्बन्धी कार्य के लिए उत्तरदायी बने रहे।

पुरातत्व सम्बन्धी गवेषणा के पुनर्गठन के लिए 1898 मे नयी प्रस्थापनाए रखी गयी जिनमे से एक उत्कीर्ण लेख विज्ञान को विशेष स्थान देने के सम्बन्ध मे भी थी। यह विनिश्चित कर दिया गया कि जब तक हुलत्ज सरकारी उत्कीर्ण लेख विशेषज्ञ के पद पर रहे, तब तक के लिए यह पद स्थायी कर दिया जाए। समस्त पुरातत्व की वकालत करते हुए लार्ड कर्जन ने 1900 मे उत्कीर्ण लेख विज्ञान पर विशेष बल दिया। 1906 मे जब सर्वेक्षण की स्थापना स्थायी आधार पर की गयी, तो मद्रास के सरकारी अभिलेख विशेषज्ञ के बदले मे भारत के सरकारी अभिलेख विशेषज्ञ का पद पहली बार स्थायी बनाया गया।

सरकारी उत्कीर्ण लेख विज्ञान शाखा का प्रधान कार्यालय उटकमड मे है और अब उसमे अभिलेख सहायको तथा अन्य कर्मचारियो के अतिरिक्त, एक सरकारी उत्कीर्ण लेख विशेषज्ञ, दो अधीक्षक और तीन सहायक अधीक्षक हैं। ऐसे उत्कीर्ण लेखो को पढ़ने के अतिरिक्त (जिनकी ओर उसका ध्यान अन्य व्यक्तियो द्वारा दिलाया जाता है) यह शाखा उत्कीर्ण लेखो का पता लगाने तथा उनका सग्रह करने के लिए नियमित रूप से खोज करती है तथा उनका सम्पादन और प्रकाशन भी करती है।

अरबी और फारसी उत्कीर्ण लेखो के लिए आरम्भ मे एक अंशकालिक अभिलेख विशेषज्ञ की व्यवस्था थी। कुछ समय पश्चात् 1945 मे इस कार्य के लिए एक सहायक अधीक्षक का पद मजूर किया गया सहायक अधीक्षक का यही पद अब बढाकर अधीक्षक कर दिया गया है। इस इकाई का प्रधान कार्यालय नागपुर मे है।

रसायन शाखा

1917 के पहले, जबकि सर्वेक्षण मे पहली बार पुरातत्व रसायनज्ञ की नियुक्ति की गयी और प्रयोगात्मक रसायन-शास्त्र को पुरातत्व की सेवा मे लगाया गया, शायद ही कभी स्मारकों और पुरावस्तुओ के रासायनिक उपचार तथा परिरक्षण करने का प्रयत्न किया गया हो। सर्वेक्षण के बढते हुए दायित्वो को पूरा करने के लिए 1945 मे एक सहायक पुरातत्व रसायनज्ञ का पद बढाया गया। जिस व्यक्ति की नियुक्ति इस नये स्थान पर की गयी उसे दक्षिण मे कुछ महत्वपूर्ण कार्यो पर लगा दिया गया।

भारत का पुरातत्व रसायनज्ञ इस शाखा का प्रधान है और उसका प्रधान कार्यालय देहरादून मे है। देश दो खडो मे विभाजित कर दिया गया है, उनमे से एक उत्तरी और दूसरा दक्षिणी खड है। इनमे से प्रत्येक खड एक सहायक पुरातत्व रसायनज्ञ के अधीन कार्य कर रहा है और उनके प्रधान कार्यालय क्रमश देहरादून, और हैदराबाद मे है। रासायनिक उपचार और परिरक्षण का वास्तविक कार्य तो जोनल कार्यालयो द्वारा किया जाता है। प्रत्येक जोनल कार्यालय एक कनिष्ठ पुरातत्व रसायनज्ञ के अधीन है। जोन चार है—उत्तरी, पूर्वी, दक्षिणी और पश्चिमी और उनके प्रधान कार्यालय क्रमश देहरादून, भुवनेश्वर, मद्रास और औरगाबाद मे है। पहले दो जोन उत्तरी खड के अधीन है और बाद वाले दो दक्षिणी खंड के अधीन है। उत्तरी जोन का कार्य क्षेत्र सीमात, उत्तर-पश्चिमी, उत्तरी और केन्द्रीय सर्किलो तक, पूर्वी जोन का मध्य-पूर्वी तथा पूर्वी सर्किलो तक, दक्षिणी जोन का दक्षिणी और दक्षिणी-पूर्वी सर्किलो तक तथा पश्चिमी जोन का दक्षिणी-पश्चिमी तथा पश्चिमी सर्किलो तक सीमित है।

पूरी शाखा का समग्र प्रशासनिक तथा प्राविधिक प्रभार पुरातत्व रसायनज्ञ मे निहित है जो बडी-बड़ी वैज्ञानिक समस्याओ के सम्बन्ध मे अध्ययन और गवेषणा भी करता है जैसे मिट्टी के नमूनो का विश्लेषण चेतन, अचेतन तथा मिट्टी की वस्तुओ की सारभूत पहचान और स्मारको तथा पुरावस्तुओ के उपचार और परिरक्षण की यथोचित पद्धतियो का विकास। इन सब कार्यो के लिए उसकी देहरादून स्थित प्रयोगशाला पर्याप्त रूप से सुसज्जित है। रीजनल कार्यालयो के पथप्रदर्शन और निरीक्षण के अधीन और ऐसे प्राविधिक कर्मचारियो की सहायता से जैसे रसायन सहायक, फोटोग्राफर, मानचित्र बनाने वाले, पुस्तकर्मी तथा प्रयोगशाला सहायक। ये जोन विभागीय सग्रहालय की वस्तुओ और अपने क्षेत्राधिकार में पडने वाले स्मारको का रासायनिक उपचार तथा परिरक्षण करते है।

अभी कुछ ही समय पूर्व पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत भूकालक्रम निर्धारण और वातावरण विषयक पुरातत्व विज्ञान का अध्ययन आरम्भ किया गया है और इसके लिए पुरातत्व रसायनज्ञ के पथ-प्रदर्शन और निरीक्षण मे काम करने वाले एक अतिरिक्त सहायक पुरातत्व रसायनज्ञ की नियुक्ति की गयी है।

उद्यान शाखा

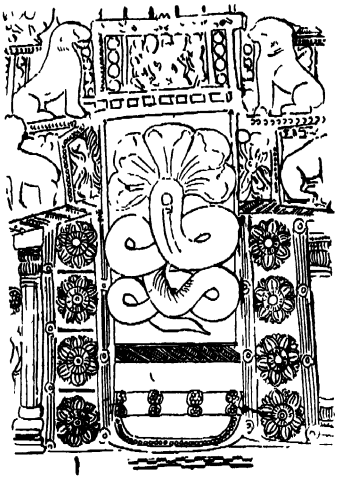
प्राचीन स्मारको के परिरक्षण के उपाय स्वरूप और विशेष रूप से उस समय जबकि स्मारक के मूल नक्शे मे उद्यान रहे हो, स्मारको के अन्दर और उनके चारो ओर उद्यान लगाने की परिपाटी का समारम्भ जान मार्शल ने किया। परन्तु यह कार्य प्रत्यक्ष रूप से सर्वेक्षण द्वारा नही किया जाता था। 1947 मे पुरातत्व क्षेत्रों के उद्यान सम्बन्धी कार्य का दायित्व, सर्वेक्षण के अधीन काम करने वाले, उद्यानो के एक अधीक्षक तथा सहायक अधीक्षक को सौपा गया। उसका कार्य क्षेत्र पहले दिल्ली तक ही सीमित था, परन्तु बाद मे उसका विस्तार आगरे तक कर दिया गया। इस प्रकार तथा अन्य प्रकार से उसके कार्यक्षेत्र मे विस्तार हो जाने पर इस शाखा मे एक अन्य सहायक अधीक्षक बढाया गया। कुछ समय पूर्व इस शाखा का पुनर्गठन एक तर्कसगत तथा व्यापक आधार पर किया गया है। शाखा का समग्र प्रशासनिक तथा प्राविधिक नियत्रण उद्यान-अधीक्षक के हाथ मे है जिसका प्रधान कार्यालय आगरे मे है और उद्यान सम्बन्धी कार्यों का वास्तविक निष्पादन ऐसे तीन जोनों मे से एक के द्वारा किया जाता है जिनमे कि देश का विभाजन कर दिया गया है। इन जोनों के प्रधान कार्यालय क्रमश आगरा, दिल्ली तथा बगलौर मे है।

संग्रहालय शाखा

पुरातत्व सग्रहालय कुछ समय पूर्व तक केन्द्रीय सरकार के नियत्रण के अधीन भारत के पुरातत्व सर्वेक्षण के अधिकार मे रहे है। इन सग्रहालयो का वर्गीकरण चार कोटियो मे किया जा सकता है—(एक) पुरातत्व शाखा, भारतीय सग्रहालय, कलकत्ता (दो) केन्द्रीय एशियाई पुरावस्तु सग्रहालय, नई दिल्ली, (तीन) सर्वेक्षण के स्थानीय सग्रहालय और (चार) राष्ट्रीय सग्रहालय जो अब एक स्वतत्र संगठन है। स्थानीय सग्रहालयो पर अब भारतीय सग्रहालय की पुरातत्व शाखा के अतिरिक्त सर्वेक्षण की संग्रहालय शाखा का भी नियत्रण है। इस शाखा का प्रधान कार्यालय कलकत्ता मे है। स्थानीय सग्रहालय तीन जोनो मे विभाजित किये गये है—केन्द्रीय (साची), पूर्वी (सारनाथ) और दक्षिण (मद्रास)।

सर्वेक्षण के विद्यमान सग्रहालय ये है—साची, खजुराहो, सारनाथ, नालन्दा, बोध-गया, अमरावती, नागार्जुनकोण्डा, हाम्पी और कोण्डापुर के पुरातत्व सग्रहालय, लाल किला सग्रहालय, दिल्ली, फोर्टसेंट जार्ज संग्रहालय, मद्रास और टीपू सुल्तान, सग्रहालय, श्रीरगपट्टन्। आशा है कि कुछ समय मे वैशाली, रत्नगिरि, कोणार्क, रोपड तथा लोथल मे भी नये सग्रहालय बन जाएंगे।

(रूपान्तर ईश्वर चन्द्र निगम)



स्वाधीनता के बाद

खोज और खुदाई

ब्रजवासी लाल

पुरातत्वीय क्षेत्र मे स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् वस्तुत हमने
ं कितनी प्रगति की है इसका अनुमान करने के लिए हमे पहले
ह देखना होगा कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय हमारी इस क्षेत्र मे
या स्थिति थी। उस समय अन्य लोगो ने इस सम्बन्ध मे क्या विचार
कट किए थे, इसकी छानबीन करना अनुचित होगा, अत उस समय
ी स्थिति का चित्र उपस्थित करने के लिए, चाहे वह अपूर्ण ही क्यो
हो, इन पक्तियो के लेखक ने इस बारे मे 1948 मे जो कुछ लिखा
ा, उसी का उद्धरण उपयुक्त होगा "भारतीय पुरातत्व की
र्तमान प्रमुख समस्याओ मे से एक समस्या उस समय की कडिया
ोडना है जोकि 3000–2000 ई० पू० की सिधु सभ्यता को
ारभिक ऐतिहासिक युग (चौथी शताब्दी ई० पू०) की सस्कृतियो
ा अलग करता है। यदि हम ऐसे स्थल खोज सके, जिनकी सबसे
नचली तह मे हड़प्पा सस्कृति के अवशेष हो और सबसे ऊपर
ारभिक ऐतिहासिक युग के, और दोनो के मध्य की तहो मे निरतर
सरे अवशेष हों तो यह समस्या सुगमतापूर्वक हल हो सकती है।
कन्तु बात ऐसी नही है, इसलिए इस समस्या का समाधान कई
थलों की खुदाई करके और फिर उन्हे दो वर्गों मे रखकर करना
ोगा अर्थात्, (1) वे स्थल जिनकी सबसे नीचे की तह मे हडप्पा
स्कृति के अवशेष हैं और उनके ऊपर पीछे की सस्कृतियो के
वशेष है और (2) वे स्थल जिनकी ऊपर की तह मे आरभिक

ऐतिहासिक युग के अवशेष हैं और उनके नीचे पूर्ववर्ती सस्कृतियो के अवशेष मिलते है। इस प्रकार दो निश्चित तथ्यों की, जिनमे से एक कालक्रम के अनुसार सबसे नीचे का और दूसरा सबसे ऊपर का है, सहायता से एव प्रथम वर्ग मे नीचे से ऊपर तथा दूसरे वर्ग मे ऊपर से नीचे की ओर ज्ञात से अज्ञात का पता लगाते हुए विभिन्न पुरातन सस्कृतियो की शृखला तैयार करना सभव होगा, जो अन्ततोगत्वा इस लम्बे समय की कडियो को जोड सकने मे समर्थ होगी।"[1]

हमारी स्वतन्त्रता के पन्द्रहवे वर्ष मे आज यह दावा तो नही किया जा सकता है कि इस कडी को पूरी तरह जोड दिया गया है, फिर भी इतना तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि उस पुल के मुख्य स्तम्भ खडे कर दिए गए है और उसका आधा निर्माण काम भी हो चुका है।

इस कडी को जोडने के इस महान् कार्य मे एव अन्य पुरातत्वीय क्षेत्रीय कार्य मे सारा काम केवल भारत के पुरातत्वीय सर्वेक्षण ने ही नही किया है, अपितु इसका थोडा बहुत श्रेय आध्रप्रदेश, गुजरात, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, मैसूर, राजस्थान आदि जैसे राज्यो के राज्यीय पुरातत्व विभागो को और इलाहाबाद, बनारस, बडौदा, कलकत्ता तथा सागर जैसे विश्वविद्यालयो तथा दकन कालिज पोस्ट ग्रेजुएट रिसर्च इन्स्टीट्यूट पूना, के० पी० जायसवाल रिसर्च इन्स्टीट्यूट पटना आदि जैसी अनुसधान सस्थाओ को भी है।

सिंधु सभ्यता—नवीन प्रकाश

सिंधु सभ्यता की समाप्ति और प्रागैतिहासिक युग के आरभ के बीच के अधकार युग का सर्वेक्षण करने से पूर्व यह जान लेना उपयुक्त होगा कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् स्वय सिंधु सभ्यता के बारे मे कितनी नयी बाते सामने आयी ह। खोज और खुदाई दोनो से ही यह प्रकट होता है कि इस सभ्यता को केवल सिंधु घाटी तक ही सीमित समझना उचित नही है, क्योकि अब यह ज्ञात हो चुका है कि इसका विस्तार, पूर्व मे, उत्तर प्रदेश की गगा-यमुना घाटी मे स्थित आलमगिरपुर[2] तक, उत्तर मे पजाब स्थित शिवालिक पहाडियो के नीचे रोपड[3] तक तथा दक्षिण मे नर्मदा और ताप्ती के बीच बहने वाली और अरबसागर मे गिरने वाली एक छोटी नदी 'किम' पर स्थित भगतराव[4] तक था। हो सकता है कि भविष्य मे इस सभ्यता के और आगे विस्तार की और भी खोज हो, किन्तु जितने विस्तार का ज्ञान हो चुका है उसको देखकर गर्व नही तो सतोष अवश्य होता है कि भारत-पाक उप-महाद्वीप की इस महान् सभ्यता का विस्तार मिस्र की नील घाटी अथवा इराक की दजला फरात घाटी की समकालीन सभ्यता के क्षेत्र से कही अधिक विशाल था।

और इसका अत यही नही हो जाता। रोपड और आलमगिरपुर की खुदाइयो से, और राजस्थान मे गगानगर जिले के कालीबगन[5] तथा गुजरात मे अहमदाबाद जिले के लोथल[6] स्थान पर जो खुदाई हुई है, उनसे इस सभ्यता सम्बन्धी हमारे ज्ञान की काफी अभिवृद्धि हुई है। घग्गर (प्राचीन सरस्वती) नदी के, जो कि अब सूख गयी है, दक्षिणी किनारे पर स्थित कालीबगन नामक प्राचीन स्थल पर दो टीले प्रमुख है। इनमे से एक टीला बडा है जोकि पूर्व मे स्थित है और दूसरा जोकि अपेक्षाकृत छोटा है पश्चिम मे है। खुदाई से ज्ञात हुआ है कि बडे टीले वाले मकान तो मिट्टी पर ही बने हुए थे किन्तु छोटे टीले वाले मकान ईट गारे के ऊचे चबूतरे[7] पर बने हुए थे। जब हम यह सोचते हैं कि हडप्पा और मोहनजोदडो स्थानो मे भी ऐसे दो-दो टीले हैं जिनमे से पश्चिमी टीले का दुर्ग होना निश्चित हो चुका है, तो यह अचम्भा होने लगता है कि कही कालीबगन मे भी तो यही स्थिति नही थी। यह स्थान प्राचीन वस्तुओ की दृष्टि से बडा समृद्ध है, किन्तु टूटे बर्तनो के दो टुकडे बहुत ही रोचक है जिनमे से प्रत्येक पर थोडी-थोडी लिखावट भी है (फलक एक), और उन अक्षरो की बनावट से यह स्पष्ट होता है कि हडप्पा लिपि मे दाये से बाये ओर लिखने का नियम था न कि बाये से दाये जैसा कि कुछ अन्य विद्वानो का मत है।

लोथल की खुदाई मे पता चलता है कि हडप्पा सस्कृति के इस नगर मे एक नावघाट होने के कारण बडी चहल पहल रहती थी (फलक दो)। नावघाट 218 मीटर लम्बा 37 मीटर चौडा था और एक सात मीटर चौडी नहर द्वारा पास ही बहने वाली नदी मोगानो से जुडा हुआ था। इराक मे बहुत से स्थलो पर अनेको वर्ष पूर्व पायी गयी हडप्पा सभ्यता की मुहरे तथा अभी हाल मे लोथल मे प्राप्त एक 'बेहराइन'-प्रकार की मुहर (फलक तीन) नि सदेह यह सकेत करती हैं कि 3000–2000 ई० पू० के बीच शायद भारत तथा पश्चिमी एशिया के बीच व्यापारिक सम्बन्ध थे किन्तु इस खोज ने कि लोथल मे, एक नावघाट था, इस बात की पुष्टि कर दी है कि व्यापार का स्वरूप कैसा था। अब आसानी से ही उन छोटी-छोटी नावो की कल्पना की जा सकती है, जैसा कि वस्तुत हडप्पा युग की मुहरो मे भी खुदी हुई हैं, जो अरब सागर और फारस की खाडी के

1 ब्रजबासी लाल, "शिशुपालगढ 1948 · पूर्वी भारत का एक प्राचीन ऐतिहासिक गढ", एन्डयेट इडिया, सख्या 5 (जनवरी 1949) पृष्ठ 62–63।

2 खुदाई कर्ता यज्ञदत्त शर्मा, इडियन आर्क्योलौजी-ए रिव्यू 1958-59 पृष्ठ 50-55, आगे से इस प्रकाशन का उल्लेख आई० ए० नाम स किया जाएगा।

3 खुदाई कर्त्ता यज्ञदत्त शर्मा, आई० ए० 1953-54 पृष्ठ 6–7 और 1954-55 पृष्ठ 9

4 खोज कर्त्ता एम० आर० राव आई ०ए० 1957-58 पृष्ठ 14–15।

5 खुदाई कर्ता प्रस्तुत लेखक, आई० ए० 1960-61 (प्रेस में)।

6. खुदाई कर्ता एस० आर० राव आई० ए० 1954-55 पृष्ठ 12, 1955-56 पृष्ठ 6-7, 1956-57 पृष्ठ 15–16, 1957-58, पृष्ठ 12-13, 1958-59 पृष्ठ 13–15, और 1959-60, पृष्ठ 16–18

7 भूमि के सर्वेक्षण से प्लेटफार्म की परिधि के साथ गढ की एक दीवार का पता चलता है। यद्यपि इस की पुष्टि खुदाई के द्वारा होना शेष है।

कनारे-किनारे कपास की वस्तुए, मसाले आदि भारत से बाहर
ा जाती थी और उनके बदले मे पश्चिमी एशिया से प्रसाधन-द्रव्य
था इसी प्रकार की अन्य वस्तुए लाती थी। क्या तत्कालीन सुमेरिया
: अभिलेखो मे सुमेरिया तथा पूर्व के बीच उन दिनो होने वाले
यापार का उल्लेख नही है ?

लोथल की खुदाई से एक और नयी बात का पता चला है और
ह है मृतको को दफनाने की प्रक्रिया। कुछ कब्रो मे दो मृत-शरीर
क साथ पाये गये है (फलक-चार)। यदि मानव-विज्ञान के परीक्षण,
ो कि किया जा रहा है, इन मामलो मे यह प्रकट करते है कि दफनाए
ए व्यक्तियो मे जो हर जगह एक पुरुष और दूसरी नारी है तो हमे
क बडे ही सामाजिक-धार्मिक महत्व की बात का पता चल सकता है।

धिकार युग—प्रधान लक्ष्य

अब हम अधकार युग को लेते है जोकि हमारा प्रधान लक्ष्य
। इसको समझने के लिए अच्छा यह होगा कि हम इसकी चर्चा
त्रवार करे। हम प्रारम्भ मे उत्तर भारत की चर्चा करेंगे और फिर
ीरे-धीरे दक्षिण की ओर बढेंगे ।

उत्तर प्रदेश के मेरठ जिले मे गगा के दाहिने किनारे पर स्थित
स्तिनापुर नामक स्थान पर 1950–52 मे खुदाई की गयी थी।
मसे पाच कालो की सभ्यताओ का, जोकि नीचे से ऊपर की सभ्य-
ाओ के द्योतक है, पता चला है और इन सभी सभ्यताओ का अन्तर
पष्ट है।[8] आरम्भिक युग मे प्रयुक्त होनेवाले आग मे अधपकाए
ात-रक्तिम (ओकर) रग वाले बर्तन उत्तर प्रदेश के बिसौली,
ाजपुर परसू[9] और बहादुराबाद[10] नामक स्थानो पर प्राप्त सामग्री
आधार पर ताम्र पदार्थों के (जोकि ताम्र सचय के नाम से अधिक
ोकप्रिय है) समकालीन प्रतीत होते है। इनमे हारपून, पैनी तलवारे,
कीले भाले, मानुषी आकृतिया आदि शामिल है। ये वस्तुए प्रमुख
प से गगा घाटी मे ही पायी जाती है, किन्तु दक्षिण मे आध्र प्रदेश
कलूर नामक स्थान तक फैली हुई है। परिणामस्वरूप इस सचय
ो अवधि निर्धारित करना सभव है (भले ही यह अवधि अस्पष्ट
ा) अर्थात् ई० पू० दूसरी सहस्राब्दी का उत्तरार्द्ध ।

हस्तिनापुर का द्वितीयकाल विशेष ध्यान देने योग्य है। इस
मय के निवासी दूसरे प्रकार के ही बर्तनो का उपयोग करते थे,
ो आरम्भिक युग से बिल्कुल ही विभिन्न है और पुरातत्ववेत्ता
न्हे भूरे चित्रित बर्तन (पेटेड ग्रेवेयर) कहते है। जैसा कि नाम से
ा प्रकट है, ये बर्तन भूरे रग के है और इन पर विभिन्न प्रकार की
त्रकारी अकित है, जो प्राय काले रग मे है। इन बर्तनो मे सामान्यतया विभिन्न प्रकार के कटोरे तथा थालिया है, लोटे भी प्राय: मिलते है (फलक-पाच)। मकान मिट्टी अथवा मिट्टी द्वारा लेसित ठट्टरो से बने हुए थे। उन दिनो लोगो का धधा मुख्यत खेती करना और पशुपालन था। वे कभी-कभी शिकार भी किया करते थे। पालतू पशुओ मे विशेष रूप से घोडे का नाम लिया जा सकता है किन्तु जहा तक हमारी जानकारी है यह पशु हड़प्पा वालो ने उपयोग मे नही लिया था। औजार तथा हथियार प्रधान रूप से ताबे के बनाये जाते थे, हालाकि इस अवधि के पिछले भाग मे लौह-मल निर्मित वस्तुए भी मिली है।[11]

जब द्वितीय काल के अवशेषो की ऊचाई दो मीटर थी, तो गगा मे भीषण बाढ आयी जिसके द्वारा उनका बहुत कुछ भाग पानी मे बह गया था। इस ध्वस का पता स्वत टीले के कटावो से ही नही (फलक-छ) अपितु पानी द्वारा बहाये गये उस सामान से भी मिलता है, जो नदी की तलहटी मे पानी के स्तर से पन्द्रह मीटर की गहराई मे अधूरे खडो में मिला है।

कुछ समय बाद इस स्थल पर फिर लोग बस गये और ये लोग उत्तरी काली पालिश वाले बर्तनो का उपयोग करते थे, जिन्हे कौशाम्बी,[12] तक्षशिला[13] आदि स्थानो पर प्राप्त वस्तुओ के आधार पर ईसा पूर्व छठी शती से ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी तक का काल दिया जा सकता है। बाढ के बारे मे कहा जा सकता है कि वह ई० पू० आठवी शती मे आयी थी तथा विचित्र बर्तनो का आरम्भ काल यदि और अधिक पहले नही, तो ई० पू० 1100 अवश्य माना जा सकता है।

रोपड तथा आलमगिरपुर मे प्राप्त भूरे चित्रित बर्तन एक ओर हडप्पा सस्कृति तथा दूसरी ओर उत्तरी काली पालिश वाले बर्तनो के बीच आते है और न्यूनाधिक रूप मे इनकी अवधि भी ठीक वही है जोकि हस्तिनापुर मे प्राप्त चित्रित भूरे बर्तनो के बारे मे अस्थायी तौर पर सुझायी गयी है। फिर भी इन अवधियो मे से प्रत्येक अवधि की ऊपरी और नीची अवधि मे लगभग एक शती का हेरफेर हो सकता है।

खोज के आधार पर पता चलता है कि ये बर्तन पश्चिम मे लखियापीर[14] (पाकिस्तान), पूर्व मे वैशाली[15] (हालाकि कुछ बिगडे

8 ब्रजबासीलाल हस्तिनापुर की खुदाई और ऊपरी गगा तथा सतलज के क्षेत्र मे की गई अन्य खोजे, 1950-52, एन्श्येट इडिया, सख्या 10 और 11 (1954 और 55), पृष्ठ 5–151 ।

9 ब्रजवासीलाल, "गगा की तलहटी से प्राप्त और भी ताम्र-वस्तुए और समस्या पर पुनर्विचार", **एंश्येंट इंडिया**, सख्या 7 (1951), पृष्ठ 20-39 ।

10 खुदाई कर्ता यज्ञदत्त शर्मा, 1952 मे

11 भूरे मिट्टी के चित्रित बर्तनो का प्रयोग करने वाले पश्चाद्वर्ती निवासियो द्वारा लौह प्रयोग करने के साक्ष्य उसके बाद से आलमगिरपुर मे प्राप्त हुए है।

12 जी० आर० शर्मा, दि एक्सकेवेशन्स एट कौशाम्बी 1957-59 (इलाहाबाद, 1960)

13 कृष्णदेव और आर० ई० एम० ह्वीलर, एन्श्येट इडिया सख्या 1 (1946), पृष्ठ 55–56 ।

14 भारत के पुरातत्वीय सर्वेक्षण के पास एन० जी० मजूमदार के सग्रह मे पहचाने गये।

15 खुदाई कर्ता अनन्त सदाशिव आल्तेकर तथा सीताराम राय, आई० ए० 1958-59, पृष्ठ 12, के० देव तथा बी० के० मिश्र का वैशाली-एक्सकेवशन्स (वैशाली, 19(1) भी देखिये ।

रूप मे), उत्तर मे रोपड और दक्षिण मे उज्जैन[16](बहुत ही सीमित सख्या मे) तक प्राप्त हुए हैं । मुख्यत ये बर्तन हमारी वर्तमान जानकारी के अनुसार, सतलज, घग्गर (प्राचीन सरस्वती),[17]यमुना और ऊपरी गगा मे मिले है । ऊपर बताये गये स्थलो के अतिरिक्त, विशेषरूप मे ये अहिच्छत्र, कुरुक्षेत्र, मथुरा, बैराट, काम्पिल, श्रावस्ती, कौशाम्बी के (यहा और वैशाली और उज्जैन मे काफी बाद मे) स्थल है जिनका उल्लेख किसी न किसी रूप मे महाभारत की कथा मे भी आया है ।

बर्तनो के सम्बन्ध मे ऊपर बतायी गयी कालावधि और भौगोलिक विभाजन वस्तुत बहुत ही महत्व का है क्योकि जहा तक हम आज जानते है उसके अनुसार न्यूनाधिक रूप मे वे भारत मे आने वाले आर्यों के क्रमश समय तथा क्षेत्र के अनुरूप ही है । इस स्थिति का विशद विवेचन पुराणो के निम्न श्लोको मे और भी हो जाता है

गगायामहृते तस्मिन्नगरे नागसाह्वये
त्यक्त्वा निचक्षुर्नगर कौशाम्ब्या स निवत्स्यति

"जब हस्तिनापुर नगरी गगा मे जलमग्न हो जायगी उस समय निचक्षु उसे छोड कौशाम्बी को अपना निवासस्थान बनाएगा ।"

क्या इस घटना मे इस तथ्य की पुष्टि नही होती कि हस्तिनापुर के भूरे चित्रित बर्तनो वाली बस्ती बाढ के फलस्वरूप सर्वदा के लिए समाप्त हो गयी । इसके साथ ही उक्त श्लोक से यह बात भी स्पष्ट होती है कि इन पात्रो के अन्तिमकाल की ओर ही इनके उपयोग करने वालो ने कौशाम्बी को अपना निवास स्थान बना लिया था ?

फिर भी परिस्थितियो के इतने सुदृढ साक्ष्य के होते हुए भी जिसमे कि चित्रित भूरे बर्तनो का सम्बन्ध आर्यों के साथ स्पष्ट होता है, प्रस्तुत लेखक साग्रह यह कहना चाहेगा कि (जैसा कि पहले भी उसने कहा है)[18] जब तक नृवशशास्त्र और अभिलेखो से ठोस साक्ष्य नही मिल जाते, तब तक इस सम्बन्ध को केवल अस्थायी ही समझा जाए ।

उत्तर भारत की यह कहानी आगे बढती है और हम अधकार युग के अत तक अर्थात् अशोक युग तक आते हैं । इस समय के पश्चात् की पर्याप्त ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध है और इसके लिए कौशाम्बी, राजघाट, श्रावस्ती और वैशाली मे की गयी खोज को श्रेय दिया जा सकता है । कौशाम्बी की खुदाई मे एक राजमहल-दुर्ग का पता चला है जो विशेष उल्लेखनीय है । यह 315 × 150 मीटर की लम्बाई-चौडाई मे स्थित है । यह चूने और पत्थर से बना हुआ है । इसका बाहरी भाग चौकोर पत्थरो से बना है । खुदाई करने वालो के अनुसार यह भवन इससे पहले का भी नही तो 600 ई० पू० के आसपास का है । सभवत. बुद्ध के समकालीन[19] विख्यात राजा उदयन किसी समय इसमे रहते थे । इसी स्थान पर इस भवन से कुछ दूर उपलब्ध एक शिलालेख मे जोकि इस घटना से कुछ शताब्दी बाद प्राप्त हुआ था, इस बात की पुष्टि होती है कि बुद्ध कौशाम्बी गये थे और वह घोषिताराम नामक स्थान पर ठहरे थे ।

कौशाम्बी के सुरक्षा-बाडे की व्यवस्था भी बहुत उल्लेखनीय है । इस चहारदीवारी का क्षेत्रफल तीन वर्ग किलोमीटर तक था यह मिट्टी से बनी हुई एक चौडी दीवार की थी और इस दीवार के साथ पक्की ईटो का एक पुश्ता बना हुआ था, जो दीवार को दृढ बनाने के लिए ही बनाया गया था । तेरह मीटर (फलक-सात) तक यह पुश्ता आज भी देखा जा सकता है । ऐसे ही प्रतिरक्षात्मक पुश्ते अन्य पुराने स्थानो जैसे गगा की घाटी मे श्रावस्ती[20] और राजघाट[21]तथा मध्य भारत मे उज्जैन[22]मे उपलब्ध हैं । इन स्थानो का क्षेत्रफल भी लगभग उतना ही है । उज्जैन मे अवस्थित भवनो की यह विशेषता है कि उनकी रक्षा के लिए नदी तट की ओर एक विशेष लकडी के शहतीरो का बाडा बनाकर उसे दृढ करने का प्रयत्न किया गया है (फलक-आठ) । मजदूरो ने शायद थक कर या काम के आखीर मे सतोष की भावना से अपनी बेकार टोकरिया इस बडे पुश्ते पर डाल दी थी, जिसे वे बना रहे थे । (फलक-नौ)

वैशाली[23] मे की गयी खुदाई के फलस्वरूप एक बहुत प्राचीन स्तूप का पता लगा है । खुदाई विशेषज्ञो के अनुसार सभवत यह लिच्छवियो द्वारा बनाया गया था । यह बुद्ध पुण्यावशेषो का जो भाग उनके हिस्से मे पडा था, उसके ऊपर बनाया गया था ।

सोनपुर[24] मे कोई विशिष्ट वस्तु या ऐतिहासिक दृष्टि से ही महत्वपूर्ण कोई भवन आदि नही मिला है, किन्तु विशुद्ध पुरातत्व की दृष्टि से यह स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है । वहा पर जो काले और लाल रग के मिट्टी के बर्तन मिले है, उनसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उत्तरी काली पालिश वाले बर्तनो से पहले के समय मे मध्यगगा घाटी मे इस प्रकार के पात्र भी प्रयुक्त होते थे । सोनपुर स्थल के कुछ निचले स्थानो की खुदाइयो मे चमकीली प्रस्तर-कुल्हाडिया

16 खुदाई कर्ता एन० आर० बनर्जी आई० ए०, 1955-56 पृष्ठ 19, 1956 = 57, पृष्ठ 20-28, और 1957-58 पृष्ठ 32 और आगे ।

17 ए० घोष, "दी राजपूताना डेजर्ट—इट्स आर्क्योलोजिकल आसपेक्ट," बुलेटिन आफ दी नेशनल इन्स्टीट्यूट आफ साइसज आफ इडिया, सख्या 1 (1952), पृष्ठ 37-42 ।

18 लाल, पूर्वोल्लिखित (1954 तथा 55), पृष्ठ 151 ।

19 आई० ए० 1960-61 (प्रेस मे) ।

20 खुदाई कर्ता के० के० सिन्हा . आई० ए०, 1958-59, पृष्ठ 47 और आगे ।

21 खुदाई कर्ता ए० के० नारायण आई ए० 1960-61 (प्रेस मे) ।

22 सदर्भों के लिए उपर्युक्त सख्या 16 को देखिये

23 अनन्त सदाशिव आल्तेकर, 'दी कोरपोरिअल रैलिक्स आफ दी बुद्ध', जरनल बिहार रिसर्च सोसाइटी, बुद्ध जयन्ती विशेषाक, अक 2 ।

24 खुदाई कर्ता (विभिन्न रूप मे) वी० के० मिश्र तथा बी० एस० वर्मा (अनन्त सदाशिव आल्तेकर की सामान्य देख रेख मे) आई० ए० 1956-57, पृष्ठ 19-20, और 1959-60, पृष्ठ 11 ।

भी उपलब्ध हुई है । यह तथ्य दिलचस्प होने के साथ ही विद्वानो के लिए एक समस्या भी है ।

उपर्युक्त सक्षिप्त सर्वेक्षण मे उत्तर भारत मे हडप्पा (सिन्धु) सस्कृति और प्रागैतिहासिक अवधि के बीच के अधकार युग पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है । अब हम दक्षिणवर्ती स्थानो पर विचार करेगे और यह देखेगे कि इस क्षेत्र मे वहा क्या सफलताए मिली है ।

कुछ इतिहासकारो का मत है कि हडप्पा की सस्कृति अनायास ही अवरुद्ध हो गयी । इसका उत्तरदायित्व या तो नदियो की तेज बाढ पर है अथवा आक्रमणकारियो के दुर्दान्त आक्रमणो पर । इसका कारण कुछ भी रहा हो किन्तु इस की कल्पना करना कठिन है कि जनसख्या का इतना बडा भाग एकदम किस प्रकार विलीन हो गया होगा । लोथल[52] मे की गयी खुदाई से ठीक इसी बात का उत्तर मिलता है । (लोथल ख) मे, जोकि ऊपरी स्तर पर है, भौतिक सस्कृति मे कुछ क्रमिक परिवर्तन दिखायी देता है, जिसका शनै शनै विकास हुआ है । पुरानी किस्म के मिट्टी के बर्तन धीरे-धीरे लुप्त होते जाते हैं और उनके स्थान पर नई किस्मो का प्रादुर्भाव होता जाता है । हडप्पा सस्कृति मे मुहरो का एक विशेष स्थान रहा है । किन्तु यहा पर हम पाते है कि उनका रूप गिरता जाता है । इन मुहरो पर पशुओ की आकृति प्राय लुप्त हो गयी है । इसी प्रकार बिल्लौर (चर्ट) के लम्बे फालो (ब्लेडो) के स्थान पर सुलेमान पत्थर (एगेट) अथवा श्वेतवर्ण स्फटिक (कैल्सेडनी) के छोटे-छोटे फाल मिलते है । पकी हुई ईटो का स्थान कही पर मिट्टी की ईटो ने ले लिया है और कुछ स्थानो पर सिर्फ गारा ही काम मे लिया गया है । नगर नियोजन और सडको पर पानी की नालिया बनाना अब बीते युग की बात ही रह गयी है । पुरातत्व की यही कहानी फिर रगपुर[26] मे भी दिखायी पडती है, जो लोथल से पचास किलोमीटर दूर दक्षिण-पश्चिम मे स्थित है । यहा पर लघु-पाषाण कालीन अवशेषो के ऊपर हडप्पा सस्कृति के अवशेष मिलते हैं (रगपुर दो-क) । इसके बाद सक्रमण युग प्रारम्भ होता है—रगपुर दो-ख । स्थूल रूप मे इसे लोथल-ख के समकक्ष रखा जा सकता है । रगपुर दो-ग के समय तक, छोटे फाल, चमकीले लाल मिट्टी के बर्तन, इत्यादि नई चीजे विशेषरूप से दृष्टिगोचर होने लगती है । रगपुर-तीन मे इस स्थल की आखीरी बस्ती ई० पू० एक सहस्राब्दी के आसपास की है और उस समय तक स्थिति हडप्पा की तुलना मे इतनी अधिक बदल जाती है कि यदि रगपुर दो-ख और रगपुर दो-ग के दो मध्यवर्ती काल न होते, तो यह विश्वास करना कठिन हो जाता कि रगपुर-तीन के निवासी वस्तुत हडप्पा के ही अवशिष्ट हैं । गुजरात मे इस प्रकार के अवशेषो का इतिहास खोजने पर रोजडी[27] और प्रभासपट्टन[28] म की गयी खुदाई स इस पर महत्वपूण प्रकाश पडा है । गुजरात मे हडप्पा सस्कृति के परिवर्तन का अवनति की यही कहानी है । अन्य प्रदेशो मे भी ठीक इसी भाति अनुमान करना कठिन ही होगा । सच तो यह है कि रोपड के निकट बाडे[29] मे प्राप्त अथवा स्वय रोपड मे ही ऊपरी स्तरो के हडप्पा सस्कृति के अवशेष भी क्या इसी बात की ओर सकेत नही करते है ?

इस उत्क्राति मे नवीन तथा बाह्य तत्व भी आ जाते है । सम्पूर्ण पश्चिम एशिया के इतिहास को देखते हुए कहा जा सकता है कि हडप्पा युग कठिनाइयो से परिपूर्ण था । उस समय बडे परिवर्तन तथा जनक्रान्तिया हो रही थीं । मध्य प्रदेश मे नीमाड जिले मे नर्मदा के दक्षिणी तट पर स्थित नबदाटोली[30] नामक स्थान इस बात का प्रत्यक्ष साक्षी है । यहा ताम्र युग के स्तरो के, जो पदार्थों पर किए गए कार्बन–14 परीक्षण के आधार पर ईसा से 1600 से 1200 वर्ष पूर्व माना गया है, मिट्टी के विभिन्न किस्म के बर्तन मिले हैं जिनमे चौडे पेदे के कटोरे, नलीदार प्याले, (फलक 10 क और ख) प्लेटनुमा मुह, मुडी हुई गर्दन और विशाल आकार वाले बर्तन आदि हैं । खुदाई विशेषज्ञो के अनुसार ये बर्तन ईरान मे प्राप्त इसी किस्म के बर्तनो से मिलते जुलते हैं । नवदाटोली (फलक-ग्यारह) के निवासी अहाते से घिरे हुए गुफा की भाति वाले मकानो मे रहते थे, जो गोलाकार अथवा लम्बे होते थे । वे लोग पशु-पक्षी पालते थे, मछली भी पकडते थे और खेती बाडी भी करते थे । इसके साथ ही गेहू, चावल, चने, मटर, मूग, कुलट्था, तिल आदि तथा अन्य अनेक प्रकार की फसले बोते थे ।

जहा तक मध्य भारतीय ताम्रयुगीय सस्कृति का सम्बन्ध है, उसका बहुत कुछ पता नागदा[31], त्रिपुरी,[32] आवडा[33] और ऐरण[34] की खुदाई से चला है । इनमे से कुछ स्थल तो इस बात के द्योतक है कि आदि-ऐतिहासिक काल मे मध्य भारत तथा दक्षिणी राजस्थान के

---

25 सदर्भों के लिए देखिये सख्या 6 ।

26 खुदाई कर्ता एस० आर० राव . आई० ए० 1953-54, पृष्ठ 7, और 1954-55, पृष्ठ 11-12 ।

27. खुदाई कर्ता पी० पी० पाड्या आई० ए०, 1957-58 पृष्ठ 18, और 1958-59 पृष्ठ 19-21 ।

28 खुदाई कर्ता (विभिन्न रूप मे) बी० सुब्बाराव तथा पी० पी० पाड्या आई० ए० 1955-56, पृष्ठ 7-8, और 1956-1957 पृष्ठ 16-17 ।

29 खुदाई कर्ता यज्ञदत्त शर्मा आई० ए० 1954-55, पृष्ठ 9-11 ।

30. एच० डी० साकलिया, बी० सुब्बाराव, तथा एस० बी० देव, 'एक्सकेवेशन्स एट महेश्वर एण्ड नवदाटोली 1952-53 (पूना तथा बडौदा 1958) और आई० ए० 1957-58 पृष्ठ 29-33, और 1958-59, पृष्ठ 30-31 ।

31 सचालनकर्ता एस० आर० बनर्जी, आई० ए० 1955-56, पृष्ठ 11-19 ।

32 एम० जी० दीक्षित, त्रिपुरी—1952 (नागपुर, 1955)

33 सचालनकर्ता एच० वी० त्रिवेदी आई० ए० 1959-60, पृष्ठ, 24-25 ।

34 सचालनकर्ता कृष्णदत्त वाजपेयी आई० ए० 1960-61 (प्रेस मे) ।

सास्कृतिक सम्बन्ध क्या थे । आहार[35], गिलुड[36] इत्यादि स्थानो म उत्तरवर्ती क्षेत्र में ताम्रयुगीन सस्कृति के जो अवशेष मिले है इसके बर्तन लाल रग की पृष्ठभूमि पर काले चित्र वाले परम्परागत बर्तन न होकर काले और लाल रग के और सफेद चित्रकारी वाले बर्तन है । दीर्घ पाषाण कालीन काले और लाल रग वाले बर्तनो के उद्गम मे इन बर्तनो का स्थान कहा पर है, इसके विषय मे निश्चित जानकारी आगे की खोज मे मिलेगी ।

नर्मदा की घाटी से ताप्ती तक आने पर दो-दो नगरो वाले दो महत्वपूर्ण स्थल मिलते है प्रकाश[37] और कोरगट जो धूलिया जिले मे ताप्ती नदी के उत्तरी और दक्षिणी तटो पर क्रमश स्थित है और फिर बहाल[38] और टेकवाडा है, जो जलगाव जिले मे गिरना के क्रमश उत्तरी और दक्षिणी तटो पर स्थित है । इनमे से प्रत्येक मे पहले स्थानो पर मानवनिवास के व्यापक अवशेष मिले है और पिछले स्थानो पर कब्रे मिली है । टेकवाडा मे जो कब्रे मिली है वे इतिहास की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है । उत्तरवर्ती दीर्घपाषाणकालीन इन कब्रो मे पाषाण कालीन वस्तुओ के आशिक अवशेष ही नही है किन्तु उनमे कुछ प्रस्तर सामग्रिया भी है । इनके एक ओर लाल की पृष्ठभूमि मे काले चित्रण वाले बर्तन है तो दूसरी ओर काले और लाल के मिश्रित रग वाले बर्तन भी है । इनमे से एक पर सफेद काम भी है । पिछली कोटि के बर्तनो की आकृति की तुलना ब्रह्मगिरि[39] की दीर्घपाषाण कालीन युग के दो मिस्टो की रचना से पहले के अवशेषो से की जा सकती है ।

ऊपरी गोदावरी घाटी मे कुछ भिन्नता लिए हुए ताम्रयुगीन सस्कृति के चिह्न मिलते हैं । वहा पर उपलब्ध चीनी मिट्टी के बर्तनो की, जो जोरवेवेयर[40] के स्थल पर प्राप्त होने के कारण उसी नाम से विख्यात है, विशेषता यह है कि इन पर हलकी लाल सतह पर काले रग की चित्रकारी की गयी है । इन बर्तनो मे प्रमुख आकार ये है—नाव की आकार वाला कटोरा और लम्बी टोटीदार पात्र । इस सस्कृति मे सम्बन्धित अन्य उल्लेखनीय स्थल नासिक,[41] नेवासा,[42] डैमाबाद[43] और चदोली[44] है । डैमाबाद के अवशेषो से पता चलता है कि यह विभिन्न ताम्रयुगीन सस्कृति नवदाटोली (रेखाचित्र-एक) से उत्तरवर्ती है । नवदाटोली के उपलब्ध जोरवेवेयर की स्थिति से ऐसे पारस्परिक सम्बन्ध का पूर्ण समर्थन होता है । नेवासा से प्राप्त एक चारकोल के टुकडे की कार्बन—14 जाच से उसकी तिथि 3106 ई० पू० तय की गयी है । इससे भी इसका समर्थन होता है । इस सस्कृति की अन्य विशेषताओ मे पालिश की गयी प्रस्तर कुल्हाडिया का और मृत बच्चो को गाडने और कभी-कभी वयस्को को गाडने के लिये भी प्रयुक्त किए जाने वाले बहुप्रयोजनीय बडे पात्रो का मिलना है । नेवासा मे मिले एक गढे हुए शरीर के पास बैरलनुमा सत्रह गुरियो का एक हार मिला है जो एक डोरे मे पिरोया हुआ है । विशेषज्ञ डा० ए० एन० गुलाटी के मत से यह धागा सफेद रेशम का बना है । भारत मे अतीत मे रेशम के उपयोग का अब तक जो पता चला है, उसमे वस्तुत यह सबसे पुराना साक्ष्य है ।

अब हम सुदूर दक्षिण की ओर बढते है । सन् 1947 मे सर मार्टीमेर ह्वीलर ने ब्रह्मगिरि[45] की खुदाई कराई थी । उसके फलस्वरूप सस्कृति की स्पष्ट शृखलाओ का एक चित्र प्रस्तुत हो गया था यह भारत के इस भाग की पुरातन सस्कृति का एक देशाक बन गया था । नीचे से ऊपर की ओर इन सस्कृतियो का क्रम इस प्रकार था (1) पालिश की हुई प्रस्तर कुल्हाडी सस्कृति इसके दो उपविभाग है (क) और (ख) इसमे से पहली सस्कृति की विशेषता यह है कि इसमे लाल पृष्ठभूमि पर काले चित्रण वाले और हल्के पीतरक्तिम पर बैगनी चित्र वाले बर्तन भी मिलते है, (2) दीर्घपाषाण सस्कृति, (3) आध्र सस्कृति । यह भी देखा गया था कि उपर्युक्त (1) तथा (2) श्रेणी मे और (2) तथा (3) मे कही-कही परस्पर सम्मिश्रण भी हुआ है ।

सन् 1947 के पश्चात् दक्षिण भारत मे की गई खुदाई से चमकीली प्रस्तर कुल्हाडी वाली सस्कृति पर महत्वपूर्ण प्रकाश पडा है, वही दूसरी ओर दीर्घपाषाणकालीन सस्कृति के बारे मे भी महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त हुई है । आध्र प्रदेश के जिला बेलारी मे सनगतकल्लू[46] मे किए गए कार्यों से यह स्पष्ट हो गया है कि ब्रह्मगिरि एक-क सस्कृति जो लाल पृष्ठभूमि पर काले चित्रण के बर्तनो वाली

35 खुदाई कर्ता आर० सी० अग्रवाल आई० ए० 1954-55 पृष्ठ 14-15, 1955-56, पृष्ठ 11 ।

36 खुदाई कर्ता प्रस्तुत लेखक आई ए०, 1959-60, पृष्ठ 41-46 ।

37 खुदाई कर्ता बी० के० थापर आई० ए० 1954-55, पृष्ट 13 ।

38 खुदाई कर्ता एम० एन० देशपाडे, आई० ए० 1956-57 पृष्ठ 17-18 ।

39 आर० ई० एम० ह्वीलर ब्रह्मगिरि, एण्ड चन्द्रावली 1947 मेगालिथिक एण्ड अदर कल्चर्स इन मैसूर स्टेट, एन्श्येट इडिया, सख्या 4 (1947-48), पृष्ठ 221-23 ।

40 एच० डी० साकलिया तथा एस० बी० देव, रिपोर्ट आन दी एक्सकेवेशन्स एट नासिक एण्ड जोरवे 1950-51 (पूना, 1955)।

41 वही

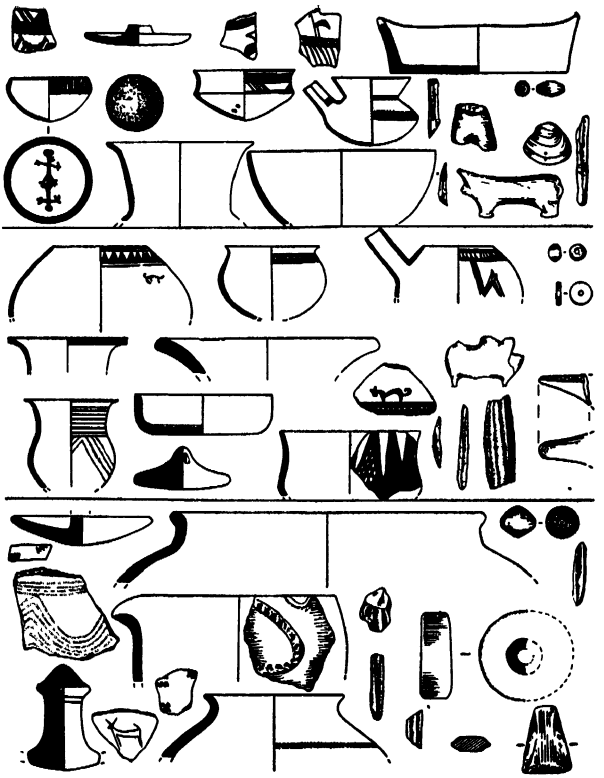
42. एच० डी० साकलिया, बी० सुब्बाराव, एस० बी० देव, जैड० ए० अन्सारी तथा ऐस० इहरहार्ट, फ्रोम हिस्ट्री टू प्रीहिस्ट्री एट नवासा (पूना, 1960), आई ए० 1954-55 पृष्ठ 5-9, 1959-60, पृष्ठ 25-28, और 1960-61 (प्रेस मे) ।

43 खुदाई कर्ता एम० एन० देशपाडे, आई० ए० 1958-59, पृष्ठ 15—18 ।

44 खुदाई कर्त्ता एच० डी० साकलिया, एस० बी० देव, तथा अन्य आई० ए० , 1960-61 (प्रेस मे) ।

45 ह्वीलर, पूर्वोल्लिखित ।

46. बी० सुब्बाराव, स्टोन एज कल्चर्स आफ बेलारी, डकन कालिज डिसर्टेशन सीरीज, सख्या ७ (पूना, 1948) ।



रेखाचित्र-एक

, वह इस क्षेत्र की आधार-सस्कृति नही थी । ऐसा प्रतीत होता है
ः उपर्युक्त सस्कृति के स्थान पर पहले चमकीली प्रस्तर कुल्हाडी
ली एक ऐसी 'सम्यक्' सस्कृति थी, जिसमे आगे चलकर लाल पृष्ठ-
मि पर काले चित्रण की सस्कृति का अतिक्रमण हुआ । पश्चात्वर्ती
दाई से भी उक्त कथन की पुष्टि होती है । इस खुदाई मे मैसूर
ज्य के पिकलीहल[47] और टी० नरसीपुर[48] स्थल उल्लेखनीय है ।

उटनूर[49] मे उपलब्ध सामग्री से प्रारम्भिक निवासियो अर्थात् लाल पृष्ठभूमि पर काले चित्रण वाले बर्तनो के पहले की सस्कृति के जीवन पर पर्याप्त प्रकाश पडता है जबकि मास्की[50] की खुदाई से उत्तरवर्ती अवस्था के स्पष्टीकरण मे महत्वपूर्ण योग मिला है । उपर्युक्त स्थान की निम्न तहो मे प्राप्त चारकोल के नमूने से यह सामग्री 4120 वर्ष ईसा पूर्व की सिद्ध होती है जो इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि ईसा पूर्व मे 3000 वर्ष पूर्व के अतिम चतुर्थाश मे

7 एफ० आर० आलचिन, पिकलीहल एक्सकेवेशन्स, आध्र प्रदेश गवर्नमेंट आर्क्योलोजिकल सीरीज (हैदराबाद, 1960) ।

8 खुदाई कर्ता एम० शेषाद्रि आई० ए० 1958-59, पृष्ठ 33, 1959-60, पृष्ठ 38 ।

49 एफ० आर० अलचिन, पूर्वोल्लिखित, श्रीनिवासाचार द्वारा भी, आई० ए० 1958-59, पृष्ठ ११ ।

50. बी० के० थापर, ए केलकोलिथिक साइट आफ दी सदर्न डकन, एन्श्येट इडिया संख्या 13 (1959), पृष्ठ, 4-142 ।

दक्षिण भारत मे चमकीली प्रस्तर कुल्हाडी वाली 'यथार्थ' सस्कृति के लोग रहते थे और लाल पृष्ठभूमि पर काले चित्रण के बर्तन का समावेश आगे चलकर हुआ है। यह सर्वथा स्पष्ट है कि यह समावेश भारत के दक्षिणी भाग मे उत्तर की ओर से हुआ है। दक्षिण भारत मे उत्तर मे न केवल लाल पृष्ठभूमि पर काले चित्रण के बर्तनो का ही समावेश हुआ, अपितु फाल निर्माण करने की 'उभडे किनारे वाली कार्य विधि' का भी। इसके विपरीत लगता है कि दक्षिण भारत के उत्तरी भाग की ताम्रयुगीन सस्कृति को बदले मे चमकीली प्रस्तर कुल्हाडी वाली सस्कृति और सभवत मुर्दों को पात्रो (अर्न) मे गाडने की पद्धति भी दक्षिण से मिली थी।

दीर्घपाषाणकालीन सभ्यता के बारे मे मास्की और टी० नरसीपुर तथा पोरकलम[51], जिला त्रिचूर, केरल मे, और मद्रास, राज्य मे सनूर,[52] कुनत्तूर[53] और अमृतमगलम्[54] जिला चिगलपुट और सेनगामेडु,[55] जिला दक्षिण अर्काट मे और मैसूर के बगलौर जिले मे जेदीगेनहल्ली[56] मे की गयी खुदाई से पर्याप्त प्रकाश पडा है। पोरकलम और अमृतमगलम् से पात्र मे मुर्दे को गाडने की प्रथा पर और विस्तृत जानकारी मिली है। सनूर, कुनत्तूर और जेदीगेनहल्ली मे पत्थरो के स्तूपो, शववाली अथवा बिना शव की प्रस्तर पेटिका और प्रस्तर-समाधि, आदि के विभिन्न रूपो पर प्रकाश पडा है। (फलक 12)। कुनत्तूर और सेनकामेडु मे बस्तियो के अवशेष भी उपलब्ध हुए हैं जो दीर्घपाषाणकालीन स्तरो पर बहुधा नही मिलते। इन स्थानो की खुदाई के परिणामस्वरूप प्रमुख बात यह सामने आती है कि गढो के जिन घेरो को विद्वान् भिगोने के गढे मानते रहे है, वे वस्तुत उस रूप मे न थे। इस प्रकार के सुझाव को बल प्रदान करने वाला साक्ष्य निरतर प्राप्त हो रहा है कि मुर्दों को दफनाने की अनेक विधियो मे से एक यह भी हो सकती है। मास्की मे प्राप्त दीर्घपाषाणकालीन गाडने की विधिया निम्न चार वर्गों मे रखी जा सकती हैं (1) पत्थरो वाले घेरे के बिना विस्तृत रूप मे गाडे जाने की पद्धति (2) पत्थरो वाले घेरे सहित विस्तृत रूप मे गाडे जाने की पद्धति (3) पत्थरो वाले घेरे रहित आशिक रूप मे गाडे जाने की पद्धति, (4) पत्थरो वाले घेरे सहित गाडे जाने की आशिक पद्धति। मुर्दों को गाडे जाने की दीर्घ पाषाण कालीन प्रवृत्ति अनिवार्यत. आशिक होती है और उनमे पत्थरो वाले घेरे भी होते है। और पूर्ववर्ती युग मे विस्तृत रूप मे गाडे जाने की प्रथा थी और प्राय पत्थरो वाले घेरे न होते थे, इस तथ्य पर विचार करते हुए क्या हम मास्की सस्कृति की अवस्था को सक्रमण काल कह सकते है ?

प्रागैतिहासिक अध्ययन में प्रगति

स्वतन्त्रता के साथ साथ विभाजन भी हुआ और इसके कारण भारत उन सभी स्थानो से वचित हो गया जो विशिष्ट प्राचीन पाषाणयुग सभ्यता अर्थात् सोहन मे सबधित थे। फिर भी इसमे भारतीय प्रागितिहासवेत्ता निराश न हुए। उन्होने पजाब मे हिमालय की छोटी-छोटी पहाडियो का सर्वेक्षण यथाविधि पूरा किया। फलत इस सभ्यता के बहुत से स्थानो का पता लग गया है। इनमे से प्रमुख है नालागढ,[57] दौलतपुर,[58] बिलासपुर,[59] देहरा[60] और गुलेर[61]। अतिम स्थान पर पाच स्तर की एक शृखला मिली है जिनमे ऊपर के चार स्तरो का सम्बन्ध पाषाण औजारो से है। प्रकार विज्ञान की दृष्टि से इनमे यह बात विशेषरूप से उल्लेखनीय है कि ये सभी औजार एक ही रूप वाले है (रेखाचित्र-दो) शायद ही कोई द्विरूप हथकुल्हाडी मिली हो और ऐसा क्लीवर तो बिलकुल नही मिला है। हिमालय के ग्लेशियर वाले प्रदेश मे गुलेर लगभग 70 किलो-मीटर की ही दूरी पर स्थित है अत यह योजना बनायी गयी है कि इस स्थान के औजारो वाले स्तरो का प्लीस्टोसीन काल के ग्लेशियर और अन्तरग्लेशियर युगो के साथ सम्बन्ध निर्धारित किया जाए।

भारत के प्रागैतिहासिक युग के अध्ययन के लिए स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् जो कार्य किए गए है, उनमे अधिक महत्वपूर्ण ऐसे स्थलो[62] का मिलना है, जहा श्रेणी–दो के उपकरण मिले है।

51 बी० के० थापर, पोरकलम 1948, एन्श्येट इडिया, सख्या 8 (1952), पृष्ठ 3-16।

52 एन० आर० बनर्जी तथा के० बी० सुन्दरराजन, 'सनूर 1950 और 1952' एन्श्येट इडिया, सख्या 15 (1959) पृष्ठ 4-42।

53. खुदाई कर्ता बी० सरन आई० ए० 1955-56 पृष्ठ 23, और 1956-57, पृष्ठ 31-34।

54 खुदाई कर्ता एन० आर० बनर्जी · आई० ए० 1954-55, पृष्ठ 20-22।

55 एन० आर० बनर्जी, 'एक्सकेवेशन्स सेनगामेडु' मार्च आफ इडिया, जून 1956, पृष्ठ 43-46।

56 खुदाई कर्ता एम० शेषाद्रि आई० ए० 1956-57, पृष्ठ 34-35 (पूरा प्रतिवेदन भी छप गया है)।

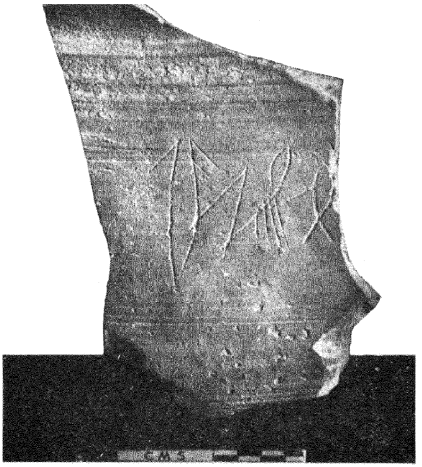
57 डी० सेन, 'नालागढ पेलिओलिथिक कल्चर', मैन इन इडिया, जिल्द 25, अक 3 (जुलाई-सितम्बर 1955, पृष्ठ 176 और आगे, ओलाफ प्रूफर, दी प्रिहिस्ट्री आफ दी सिरमा वैल, पजाब, इडिया (1956)।

58 खोजकर्ता यज्ञदत्त शर्मा आई० ए० 1954-55, पृष्ठ 58।

59 खोजकर्ता बी० डी० कृष्णस्वामी।

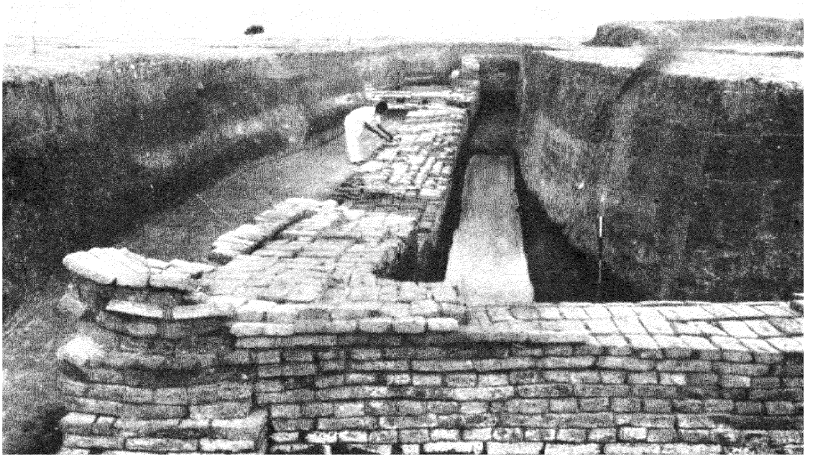
60 तथा 61, ब्रजबासी लाल, पलिओलिथ्स फ्रोम दी व्यास एण्ड बानगगा वेली, पजाब, एन्श्येट इडिया सख्या 12 (1956), पृष्ठ 58-92।

62 एच० डी० साकलिया, एनीमल फोसिल्स एण्ड पेलिओलिथिक इन्डस्ट्रीज, फ्रोम दी प्रवरा बेसिन एट नेवासा, डिस्ट्रिक्ट अहमदनगर, एन्श्येट इडिया सख्या 12 (1956), पृष्ठ 35-52, एच० डी० साकलिया, बी० सुब्बाराव, एस० बी० देव, एक्सकेवेशन्स एट महेश्वर एण्ड नवदाटोली (पूना और बडौदा, 1958), बी० सुब्बाराब, दी परसोनाल्टी आफ इडिया (बडौदा 1958) पृष्ठ 62 और आगे, बी० डी० कृष्णस्वामी, प्रोग्रेस इन प्रीहिस्ट्री, एन्श्येट इडिया सख्या 9 (1953), पृष्ठ 63-64, एस० सी० मलिक,



फलक एक-कालीबगन (राजस्थान) से प्राप्त बर्तन जिस पर हड़प्पा लिपि में कुछ लिखा हुआ है। अक्षरों के एक के ऊपर एक के आने से पता चलता है कि यह लिपि दाएं से बाएं को लिखी जाती थी।

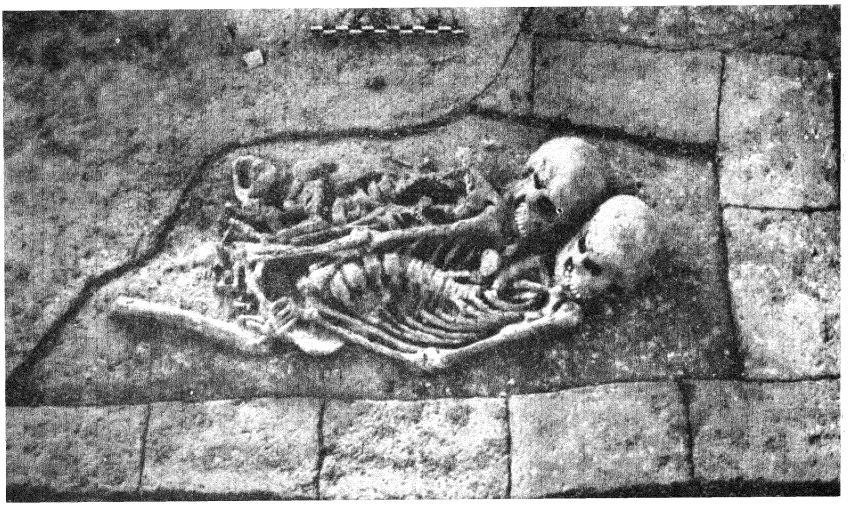
फलक दो-लोथल (गुजरात) नावघाट की दीवाल का एक दृश्य

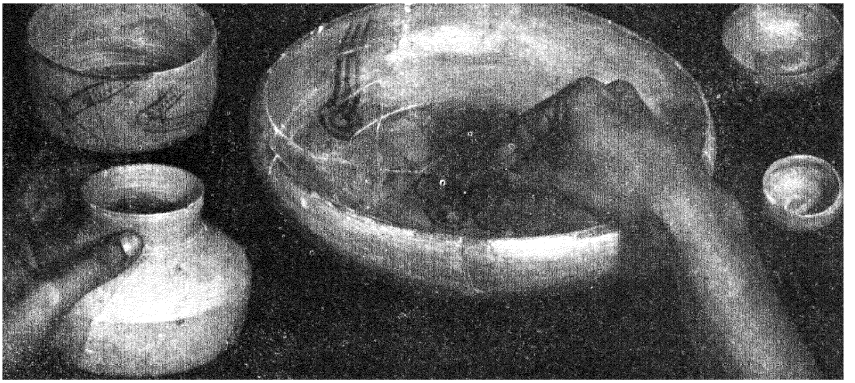




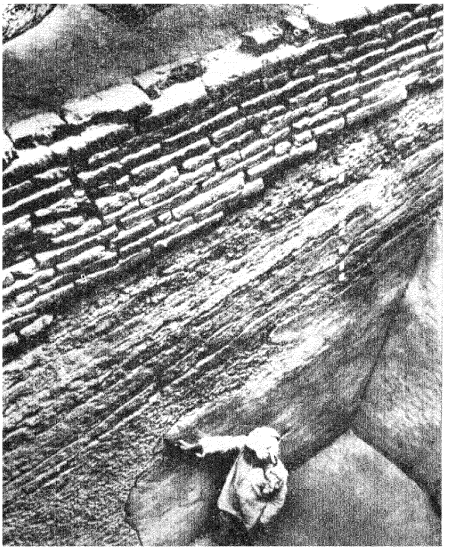
फलक तीन—लोथल की एक बहराइन मुहर, जो प्राचीनकाल मे पश्चिमी एशिया के साथ भारत के व्यापार सबंध का संकेत देती है

फलक चार लोथल में दहरे दफनाये जाने का अवशेष



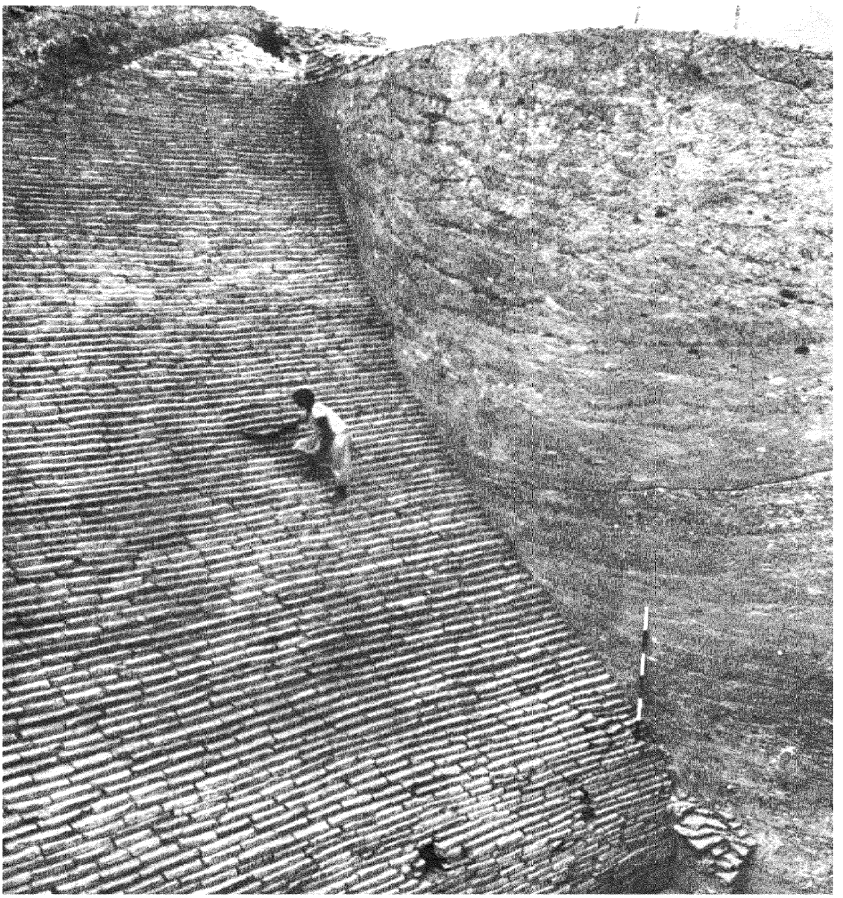


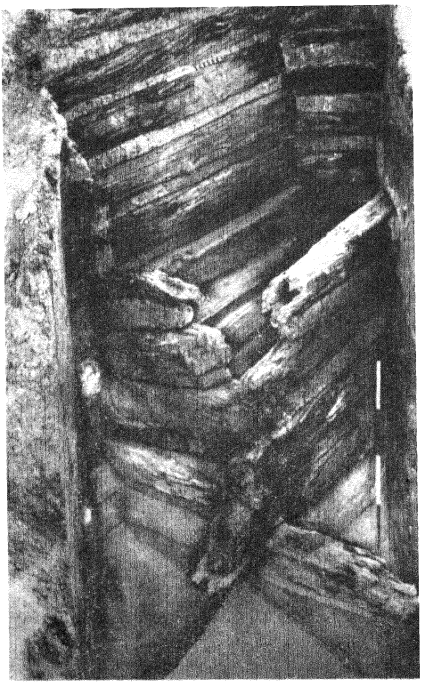
फलक पाच—चित्रित भूरे बर्तन



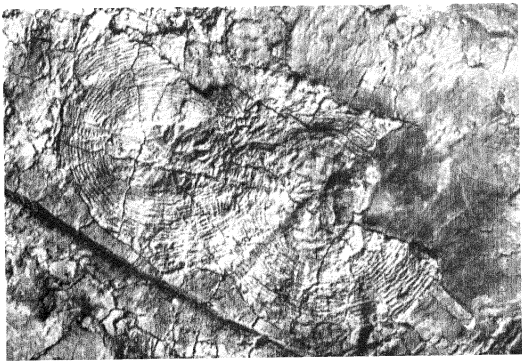
फलक छ:
हस्तिनापुर (उ० प्र०), गगा की उस भीषण बाढ के चिह्न द्रष्टव्य हैं, जो चित्रित भूरे बर्तनो की बस्ती का एक बडा हिस्सा बहा ले गयी थी

फलक सात —कौशाम्बी (उ० प्र०) पकायी गयी ईंटो का सरक्षा पश्ता





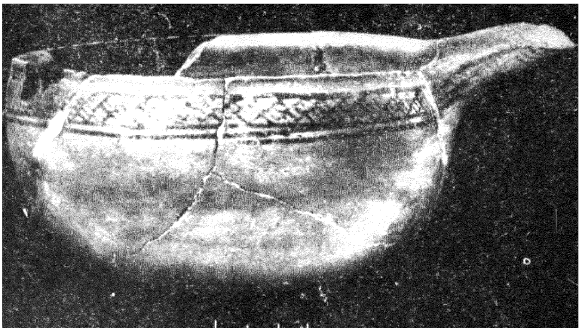
फलक आठ
उज्जैन (म० प्र०) में प्राप्त लकड़ी की शहतीरों का पुश्तों के लिए उपयोग का नमूना



फलक नौ
उज्जैन से प्राप्त मजदूरों द्वारा पुश्ते का काम पूरा होने पर छोड़ी गयी टोकरियों की छाप का एक दृश्य



फलक दस 'क' और 'ख' नवदा टोली (म० प्र०) से प्राप्त पात्र और प्याला। ये दूसरे सहस्राब्द ई० पू० के आस-पास भारत और ईरान के सपर्क का संकेत देते हैं

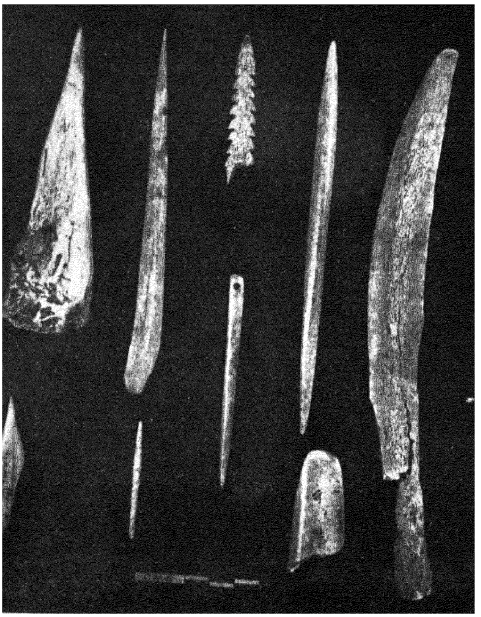




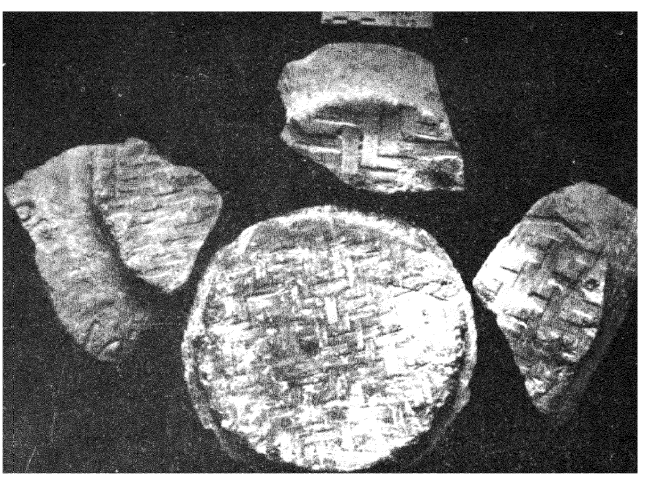
फलक बारह—तनूर (मद्रास), दीर्घ प्रस्तर पात्रों में दफनाया जाना



फलक चारह-चवदारोला में तीन हजार साल पहले के जीवन की एक कल्पनाश्रित झाँकी



फलक तेरह – बुर्जाहोम (काश्मीर), गड्ढो मे रहने वालो द्वारा प्रयुक्त हड्डियो के औजार



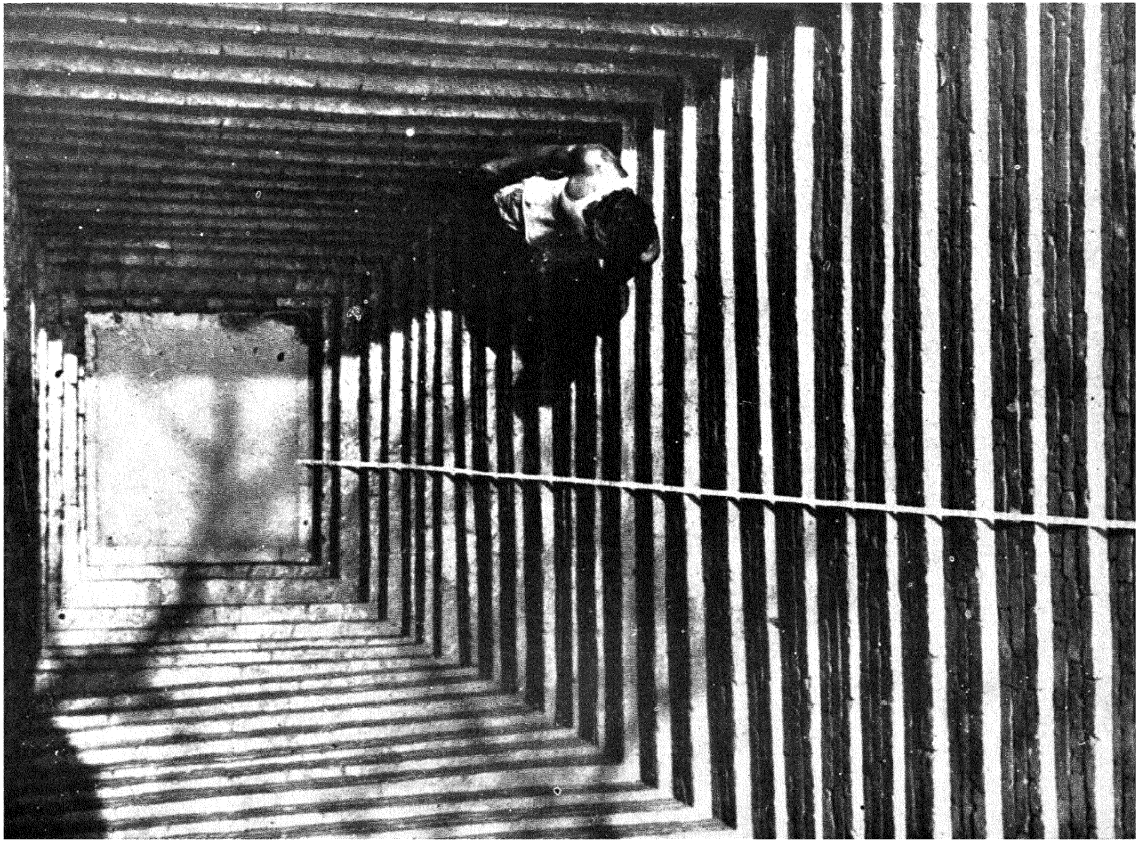
फलक चौदह – बुर्जाहोम, चटाई की छाप वाले बर्तन

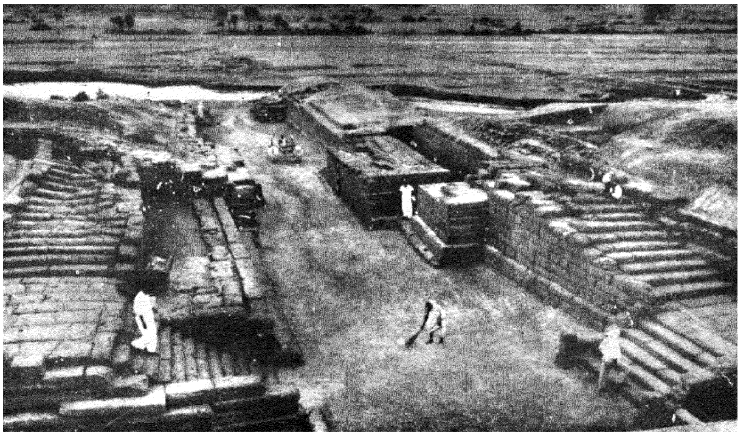


फलक पन्द्रह जगत्राम (उ० प्र०) से प्राप्त शिलालेख, जिसमे तीसरी सदी ईसवी मे राजा शिलावर्मन के अश्वमेध यज्ञ का उल्लेख है



फलक सोलह—तामलुक (प० बगाल) से प्राप्त आरभिक गुप्त काल की एक मृण्मूर्त्ति

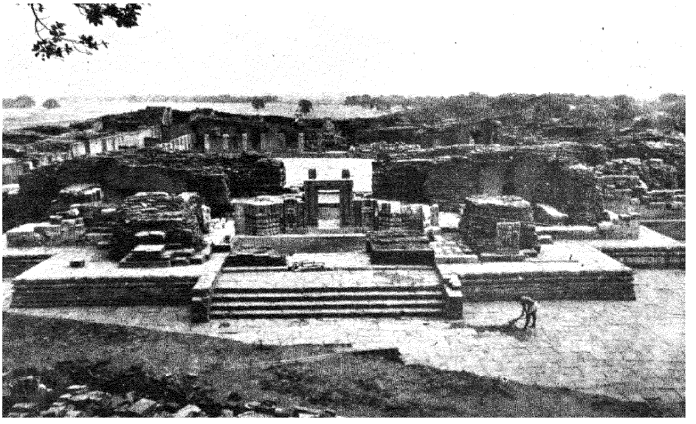


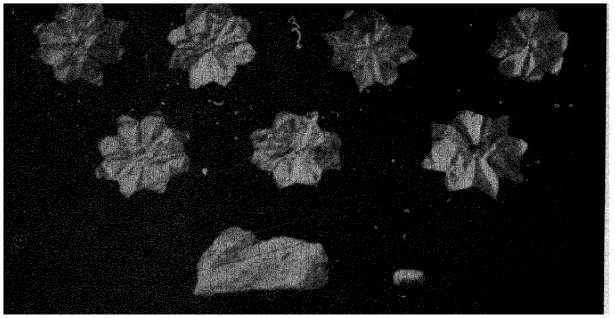


फलक अठारह—शिशुपालगढ (उडीसा), पुराने ऐतिहासिक दुर्ग की द्वार-परंपरा

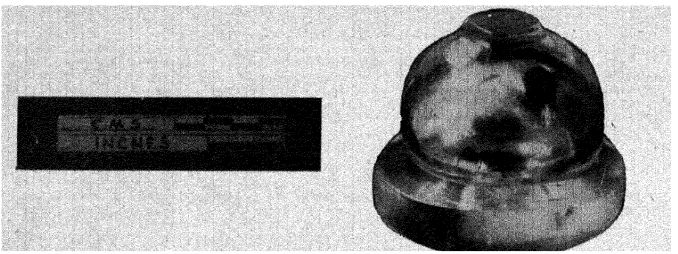
फलक सत्रह—च द्रकेतुगढ (प० बंगाल) ईटो की सीढियों वाली एक वेदी (?)

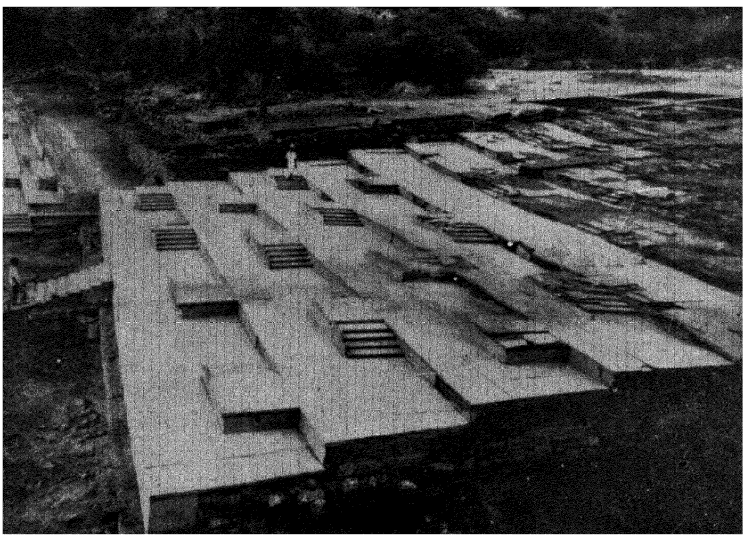
फलक उन्नीस—रत्नगिरि (उडीसा) खुदाई मे निकला एक मठ



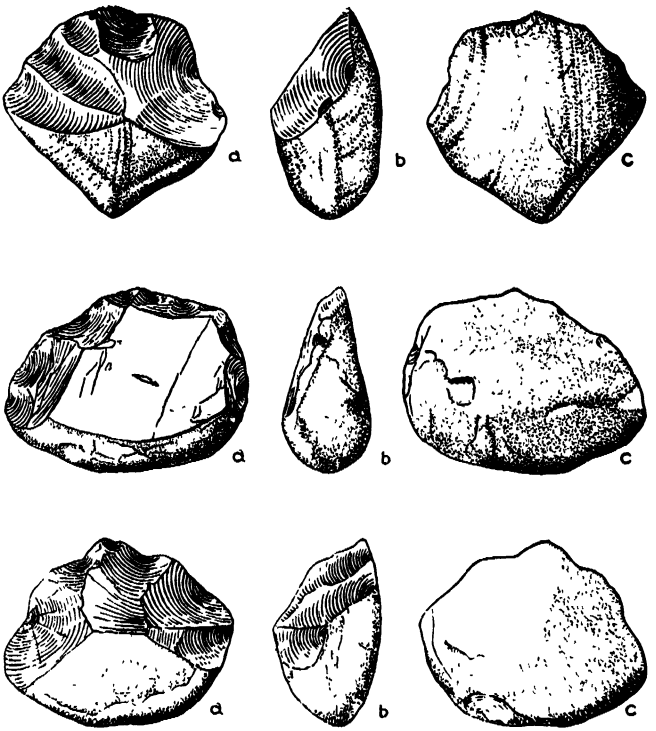


फलक बीस—अमरावती (आन्ध्र प्रदेश) एक स्तूप में मिली मणिभ पुण्यावशेषों की पेटिका





फलक इक्कीस—नागार्जुनकोंडा (आन्ध्र प्रदेश), ईसा की शुरू की सदियों का बना हुआ स्नान-घाट

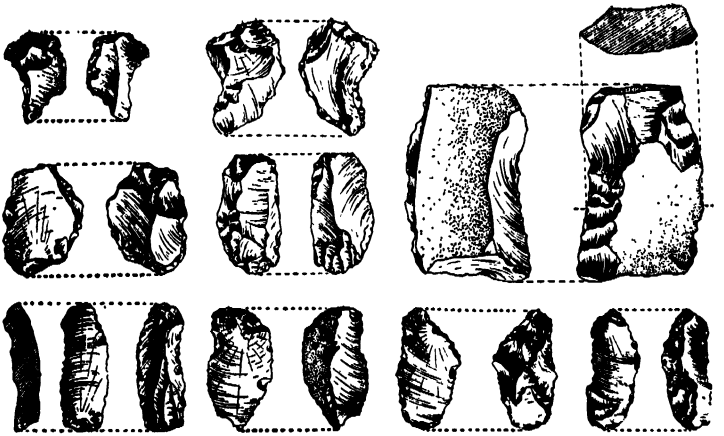


रेखा चित्र-दो

वस्तुत उन्हे अफ्रीकी शब्दावली के अनुसार 'मध्य प्रस्तर युग' का अथवा यूरोपीय शब्दावली मे ऊपरी पुरा पाषाण युग का प्रतिनिधि कहा जा सकता है। प्रकार विज्ञान तथा स्तर विज्ञान दोनो की दृष्टि मे ये एक ओर हथ-कुल्हाडी क्लीवरो (श्रेणी एक) और दूसरी ओर लघु पाक्षाणकाल (श्रेणी तीन) के बीच मे आते है। सामान्यत ये उच्चकोटि के प्रस्तरो से निर्मित है जिनमे एगेट, कैल्सडनी जास्पर आदि भी सम्मिलित है। श्रेणी दो के उपकरणो मे नोके, फाल, कभी-कभी क्षोदन यत्र (व्यूरिन) तथा बहुत से स्क्रेपर आदि (रेखा चित्र-तीन) सम्मिलित है। गोदावरी नदी की एक उपधारा प्रवरा नदी के तट पर नेवासा[63] मे, जो महाराष्ट्र के जिला अहमदनगर मे स्थित है, उनका बोस नामाडिकस के पुराने फौसिलो से सम्बन्ध देखते हुए यह बात निश्चित रूप से सिद्ध हो जाती है कि वे प्लीस्टोसीन युग से सम्बन्धित है, भले ही उस युग

स्टोन एज इन्डस्ट्रीज आफ दी बाम्बे एण्ड सतारा डिस्ट्रिक्ट्स बडौदा, (1959), बिग्रेट आलचिन, 'दी इडियन मिडिल स्टोन एज, सम न्यू साइट्स इन सेट्रल एण्ड सदर्न इडिया, एड दिअर इम्प्लीकेशन्स, यूनीवर्सिटी आफ लदन इन्स्टीट्यूट आफ आर्क्योलोजिकल बुलेटिन, सख्या 2, (1956) पृष्ठ 1536, आर०वी० जोशी, के० डी० बनर्जी, एम० शेषाद्रि, डी० पी० खत्री द्वारा विभिन्न प्रकार मे अन्य स्थलो का पता लगाया गया और दूसरे वे लोग है जिनका उल्लेख आई० ए० के अन्य अशो मे किया गया है।

63 एच० डी० साकलिया तथा अन्य, फ्रोम हिस्ट्री टू प्रिहिस्ट्री एट नवासा पूना, (1960), पृष्ठ 78 और 102।



रेखाचित्र-तीन

के अंतिम चतुर्थांश से ही सम्बद्ध हो। महेश्वर की खुदाई के फलस्वरूप अवशेषों के स्तरों की जो शृंखला प्रकट हुई है उनसे यह बात स्पष्ट होती है कि श्रेणी दो के उपकरण श्रेणी एक के उपकरणों के ऊपर बिखरे हुए हैं। नागपुर के समीपवर्ती स्थानों में श्रेणी दो की सामग्री के अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इस सामग्री का भी विकास हुआ था।[64]

लघुपाषाण काल के सम्बन्ध में भी पर्याप्त अध्ययन किया गया है और विशेषरूप से उनकी पुरातनता, स्तरों की स्थिति, वर्गीकरण इत्यादि के बारे में विशद जांच की गयी है[65]। दक्षिण भारत में टेरी स्थलों के सर्वेक्षणों से यह संकेत मिलता है कि मुख्य लघु पाषाण कालीन उद्योगों के समय समुद्र सतह आज की अपेक्षा सात या आठ मीटर ज्यादा ऊंची थी। ज्यूनर का मत है कि हम लघुपाषाण काल को ईसा के चार हजार वर्ष पूर्व के आसपास रख सकते हैं और इसके साथ यह उपबंध भी रखना होगा कि भविष्य में भूतत्वीय गवेषणा संभवत इसे प्लीस्टोसीन युग तक पीछे ले जा सकेगी। पश्चिमी बंगाल के जिला बर्दवान में बीरभानपुर में लघु पाषाणकाल उद्योगों के अध्ययन से इसकी गहरी पुरातनता भली भांति प्रकट होती है। यहां पर प्राप्त अवशेषों में सबसे निचली से ऊपर की दामोदर की तह पर एक मीटर मोटे रेत की तह के निक्षेप मिले हैं जो समय के प्रभाव से उड़-बह गयी थी। प्रकार विज्ञान के बारे में यह प्रकट होता

64 खोजकर्ता आर० वी० जोशी, आई० ए० 1959-60। पृष्ठ 31-33।

65 एफ० ई० ज्यूनर तथा त्रिगेट आलचिन, 'दी माइक्रोलिथिक साइट्स आफ तिन्नेवेली डिस्ट्रिक्ट, मद्रास स्टेट' एन्श्येट इंडिया, संख्या 12 (1956), पृष्ठ 4 और आगे, बी० डी० कृष्णस्वामी तथा के० वी० सुंदर राजन, 'दी लिथिक टूल इंडस्ट्रीज आफ दी सिंगरौली वेसिन' एन्श्येट इंडिया संख्या 7 (1951), पृष्ठ 40 और आगे, एच० डी० सांकलिया, दी माइक्रोलिथिक इंडस्ट्री आफ लंघनाज, गुजरात, जरनल गुजरात रिसर्च सोसाइटी, जिल्द 18 संख्या 4 (अक्तूबर 1956) पृष्ठ 275-84 बी० सुब्बाराव, आर्क्योलौजिकल एक्सप्लोरेशन्स इन दी माही वैली, जरनल एम० एस० यूनिवर्सिटी बड़ौदा 1, (1952) पृष्ठ 35 और आगे, एम० शेषाद्रि दी स्टोन यूजिंग कल्चर्स आफ प्रोहिस्टोरिक एण्ड प्रोटोहिस्टोरिक मैसूर (लंदन 1956), डी० एच० गौरडन, 'दी स्टोन इन्डस्ट्रीज आफ होलोसीन इन इंडिया एण्ड पाकिस्तान, एन्श्येट इंडिया, संख्या 6 (1960) पृष्ठ 64-90 ब्रजवासीलाल बीरभानपुर, ए माइक्रोलिथिक साइट इन दी दामोदर वैली, वेस्ट बंगाल, एन्श्येट इंडिया, संख्या 6 (1960) पृष्ठ 64-90, ब्रजबासीलाल बीरभानपुर, ए माइक्रोलिथिक साइट इन दी दामोदर वैली, वेस्ट बंगाल एन्श्येट इंडिया संख्या 14 (1958), पृष्ठ 4–48 ब्रजवासीलाल दी माइक्रोलिथिक साइट आफ बीरभानपुर ए जिओक्रोनोलोजिकल स्टडी, एन्श्येट इंडिया संख्या 16 तथा 17 (1960 तथा 1961) (प्रेस में) आदमगढ़ में खुदाई कर्ता आर० वी० जोशी तथा एम० डी० खरे, देखिए आई ए० 1960-61 (प्रेस में)।

है कि प्रारम्भिक उद्योगो मे ज्यामिति के विशिष्ट रूप जैसे त्रिकोण आदि सम्मिलित नही है । यह पिछले युग की सीमित मात्रा में ही था । गुजरात मे लघनाज द्वितीय प्रकार का बहुत सुन्दर उदाहरण है ।

बुर्जाहोम की अपूर्व स्थिति

बहुत दिन हुए जब डी टेरा ने बुर्जाहोम[66] मे चमकीली प्रस्तर कुल्हाडी वाली सस्कृति पर प्रकाश डाला था । बुर्जाहोम श्रीनगर मे चौबीस किलोमीटर दूर उत्तर पश्चिम मे स्थित है । इस सस्कृति की प्राचीनता एव स्तरो की स्थिति के बारे मे उन्होने कुछ विलक्षण विवरण दिए है । यह खुदाई कार्य अच्छे मे अच्छा होने पर भी परीक्षणात्मक ही था और परवर्ती लेखको ने इसके बारे मे जो विचार प्रकट किए है उनमे इस स्थल[67] सम्बन्धी रहस्य मे और वृद्धि ही हुई है । इसलिए इस सस्कृति की शृखला एव तत्सम्बन्धी अन्य बातो की स्पष्ट जानकारी प्राप्त करने के लिए 1960 मे फिर से खुदाई आरम्भ की गयी ।[68]

इस खुदाई से यह प्रकट हुआ है कि इस स्थल पर रहने वाले सबसे पहले निवासी गढे बनाकर रहते थे । भूमि के ऊपरी करेबा भाग काटकर ये लोग गढे बनाते थे और इन गढो की गहराई डेढ मीटर से लेकर तीन मीटर तक होती थी । इन गढो की योजना कुछ-कुछ गोल मालूम पडती है, किन्तु तथ्य यह है कि इनका मुह बहुत सकरा होता था । कहने का तात्पर्य यह है कि इनका व्याम एक-दो मीटर होता था और जैसे जैसे ये गढे गहरे होते जाते थे इनका व्याम और भी बढता जाता था और नीचे जाकर इनका व्यास दो से चार मीटर तक हो जाता है । जिस भूमि मे ये गढे बनाए गए है बहुत कठोर है, इसलिए उनकी दीवारो का एक असाधारण रूप मे सकरा हो जाना वस्तुत खतरनाक नही है । गढे की चौरस सतह पर राख के ढेर मिले है, जिनसे प्रकट होता है कि वहा आदमी रहते थे । इन गढो की एक उल्लेखनीय पुरातत्वीय विशेषता यह भी है कि कुछ गहरे गढो मे एक दो सीढिया और कुछ गढो मे कुछ गवाक्ष भी मिले हैं । इन गढो की ऊपरी परिधि मे कुछ सूराख पाए गए है उनसे यह पता चलता है कि इन गढो पर किसी न किसी प्रकार की छत डालने की भी व्यवस्था थी । ये लोग चमकीली प्रस्तर की कुल्हाडी, गदा, एव इनके अतिरिक्त हड्डी के हारपून, सुई, छैनी, बरनिशर आदि विभिन्न प्रकार के औजारो का भी उपयोग करते थे (फलक तेरह) । साथ ही ये लोग चमक वाले स्टील की तरह के भूरे बर्तनो को प्रयोग मे लाते थे । वे ये बर्तन अधिकाशत हाथ से ही बनाते थे और इनकी सतह मे चटाई की छापे लगाकर उन्हे सजाते थे (फलक चौदह) ।

66 एच० डी० टेरा, एक्सकेवेशन्स एट बुर्जाहोम, मिसलेनिया आफ दी अमेरिकन फिलोसफीकल सोसाइटी (1936) ।

67 डी० एच० गोर्डन ने स्थल पर प्राप्त उत्तरी काली पालिश वार्ल बर्तनो के पाये जाने का उल्लेख किया है ।

68 डी० एन खजाची के सचालन मे आई० ए०, 1960-61 (प्रेस मे) ।

पिछले युग मे ये मकान गारे तथा ईट-गारे से बनाये जाने लगे तथा काली चमकदार मिट्टी के बर्तनो का उपयोग किया जाने लगा । किन्तु ये बर्तन उत्तरी काले चमकीले बर्तनो से भिन्न थे । पालिशदार (चमकीली) प्रस्तर कुल्हाडिया का प्रयोग इस युग मे ज्यो का त्यो रहा, किन्तु अस्थि-उपकरणो का प्रयोग अधिक सख्या मे किया जाने लगा ।

इससे बाद वाले युग मे बडे आकार वाले सीधे प्रस्तरो का उपयोग पाया जाता है, जोकि दीर्घ पाषाण काल मे प्रयुक्त मेनहीर पत्थरो से मिलते जुलते है । आजकल जो खुदाई हो रही है उससे इसके प्रयोजन का पता चलने की आशा है ।

खुदाई कार्य के सबसे बाद के स्तर पर मिलने वाली बस्तिया अपने पहले के स्तरो की बस्तियो से काफी समय बाद बसी हुई लगती है । उपलब्ध सामग्री के आधार पर सभवत कहा जा सकता है कि वे ईसवी सन् की प्रारम्भिक शताब्दियो मे बनी होगी ।

गढो मे जीवन यापन करने वालो के युग सहित, पहले युगो की कालावधि के बारे मे अभी निश्चित रूप से कुछ नही कहा जा सकता । वास्तव मे भारत के किसी भी दूसरे स्थान पर इनसे मिलती-जुलती वस्तुए प्राप्त नही हुई है । अत इनके बारे मे चाहे कुछ भी कल्पना कर ली जा सकती है । अत ऐसा प्रतीत होता है कि इनसे मिलती-जुलती वस्तुओ के लिए हमे भारत से बाहर, चाहे वह मध्य एशिया हो या उत्तर पूर्वी ईरान[69], की ओर देखना होगा ।

इतिहास युग का पुरातत्व

गत कुछ वर्षों मे हमारा मुख्य ध्येय यद्यपि अधकार युग की विशेषताओ को प्रकाश में लाने का रहा है, किन्तु फिर भी इतिहास युग के पुरातत्व विज्ञान की उपेक्षा नही की गयी है, जैसा कि शायद इस लेख को पढकर धारणा बन सकती है । इस दिशा मे भी दैनदिन कार्य मात्र ही नही किया गया है बल्कि महत्वपूर्ण कार्य भी किये गये है । अधकार युग की समस्याओ का समाधान करते समय बहुत से स्थलो की खुदाई हुई है और इनसे इतिहास-युग के अवशेषो का भी पता चला है । साथ ही बहुत से ऐतिहासिक स्थलो पर भी स्वतत्र रूप से खुदाई की गयी है । उनमे से प्रमुख ये हैं उत्तरप्रदेश के देहरादून जिले मे स्थित जगतग्राम[70], दिल्ली[71], पश्चिमी बगाल के मिदनापुर

69 उदाहरणार्थ शाह टेप मे चटाई की छापवाले भूरे बर्तन तथा अस्थि औजार प्राप्त हुए हैं । टी० जे० आरने, एक्सकेवेशन्स एट शाह टेप, ईरान (स्टोकहोम, 1945) किन्तु अन्य समान उद्योग इन दोनो स्थानो पर भिन्न है, अतिम रूप मे कुछ कहने के लिए आगे और जाच की आवश्यकता है ।

70 खुदाई कर्ता टी० एन० रामचन्द्रन, आई० ए० 1953-54, पृष्ठ 10-11 ।

71 खुदाई कर्ता यज्ञदत्त शर्मा आई० ए०, 1957-58 पृष्ठ 24-25, 1958-59, पृष्ठ 25, प्रस्तुत लेखक द्वारा भी खुदाई की गई, आई० ए० 1954-55, पृष्ठ 13-14 ।

जिले में तामलुक[72] तथा चौबीस परगने में चन्द्रकेतुगढ़[73], उड़ीसा के पुरी जिले में शिशुपालगढ़[74], जिला गंजम में जोगड़ा[75] और कटक जिले में रत्नगिरि[76], गुजरात के बड़ौदा[77] और अमरेली[78] जिलों में क्रमशः बड़ौदा और अमरेली और समरकाठा जिले में देवनीमोरी[79], मध्यप्रदेश के रायपुर जिले में सिरपुर[80], महाराष्ट्र में उस्मानाबाद जिले में तेर[81], आंध्रप्रदेश में श्रीकाकुलम् जिले में शालिहुंडम्[82] और गुन्तूरजिले में अमरावती[83]।

जगतग्राम अशोक की राजाज्ञाओं वाले शिलालेख के लिए विख्यात कालसी से कुछ मील दूर स्थित है। यहां पर चार अश्वमेघ यज्ञों का साक्ष्य मिलता है, जो तीसरी शती में राजा शिलावर्मन ने किये थे। यज्ञ वेदी, जो पंख फैलाए हुए श्येनों की आकृति वाली है, ईंटों से निर्मित है और उन पर उस यज्ञ की कहानी संस्कृत में अंकित है (फलक पन्द्रह)।

दिल्ली में तथा उसके आसपास जो खुदाई हुई है, उसको दो भागों में विभाजित किया जा सकता है, एक का सम्बन्ध प्रागैतिहासिक युग से है तो दूसरे का मध्ययुग से। पहला भाग (यद्यपि इस बारे में बहुत थोड़ी खुदाई की गयी है), इस बात का द्योतक है कि पुराने किले से घिरे हुए क्षेत्र में चित्रित भूरी मिट्टी के बर्तनों वाले युग के अवशेष हैं। दूसरे वर्ग की खुदाई से लाल कोट तथा किला राय पिथौरा के समय की भवन-निर्माण कला का परिचय मिलता है। ऐसा विश्वास है कि लालकोट तथा किला राय पिथौरा क्रमशः तोमर राजा अनंगपाल और चौहान राजा पृथ्वीराज द्वितीय ने बनवाये थे।

साहित्य में ताम्रलिप्ति के नाम से प्रसिद्ध और व्यापार तथा शिक्षा के लिए विख्यात तामलुक से बहुत पुराने अवशेष मिले हैं। यहां पर सबसे निचले स्तरों में पालिशदार प्रस्तर-कुल्हाड़ियां और अधपके बर्तन प्राप्त हुए हैं। उससे ऊपर के स्तर में ताबे के ढले हुए सिक्के तथा पकाई हुई मिट्टी की मौर्य शुंग लघुमूर्तियां प्राप्त हुई हैं। पिछले स्तरों से काफी मात्रा में स्लेट के बर्तन मिले हैं जिनका आकल्पन एरेटिन नामक रोमन बर्तनों जैसा है। तामलुक रूपनारायण नदी (गंगा की एक शाखा) के मुहाने पर स्थित है जो बंगाल की खाड़ी के निकट है और समुद्री व्यापार के लिए उपयुक्त है। इस स्थल की ऊपरी सतह में मिट्टी की वस्तुएं मिली हैं, जो कुषाण और गुप्त युग की हैं (फलक सोलह)। बस्तियों में कुछ अन्तर के बाद पाल और सेन युग की मूर्तियां मिलती हैं।

कलकत्ता से उत्तर पूर्व में 53 किलोमीटर की दूरी पर चन्द्रकेतुगढ़ स्थित है, यहां पर गत पांच वर्षों से खुदाई चल रही है। इस खुदाई से मौर्य काल से लेकर गुप्तकाल के बाद तक के अवशेष प्राप्त हुए हैं। इमारतों के जो ढांचे प्राप्त हुए हैं, उनमें ईंटों का बना हुआ एक विशाल मंदिर उल्लेखनीय है किन्तु इस बात का कोई निश्चित साक्ष्य नहीं है कि इसमें किस देवता की मूर्ति थी। दूसरा उल्लेखनीय स्थल वह गढ़ा है, जो सात मीटर गहरा है और जिसके किनारे पर पालिशदार ईंटों की सैंतीस सीढ़ियां सी हैं, जो नीचे को सकरी होती गयी हैं। (फलक सत्रह)। यहां की निचली सतहों में उत्तरी काली पालिशवाले बर्तन तथा ऊपरी सतहों में स्लेट के बर्तन मिले हैं। अन्य प्राप्त वस्तुओं में छेद वाले और ढले हुए ताबे के सिक्के तथा पकी मिट्टी के फलक, सांचे और मुहरें हैं।

उड़ीसा में जिन पुराने स्थलों की खुदाई हुई, वे हैं शिशुपालगढ़ और जोगड़ा। शिशुपालगढ़ प्रसिद्ध चट्टान धौली से पांच किलोमीटर दूर स्थित है जिस पर अशोक की राजाज्ञाएं अंकित हैं। जोगड़ा के अहाते में ही इसी प्रकार की राजाज्ञा वाली चट्टान अवस्थित है। शिशुपालगढ़ की खुदाई से ज्ञात होता है कि यहां ईसा से चौथी शती पूर्व और ईसा से चौथी शती बाद तक आबादी थी। नगर के चारों ओर एक परकोटा बना हुआ था जो लगभग वर्गाकार था। दीवार के अन्तर्भाग में मिट्टी थी और इसके दोनों ओर पकी हुई ईंटों का पुश्ता था। इसकी लम्बाई एक किलोमीटर से कुछ अधिक थी। इसके प्रत्येक किनारे पर दो विशाल द्वार (फलक अठारह) तथा दो छोटे द्वार थे। नगर को जाने वाली मुख्य सड़कें इन दोनों द्वारों को मिलाती हुई चलती थीं और इस प्रकार जाल का ढांचा बनाती थीं। प्राप्त मिट्टी के बर्तनों में विशेष रूप से घुंडी वाले बर्तन तथा स्लेट बर्तनों का उल्लेख किया जा सकता है। पारिस्थितिक प्राप्त साक्ष्य के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यह स्थल तोशाली है जिसका उल्लेख ऊपर बतायी गयी अशोक की राजाज्ञाओं में

72 खुदाई कर्ता एम० एन० देशपांडे आई० ए० 1954-55, पृष्ठ 19-20।

73 खुदाई कर्ता के० जी० गोस्वामी, आई० ए० 1956-57, पृष्ठ 29-31, 1957-58 पृष्ठ 55-56, 1958-59 पृष्ठ 55-56, 1959-70 पृष्ठ 50-52, और 1960-61 (प्रेस में)।

74 ब्रजबासीलाल, पूर्वोल्लिखित (जनवरी 1949)।

75 खुदाई कर्ता श्रीमती डी० मित्र आई० ए०, 1956-57, पृष्ठ 30-31।

76 खुदाईकर्त्री श्रीमती डी० मित्र आई० ए० 1957-58, पृष्ठ 39-41, 1958-59, पृष्ठ 33-36, 1959-60, पृष्ठ 38-39, और 1960-61 (प्रेस में)।

77 बी० सुब्बाराव, बड़ौदा थ्रू द एजेज (बड़ौदा, 1953)।

78 खुदाई कर्ता एस० आर० राव, प्रतिवेदन प्रकाशित होने वाला है।

79 खुदाई कर्ता बी० सुब्बाराव तथा अन्य आई० ए० 1959-60, पृष्ठ 19-21, और 1960-61 (प्रेस में)

80 खुदाई कर्ता एम० जी० दीक्षित आई० ए० 1954-55, पृष्ठ 24-26, और 1955-56, पृष्ठ 24-27।

81 खुदाई कर्ता पी० एच० जोशी आई० ए० 1957-58, पृष्ठ 23-24।

82 खुदाई कर्ता आर० सुब्रह्मण्य आई० ए० 1953-54, पृष्ठ 11-12।

83 खुदाई कर्ता आर० सुब्रह्मण्य तथा कृष्णमूर्ति आई० ए० 1958-59, पृष्ठ 5।

है तथा जिसका उल्लेख खारवेल के शिलालेख मे है। खारवेल का यह शिलालेख खडगिरि-उदयगिरि पहाडियो के निकट एक गुफा मे मिला था ।

जोगडा की कहानी भी न्यूनाधिक रूप मे शिशुपालगढ़ जैसी है । अन्तर केवल इतना ही है कि इसके वर्ग-परकोटे की भुजाए कुछ छोटी हैं । प्राप्त वस्तुओ मे विशेष उल्लेख निचले स्तर मे पाए जाने वाली एक पालिशदार प्रस्तर-कुल्हाडी का किया जा सकता है तथा काफी मात्रा मे कुछ अपरिष्कृत मूगे भी (मध्यवर्ती स्तर से) मिले हैं जो इस बात के द्योतक हैं कि उनका निर्माण वही पर हुआ था ।

बुद्ध से सबधित ललितगिरि, उदयगिरि, और रत्नगिरि स्थानो मे से रत्नगिरि पर्वत पर गत चार वर्षों से खुदाई चल रही है । बडे पैमाने की इस खुदाई ने गृहनिर्माण, मूर्तिकला, कास्य मूर्तियो, शिलालेखो, तथा अन्य छोटी-छोटी वस्तुओ का एक प्रकार से भाडार ही खोल दिया है । ये गुप्तकाल से लेकर मध्ययुग के पहले भाग तक की है । शिलालेखो से प्रकट है कि बौद्ध कालीन समय मे भी इन स्थानो के वही नाम थे, जो आज भी हैं । निर्मित भवनो मे विशेष रूप से दो विशाल मठो (फलक उन्नीस)एक बडे तथा अनेको छोटे स्तूपो और लगभग आधे दर्जन मदिरो का उल्लेख किया जा सकता है । जहा तक बौद्धकालीन शिल्पकला का सम्बन्ध है उसके अन्तर्गत नाना प्रकार के देवताओ का उल्लेख स्मरणीय है उदाहरणार्थ ध्यानी बुद्ध, तारा, अवलोकितेश्वर, वसुधारा, वज्रराग, मजुश्री, शादाक्षरी लोकेश्वर, जम्भाला, वज्रपाणि आर्य-सरस्वती आदि । ये देवतागण इस बात के द्योतक हैं कि बौद्ध महायान-वज्रयान देवताओ का विकास कम से कम देश के इस हिस्से मे उस अवधि से पूर्व हो चुका था, जिसको सामान्यत इनकी विकास-अवधि माना जाता रहा है ।

बडौदा तथा उसके आसपास जो खुदाई हुई है, उससे यह प्रकट होता है कि नीचे के लघुपाषाण कालीन उद्योग काल के अलावा ईसा शती के आरम्भ से लेकर सोलहवी शती तक वहा लोगो की बस्ती थी । यहा पर निम्न स्तर से जो अवशेष मिले हैं, उनमें अन्य वस्तुओं के अतिरिक्त लाल पालिश वाले बर्तन, क्षत्रपो के सिक्के ग्रेशिओ रोमन ढग की कुछ मिट्टी की मुहरे भी हैं । ऊपरी स्तर से, जो विशेषत. अकोटा के आसपास के क्षेत्र मे है, प्राप्त अवशेषो मे अत्यन्त महत्वपूर्ण अवशेष जैन कास्य मूर्तियो के उत्कृष्ट नमूने है, जिन्हें आद्य मध्ययुगीन काल का कहा जा सकता है ।

ईसा पूर्व प्रथम शती से चौथी शती ईसवी तक अमरेली मे लाल पालिश वाले बर्तनों और क्षत्रप सिक्को आदि के अतिरिक्त गोल गढ़ो के घेरे मिले हैं । इनमे जलाने के बाद दफनाने के निशान पाए गए हैं ।

देवनीमोरी में की गई खुदाई से एक बिहार, एक स्तूप, और एक मदिर मिला है जो 200 से 700 ईसवी के बीच बने थे । बुद्ध की मूर्तिया, जो अधिकतर उनकी ध्यान मुद्रा मे है, गांधार पद्धति का स्मरण दिलाती है । इस स्थल पर क्षत्रपों के समय के बहुत से सिक्के तथा एक भटार्क के समय का भी मिला है, जो बलभी मे मैत्रक राज्य के प्रतिष्ठाता थे ।

सिरपुर मे सामान्यत बसे हुए क्षेत्र से, तीन लगातार युगो की बस्तियो का साक्ष्य मिलता है जो पाचवी शती ईसवी से ग्यारहवी शती ईसवी तक की अवधि की है । धार्मिक केन्द्र मे अनेको मठो के अवशेष भी मिले हैं । कई मठो मे उत्कृष्ट कास्य मूर्तिया भी प्राप्त हुई है जो सापर पर्दू पद्धति से बनी हुई है । यहा पर एक मनोरंजक वस्तु और भी मिली है और वह है चीन का तावे का सिक्का, इसका आकार गोल है और इसके मध्य मे एक वर्गाकार छेद है । कहा जाता है कि यह काई युवान (1713–41) का सिक्का है । इससे यह पता चलता है कि यहा दर्शनार्थ चीनी यात्री आया करते थे ।

तरणा नदी के तट पर स्थित तेर (प्राचीन तगारा) मे, जो उसमानाबाद से उत्तर पूर्व मे बीस किलोमीटर की दूरी पर है, ऐसे साक्ष्य मिले हैं कि ईसा से चार सौ वर्ष पूर्व से लेकर चार सौ ईसवी तक वहा आबादी थी । यहा पर जो विभिन्न प्रकार की वस्तुए प्राप्त हुई हैं, उनमे मुख्य रूप से पकी मिट्टी की लघुमूर्तिया है । इनमे से कुछ मूर्तियो पर रोमन प्रभाव दिखायी पडता है और हाथीदात की उत्कृष्ट नक्काशी की भी कुछ चीजे मिली हैं ।

शालिहुडम् की खुदाई मे शिलालेख मिले हैं, जिनमे प्रकट होता है कि यह स्थल शालि पेटक (चावल का भाडार) तथा यहा बहुत से मठ थे जो महा उगपव्यता के रूप मे थे ।

बुद्ध अवशेषो के लिए सुविख्यात अमरावती मे एक स्तूप की योजना की फिर से जाच करने की दृष्टि से फिर से आशिक खुदाई की गयी । फलस्वरूप मूल ढोल, आयक मच और प्रदक्षिणा पथ साफ किये गये । ऊर्ध्वपथ के बाड़े मे पाच मणिभ डिब्बे प्राप्त हुए हैं, जो उत्कृष्ट कारीगरी के नमूने हैं (फलक बीस) । निकटवर्ती स्थानो मे की गयी खुदाई मे नीचे से लेकर ऊपर की सतह मे उत्तरी काली पालिश स्लेट और केलेडन के बर्तन प्राप्त हुए हैं । इनसे यह प्रकट होता है कि यहा ईसा पूर्व तीन शताब्दी से लेकर दसवी शती तक आबादी थी ।

परियोजनाओं से डूबने वाले स्मारक

विश्व के अन्य देशो की भाति भारत मे भी सरकार को यह चिता सता रही है कि निरतर वृद्धिशील जनसख्या के लिए किस भाति खाद्यान्न की व्यवस्था की जाए । जब तक कोई देश प्राकृतिक दृष्टि से अधिक उत्पादन करने मे असमर्थ न हो, इसका स्पष्ट उपाय यही है कि वहा अधिक से अधिक भूमि पर खेती हो और साथ ही खाद्य उत्पादन के विकसित उपायो को काम मे लाया जाए । सिचाई सुविधाएं प्रदान करने के लिए बाँध तथा नहरे बनाने की आवश्यकता पड़ती है । अब प्रश्न यह है कि क्या ये बाध प्राचीन स्मारको तथा स्थलो के डूबने का डर उत्पन्न नही करते । तब प्रशासन के सामने एक जटिल प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्या प्राचीन अवशेषो को वर्तमान मानव की आवश्यकताओ मे रुकावट डालने दिया जाए, अथवा बाधों को बनाया जाए और इन अवशेषो को यदि आवश्यक हो तो यथासंभव बचा लिया जाए । नीति के निरूपण के रूप में

तो यह ठीक है कि प्रत्येक स्मारक के बारे मे परिस्थिति के अनुसार निर्णय किया जाए, किन्तु अनुभव से यह प्रकट हुआ है कि निर्णय प्राय. वर्तमान मानव के ही पक्ष मे रहता है। क्या इसका कारण यह है कि आज का मानव ही अपनी आवश्यकताओं तथा प्राचीन अवशेषो दोनो का ही प्रतिपादन करता है? कुछ भी हो, पुरातत्व-वेत्ता को आज कही कम समय, धन और निपुण सहायता से ऐसे स्थलो पर स्मारको को डूबने से बचाने के लिए काम करना पडता है।

भारत मे इस प्रकार के कार्य कई जगह हुए है, चल रहे है और सभवत. भविष्य मे भी करने पडेगे। इनमे से उल्लेखनीय एव विख्यात बौद्धस्थान नागार्जुनकोडा[74] है। यह कृष्णा नदी के दाए किनारे पर स्थित है, और वह स्थान और इसके सम्मुख नदी के दूसरे तट पर स्थित येल्लेश्वरम् भी यहा से सात किलोमीटर की दूरी पर बनाए जाने वाले 80 मीटर ऊचे बाध से डूब जाएगा। यहा पर 1954 मे खुदाई आरम्भ हुई थी और अभी हाल[85] ही मे समाप्त हुई है, इस खुदाई से यह प्रकट होता है कि नागार्जुनकोडा मे पुरा-पाषाण युग से ही आबादी थी[86]। प्राप्त उपकरणो मे उल्लेखनीय है हथकुल्हाडी ओवेट और क्लीवर आदि। पाषाण उद्योग के अन्तर्गत परतदार फाल, स्क्रेपर आदि आते है। ये अन्यत्र श्रेणी 2 नाम से अभिहित होने वाले अवशेष ही है। इनके उपरात लघुपाषाण उद्योग का वह युग आता है, जिसमे ज्यामितिक आकृतियो मे बर्तन बनाना आरम्भ नही हुआ था। फिर पालिश वाली प्रस्तर कुल्हाडी की सस्कृति का युग आता है। इस युग मे नियमित आबादी और कब्रो के अवशेष प्राप्त हुए है। यहा पर इस सस्कृति के उपकरण काफी सख्या मे प्राप्त हुए है, जिनमे कुल्हाडी, बसूला, फेबरीकेटर, गदा की मुठिया आदि उल्लेखनीय है। इसके पश्चात् अगले क्रम मे दीर्घ पाषाणकालीन कब्रे आती है। खुदाई में इनके दर्जन के करीब नमूने मिले है। इनमे गड्ढो के घेरे और सिस्ट दोनों ही सम्मिलित है। इन गड्ढो मे नियमित रूप से गाड़े गए मृत व्यक्तियो की हड्डिया प्राप्त हुई है। इनसे मास्की और सनूर से प्राप्त साक्ष्य की पुष्टि होती है कि ये गड्ढे खुदाई के काम मे नही लाये जाते थे।

ऐतिहासिक युग के विस्तृत एव विभिन्न प्रकार के अवशेष मिले है। स्थूल रूप से इनको दो भागो मे बाटा जा सकता है धार्मिक और धर्मनिरपेक्ष। प्रथम श्रेणी मे अनेको स्तूप, चैत्य, बिहार और बौद्ध मतावलम्बियो के मन्दिर तथा ब्राह्मण धर्म वालो के भी कुछ मन्दिर आते है। इनमे से बहुत से इक्ष्वाकु राजाओ के समय के है (ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियो मे)। यह बात उस समय के सम्बन्धित राजाओ के धार्मिक विश्वासो के नही, तो उनकी प्रवृतियो पर प्रकाश डालती है। धर्म निरपेक्ष इमारतो की श्रेणी के अन्तर्गत (इसमे सैनिक इमारते भी सम्मिलित है) इक्ष्वाकु युग से लेकर मध्ययुग तक के बीच विभिन्न स्थानो मे निर्मित, चार गढ़ है। इनमे से बिलकुल केन्द्रस्थ गढ इक्ष्वाकुओ का है और इसका क्षेत्रफल 900×600 मीटर है। इसमे बने भवनों से ही प्राचीन विजयपुरी का प्रशासन चलाया जाता था। अन्य उल्लेखनीय भवनो में से विशेष उल्लेख उस क्रीडागण का किया जा सकता है जिसमे अखाडा 90×70 मीटर क्षेत्रफल वाला है। इसमे सीढीनुमा बैठने के स्थान है साथ ही एक प्रत्यक्षत विशिष्ट अतिथियो के लिए एक मंडप है। कृष्णानदी के किनारे एक विशाल सीढियो वाला चौरस-घाट है (फलक इक्कीस), जिसमे चूनापत्थर के टुकड़ो को पलस्तर से लगाया गया है। नदी के किनारे पर ही एक-एक श्मशान है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह राज-परिवार का श्मशान था। इसमे दो रोचक मूर्तिया मिली है। इनमे से एक मूर्ति तो एक महिला की है जो राजकीय शव के रूप मे जनता के दर्शनार्थ लेटी है। दूसरी मूर्ति भी एक महिला की है जो एक सीढी के साथ खडी है और ऐसा प्रतीत होता है मानो वह अग्नि मे कूदने जा रही हो। दूसरी मूर्ति से यह आभास होता है कि उन दिनो सती प्रथा विद्यमान थी।

जो लोग आजकल नागार्जुनसागर बाध बना रहे है सभवत वे यह नही जानते कि आज से 1500 वर्ष पूर्व उनके पूर्वजो ने इस क्षेत्र में नहरे बनायी थी। इनमे से एक नहर नौ मीटर चौड़ी, दो मीटर गहरी थी और लगभग 300 मीटर तक उसकी लम्बाई का चला है।

यहा पर जो प्राचीन वस्तुए प्राप्त हुई है उनमें बहुत सी उत्कृष्ट प्रस्तर मूर्तिया और पकी हुई मिट्टी की मूर्तिया है, पुण्यावशेषो के पिटारे है, गहने है, सुनार के औजार है, जिनमें साचे भी शामिल है तथा विभिन्न प्रकार के सिक्के भी है। ये सिक्के इक्ष्वाकु तथा सातवाहन राजाओ के है। इनके अतिरिक्त दो रोमन औरी भी मिली है, इनमे से एक तो तिबेरियस (16–37 ईसवी) की है तथा दूसरी फोस्तीना वरिष्ठ की है, जो मारकस ओरेलियस की सास थी एवं एन्टोनिअस पियस की रानी थी। उसने इसे 141 ईसवी मे जारी किया था। काफी सख्या मे सस्कृत तथा प्राकृत में लिखित शिलालेख भी मिले है। इनमे से कुछ अब तक निश्चित इक्ष्वाकु तिथिक्रम में परिवर्तन लाने वाले है।

84 ए० एच० लोगहर्स्ट, दी बुद्धिस्ट रिमेन्स आफ नार्गाजुन कोडा, मद्रास प्रेसीडेंसी मेमोरियल आर्क्योलौजिकल सर्वे आफ इडिया, सख्या 54 (1938), टी० एन० रामचन्द्रन, नागार्जुन कोडा 1938, मेमोरियल आरक्योलौजिकल सर्वे इडिया, सख्या 71 (1953)।

85 आर० सुब्रह्मण्य के सचालन में खुदाई तथा के० बी० सुन्दर-राजन्, के० के० सिन्हा, एम० डी० खरे, एच० सरकार, आर० सिंह, अबुल वहीद खान, सहायक, बाद में टी० एन रामचन्द्रन के सामान्य पथ-प्रदर्शन में आई० ए० 1954-55, पृष्ठ 22-23, 1955-56, पृष्ठ 23-26, 1956-57, पृष्ठ 25-38, 1957-58, पृष्ठ 5-8, 1958-58 पृष्ठ 5-10, 1059-60, पृष्ठ 5-10, और 1960-61 (प्रेस में)

86. के०बी० सुन्दरराजन् 'स्टडीज़ इन दी स्टोन एज आफ नागार्जुन कोडा एड इट्स नेबरहुड', एन्शेंट इंडिया, सख्या 14 (1958), पृष्ठ 49-113।

पुरातत्व सर्वेक्षण अपने काम की इतिश्री खुदाई मात्र से ही नही समझ लेता। एक पहाड़ी की चोटी पर एक बडा पूरा स्थानीय सग्रहालय स्थापित करने का आयोजन हो रहा है। यह पहाडी बाध के पानी के बीच में उठी हुई होगी। खुदाई द्वारा प्राप्त कुछ स्मारक भी इस पहाडी पर स्थापित किए जा रहे है विशेषकर वह घाट आगे भी नदी की धारा के किनारे पर रहेगा, भले ही वह आज की स्थिति से कई मीटर ऊपर की ओर स्थापित किया जाएगा। जलाशय के बाहर की एक दूसरी पहाडी पर कुछ अन्य अवशेष स्थापित किये गये है और जहा भी सभव हो सका है उन अवशेषो के आसपास की पृष्ठभूमि को यथापूर्व रखा गया है। जिन अवशेषों की ईटो की दशा बहुत अधिक गिर चुकी थी और उनको दूसरे स्थान पर ले जाकर स्थापित करना संभव नही था, उनके बडे आकार के नमूने तैयार किये गये है जो उल्लिखित संग्रहालय के आसपास या सग्रहालय में ही प्रदर्शित किये जाएगे।

आध्र प्रदेश की सरकार के पुरातत्व विभाग ने येल्लेश्वरम्[87] में जो खुदाई की है, उसके फलस्वरूप मिली सामग्री से भी पता चलता है कि वहां भी सस्कृतियों का क्रम लगभग वही रहा है जो नागार्जुन-कोंडा मे पाया गया है। येल्लेश्वरस्वामी के मदिर के निकटवर्ती क्षेत्र की खुदाई मे कई महत्वपूर्ण अवशेष मिले है जिनमे बिहार चैत्य इत्यादि सम्मिलित है। उसके पास ही एक घाट भी मिला है जिसकी सीढ़िया कृष्णा नदी तक जाती है। उत्तर की ओर अन्य क्षेत्रो मे जहा इन अवशेषो के उद्धार के लिए कार्य किया गया है या किया जा रहा है, वे है · महाराष्ट्र के धूलिया जिले मे ताप्ती घाटी, मध्यप्रदेश के मदसौर जिले मे चम्बल घाटी, पश्चिमी बंगाल के बाकुरा और पुरूलिया जिलो में कसाई (कसावती) घाटी और हिमाचल प्रदेश के बिलासपुर जिले मे सतलज घाटी। देवनीमोरी मे भी खुदाई का कार्य अशत मेशबो की सिंचाई परियोजना के सिलसिले मे शुरू किया गया था।

ताप्ती पर एक बाध उकाई मे निर्मित किया जा रहा है, जिसके फलस्वरूप लगभग चालीस किलोमीटर भूमि पानी से डूब जाएगी। इसके बाद दो स्थानो बहुरूपा और सावलदा मे खुदाई का कार्य काफी जोरों से किया गया है[88]। बहुरूपा मे तो ताम्रयुगीन अवशेष ही मिले है, वैसे ही जैसे कि प्रकाश में मिले थे। सावलदा मे ताम्र-युग के बाद की सामग्री भी मिली है, जिसमें सादे लाल व काले बर्तन और उत्तरी काली पालिशदार बर्तनो के साथ-साथ मिलने वाली सामग्री सम्मिलित है।

चम्बल नदी पर बनने वाले बाध के फलस्वरूप लगभग सात सौ वर्ग किलोमीटर क्षेत्र जलमग्न हो जाएगा। उस क्षेत्र में मिलने वाले प्राचीन अवशेषों के उद्धार के लिए मध्यप्रदेश के पुरातत्व विभाग ने काफी बड़े पैमाने पर खोज कार्य किया है और आवड़ा तथा मनोती में खुदाई कार्य भी हुआ है[89]। खोज कार्य के फलस्वरूप मिली हुई सामग्री में पुरापाषाण, लघु पाषाण काल और ताम्रयुगीन सामग्री, तथा शृखला-दो के उपकरण ही नही, बल्कि चट्टानों में बनाए हुए कुछ ऐसे विश्राम स्थल भी मिले है, जिनमें चित्रकारी भी की हुई है। चिम्बरनाला नामक स्थान पर यह चित्रकारी लाल या गहरे लाल पीले रगों की कई पर्तों में की गयी है और उसके विषय साभर, चितकबरे हिरन, बानर, छिपकली, इत्यादि, फरसे लिए हुए पुरुष और जुए वाली गाड़िया है (रेखाचित्र-4)। मोरी नामक स्थान पर लगभग तीस ऐसे विश्राम स्थल मिले है और उनमें चरवाहों तथा नृत्यों के दृश्य चित्रित किये गये है।

आवडा और मनोती के खुदाई कार्य मे मिले अवशेषो की तिथि ताम्रयुग से इतिहास के प्रारम्भिक युग तक है। पहले के स्तरो पर लाल पृष्ठभूमि पर काले रग और काली और लाल मिट्टी के सफेद पुते हुए और काले रग के बर्तन मिलते है जबकि उनके बाद के स्तरो पर एन० बी० पी० बर्तन मिले है।

कसाई घाटी मे लगभग सौ वर्ग किलोमीटर क्षेत्र जलमग्न होगा। सर्वेक्षण[90] द्वारा किये गये खोज कार्य के फलस्वरूप वहा कई स्थानो पर पुरापाषाणकाल की चीजे, शृखला-दो के औजार, लघु पाषाणकाल की पालिशदार प्रस्तर कुल्हाडिया मिली है। कुछ इति-हासकालीन अवशेष भी मिले है, लम्बी पालिशदार प्रस्तर कुल्हा-डिया आकार मे स्पष्ट ही पूर्वी भारत की लगती है। इतिहास कालीन अवशेषों मे बस्तियों के अतिरिक्त बारहवी-तेरहवी शता-ब्दियों के मदिर भी सम्मिलित है।

मतलज घाटी मे जलमग्न होने वाले क्षेत्रो के खोज कार्य से, जिसका पहला भाग सर्वेक्षण[91] ने अभी-अभी पूरा किया है, कई महत्वपूर्ण वस्तुओं के साथ सोहन उद्योग की विशिष्ट पुरापाषाण युगीन सामग्री भी मिली है।

उपसंहार

उपर्युक्त सर्वेक्षण यद्यपि विहगम दृष्टि से तथा शीघ्रतापूर्वक किया गया है, फिर भी अनुमान है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् देश के भूतकाल को कुरेदने के जो प्रयत्न किये गये है, उसके बारे मे यह पाठकों का पर्याप्त दिग्निर्देश करता है। भारतीय पुरातत्व

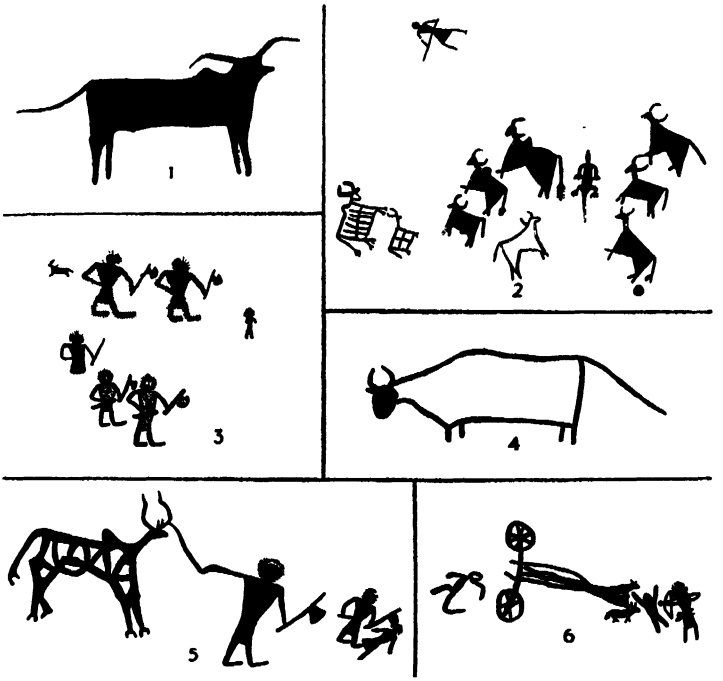
87. विभिन्न रूपों मे पी० श्रीनिवासाचार तथा अब्दुल वहीद खान के सचालन में आई० ए०, 1957-58 पृष्ठ 9-10, 1958-59, पृष्ठ 12, और 1950-61 (प्रेस में)।

88 आर० वी० जोशी के संचालन मे, एस० ए० साली, बी० पी० बोपार्दीकर एस० पी० जैन तथा के० एम० श्रीवास्तव की सहायता से आई० ए० 1958-59 पृष्ठ 22-35, और 1959-60, पृष्ठ 34-37।

89. विभिन्न रूप मे एम० जी० दीक्षित तथा एच० वी० त्रिवेदी के संचालन में, बी० एस० बाकनकर द्वारा सहायता से आई० ए० 1957-58, पृष्ठ 26-30, 1958-59, पृष्ठ 27-29, और 1959-60, पृष्ठ 22–25।

90 बी० डी० कृष्णस्वामी के सचालन मे के० एम० श्रीवास्तव तथा एस० पी० जैन की सहायता से: आई० ए० 1959-60 पृष्ठ 48-50।

91 बी० डी० कृष्णस्वामी के संचालन में, के० एम० श्रीवास्तव तथा एस० पी० जैन की सहायता से।



रेखाचित्र-4

सर्वेक्षण विभिन्न राज्यो के पुरातत्व विभाग, विश्वविद्यालय, गवेषणा सस्थाए आदि सभी सम्बन्धित विभाग इस दिशा मे कार्य करने के लिए उत्सुक है। उन्होने इस अविलम्बनीय और पुण्य कार्य मे अपना पूरा सहयोग दिया है। यह कहना अत्युक्ति नही होगी कि उन्होने अपने इस पुनीत कार्य का भलीभाति निर्वहन किया है। सुविख्यात पुरातत्व शास्त्री सर मोर्टीमेर ह्वीलर ने सन् 1958 मे जो कहा था, उसका यहा उद्धरण असगत नही होगा "पुरातत्व सम्बन्धी विषयो मे जितना कार्य आज भारत गणराज्य मे हो रहा है, उतना सभवत विश्व के किसी दूसरे क्षेत्र मे नही।" लेकिन इसका यह अभिप्राय नही है कि हम इस दिशा मे आत्मतोष की भावना अपना ले, क्योकि जो काम अभी तक किया गया है वह भावी कार्य का एक अशमात्र है। इस सम्बन्ध मे प्रस्तुत लेखक के मस्तिष्क मे मुख्य रूप से तीन बाते आती है। यदि इसमे कुछ आत्म आलोचना निहित है, तो भी इसे यथार्थ दृष्टि से देखना चाहिए, क्योकि आत्म-ज्ञान ही आत्मविकास का सही मार्ग है।

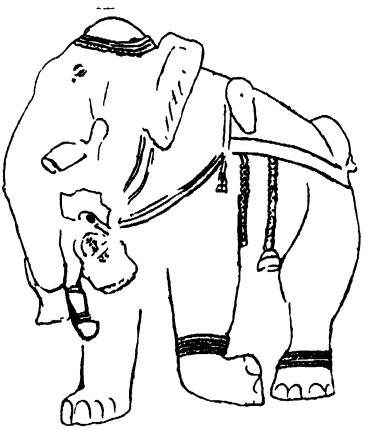
सर्वप्रथम यह बात व्यक्त कर दी जाए, और जिसे सब स्वीकार भी करते है कि ऐतिहासिक स्थानो की खुदाई बडे धैर्य और चतुरता से की गयी है और उससे महत्वपूर्ण परिणाम निकले है, लेकिन उनका वर्णन और प्रकाशन समीचीन ढग से नही हुआ है। हमे अप्रकाशित खुदाई कार्यों के परिणाम पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिए। आगामी कुछ वर्षों मे हमारा यही उद्देश्य होना चाहिए कि 'शुभ काम मे कभी देर नही होती' और अब तक किये गये कार्यों के प्रकाशन के लिए हमे अथक प्रयत्न करना चाहिए।

दूसरी बात आयोजन से सम्बन्धित है। हमने स्वतन्त्रता के पश्चात् खुदाई के लिए विस्तृत क्षेत्र को न चुनकर सीमित क्षेत्रों मे सीधी खुदाई की है। यद्यपि इस प्रकार की स्थिति की आलोचना नही की जा सकती, क्योकि सीधी खुदाई सस्कृति की एक शृखला स्थापित करने मे सहायक होती है। फिर भी अब समय आ गया है कि अब तक उपलब्ध सस्कृति के विभिन्न स्तरो का विशद अध्ययन किया जाए। यह तभी सभव है जब चुने हुए स्थानो पर विस्तृत

क्षेत्रो मे बडे पैमाने पर तीन-चार साल तक चलने वाली खुदाई की जाए। यदि नीचे की तह का स्पष्ट चित्र प्राप्त करने के लिए किन्ही स्थितियो मे ऊपरी स्तरो के कुछ निर्मित स्थलो का हटाना आवश्यक हो, जिसके लिए कि यह कार्य ही प्रारम्भ किया गया था, तो हमे इस बात पर सहमत हो जाना चाहिए। किन्तु यहा पर यह स्मरणीय है कि हम जिन-जिन स्तरो को हटाना चाहते है, उनके सम्बन्ध मे विशद वर्णन तैयार कर लिया जाए।

तीसरी महत्वपूर्ण बात- भारतीय सामग्री का व्यापक सदर्भ मे अध्ययन है। इसे और स्पष्ट ढग से कह दिया जाए। स्वतन्त्रता के पश्चात् खुदाई मे उपलब्ध सामग्री अर्थात् आर्यों से सम्बन्धित चित्रित भूरे बर्तनो वाली सस्कृति, नवदाटोली मे मिली मध्य भारतीय ताम्रयुगीन सस्कृति, लोथल मे उपलब्ध आकर्षक मुहरें और मनोहर मिट्टी के बर्तन और इन सबसे अधिक महत्वपूर्ण बुर्जाहोम में मिले अस्थियो मे निर्मित उपकरणो का अध्ययन पश्चिमी एशिया मे उपलब्ध ऐसी ही सामग्री की पृष्ठभूमि मे ही किया जाना चाहिए। इसी प्रकार और भी अनेक वस्तुए है जैसे गोल पत्थरों के औजार, पालिश वाली पत्थरो की कुल्हाडिया आदि जिनसे पूर्वी एशिया से सम्पर्क सिद्ध होता है। अब समय आ गया है कि भारतीय विद्वान्, वैयक्तिक अथवा सामूहिक रूप मे उन-उन क्षेत्रो मे उपलब्ध सम्बन्धित सामग्री का तत्काल व्यापक अध्ययन करने के लिए भेजे जाए।

(रूपान्तर विद्याभूषण गगल)



अभिलेख विषयक शोध-कार्य

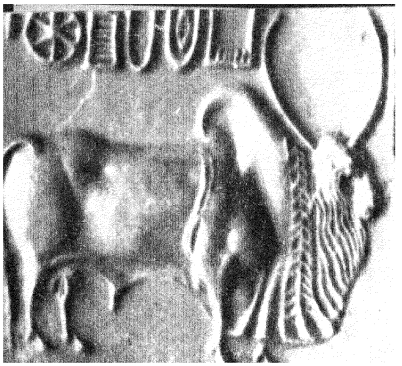
बहादुर चन्द्र छावड़ा

उत्कीर्ण लेख या अभिलेख पुरातत्व विद्या के प्राण हैं। हाल ही मे देश मे भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण का शताब्दी समारोह मनाया गया था। इस विभाग का जन्म मूलत उत्कीर्ण लेखो के साथ ही हुआ था। अभिलेख-शास्त्र बहुत ही विशेषज्ञो का विषय है। अतएव उसके उपासको की सख्या नगण्य है। वास्तव मे थोडे से विशेषज्ञ ही इसके जानकार है। साधारण कोटि के शिक्षित लोग तो सम्भवत यह भी मानने को तैयार है कि उन्हें उत्कीर्ण-लेख शब्द की अर्थ-व्याप्ति का भी पूरा ज्ञान नही है।

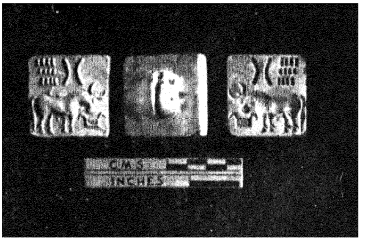
अभिलेख-शास्त्र, प्राचीन शिला-लेख आदि उन लेखो का विवेचन करता है जो खोद कर लिखे जाते है। यह खुदाई पत्थर, धातु, लकडी, मिट्टी आदि किसी भी पदार्थ मे हो सकती है। यद्यपि सामान्यतया उत्कीर्ण-लेख का विशिष्ट लक्षण यही होना चाहिए कि वह खोद कर लिखा हुआ हो परन्तु, फिर भी इसके अपवाद स्वरूप कुछ स्याही के लेख भी कभी-कभी उत्कीर्ण लेखों में सम्मिलित कर लिए जाते है। उत्कीर्ण-लेख को पढने वाले और उनकी व्याख्या करने वाले विद्वान् अभिलेखविद् कहलाते हैं। भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग की अभिलेख शाखा में ऐसे ही विद्वान् काम कर रहे है।

हस्त लिखित ग्रथ चाहे कितने ही पुराने हो उत्कीर्ण लेखो में सम्मिलित नही किये जाते। पुस्तकालयो और सग्रहालयो में कागज, भूर्जपत्र और ताड-पत्र आदि पर लिखे हुए अनेक हस्तलेख मिलते है। ताड-पत्रो के लेख तो प्राय ऐसे भी होते है जो स्याही से न लिखे जाकर, उत्कीर्ण ही किये जाते है। परन्तु फिर भी उन्हे उत्कीर्ण लेखो के अन्तर्गत नही माना जाता। उत्कीर्ण-लेख और हस्तलेख मे मुख्य अन्तर यही है कि उत्कीर्ण-लेख सदा ही मूल लेख होते है जब कि हस्तलेख मूल लेख की प्रतिलिपि की भी प्रतिलिपि हो सकते है। इसीलिए पुरातत्व-वेत्ताओ द्वारा भूमि की खुदाई करते समय निकाले हुए लकडी, मिट्टी, ताम्र-पत्र आदि पर लिखे स्याही के लेख भी अभिलेखो मे सम्मिलित कर लिए जाते है जब कि ताड-पत्रो के लेख वास्तव मे उत्कीर्ण होते हुए भी उत्कीर्ण लेखो में न गिने जाकर हस्तलेखो के ही अन्तर्गत स्थान पाते है। हां, अभिलेख-विद् को कभी-कभी हस्तलेखों पर भी काम करना पड़ता है। विशेषकर उस समय जब वे भूमि की खुदाई में निकाली हुई पुरातत्व सामग्री में मिले हों।

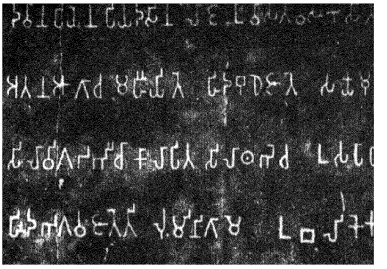
जब पुरातत्ववेत्ता का खुदाई कार्यक्रम चलता है तो अनेक मुद्राए सिक्के, पदक, आदि मिलते है। उन पर लिखे अक्षर छाप कहलाते है। छापो का अध्ययन भी अभिलेख-विषयक शोध का ही एक अग है यद्यपि अधिक सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर उसको अनेक शाखाओ में विभक्त कर दिया जाता है। और प्रत्येक शाखा को एक पृथक् शास्त्र की संज्ञा मिल जाती है। उदाहरणार्थ:—



मोहनजोदड़ो की मुहर का संवर्धित रूप (इस पर अंकित लेख को अभी तक नहीं पढ़ा जा सका है, अनुमानित काल : दो सहस्राब्द ईसापूर्व)

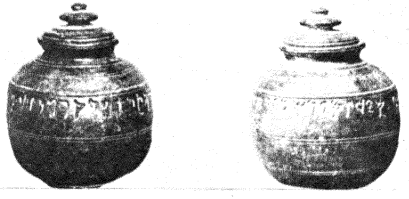


कालीबंगन (राजस्थान) से प्राप्त हड़प्पा संस्कृति की मुहर । दायें : मूल मुहर, मध्य : मुहर का पृष्ठभाग, बायें मिट्टी पर छाप । अनुमानित काल : दो सहस्राब्द ई० पू०



रुम्मिनदेई (नेपाल तराई) के स्तंभ पर अशोक का ब्राह्मी लिपि में शिलालेख, इसमें अपने राज्य के बीसवें वर्ष में अशोक के लुम्बिनी (बुद्ध का जन्म स्थान) आने का और गाव को कर-मुक्त करने का उल्लेख है ।

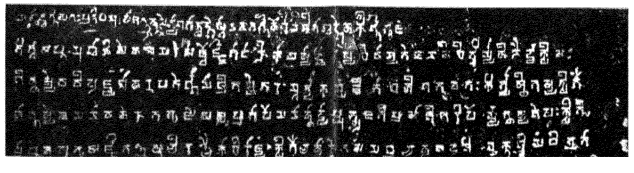






(ऊपर) लाहौर संग्रहालय के एक प्रस्तर-पात्र के घेर में अंकित दूसरी सदी ईसवी के खरोष्ठी शिलालेख का नमूना । इसमें दो भाइयों सिहिल और सिहरक्षित द्वारा बौद्ध स्तूप क निर्माण का उल्लेख है ।

(बायें) मौखरि राजा सर्ववर्मन (अनुमानित काल छठी सदी ईसवी) की एक ताँबे की मुहर की छाप । लेख में पाँच पीढ़ियों का ब्यौरा दिया गया है ।

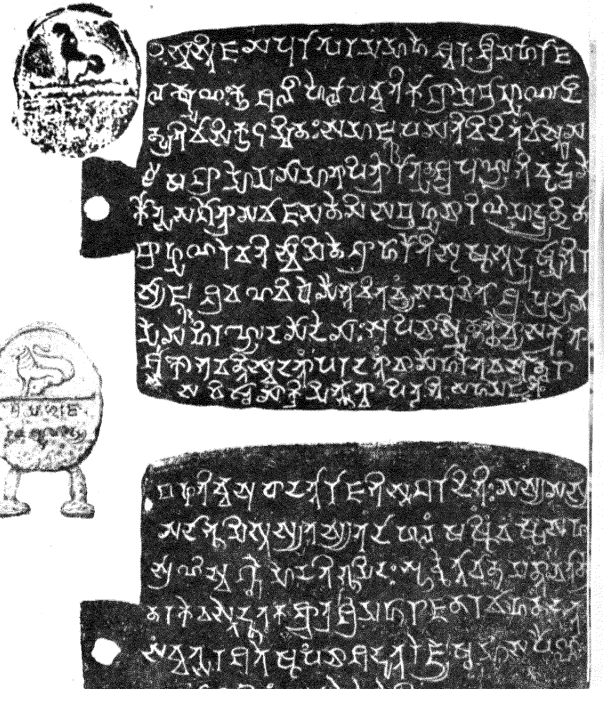


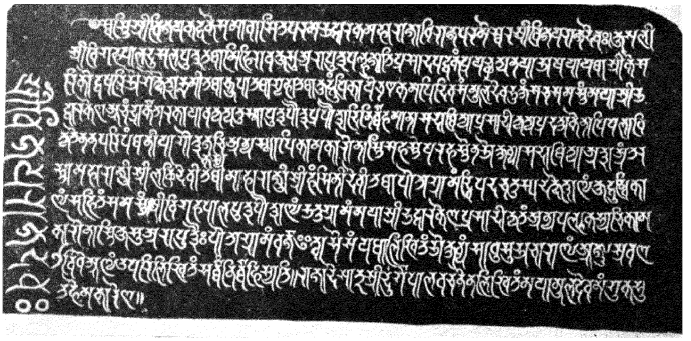
पश्चिम जावा (इंडोनेशिया) का लगभग चौथी सदी ईसवी का पल्लव-ग्रन्थ (ब्राह्मी से उद्भूत), लिपि का एक शिलालेख, जिसमें एक संस्कृत श्लोक में बताया गया है कि ये पद चिन्ह राजा पूर्ण-वर्मन के हैं ।



(दायें) पाली, जिला इलाहाबाद से प्राप्त लगभग पाँचवी सदी ईसवी का ताम्र पत्र, जो दोनों ओर खुदा हुआ है (ऊपर और नीचे) । इसमें जयपुर के महाराजा लक्ष्मण द्वारा भूमि के दान का उल्लेख है ।

(नीचे—बायें) दिल्ली के पास मेहरौली के लौहस्तंभ (अनुमानित काल चौथी सदी ईसवी) का संस्कृत अभिलेख । इसमें राजा चन्द्र द्वारा विष्णुपाद पहाड़ी पर भगवान विष्णु की स्मृति में स्तंभ निर्माण का उल्लेख है ।





ऊपर—आरभिक नागरी लिपि का एक ताम्र-पत्र। जिसमें 1200 ईसवी के आस पास उडीसा के राजा विजयराजदेव द्वारा भूमि के दान का उल्लेख है। आज कल यह दानपत्र लंदन में है। भाषा सस्कृत है जो प्राकृत के प्रभाव से अशुद्ध हो गयी है। लिखने की सुन्दर शैली द्रष्टव्य है।

नीचे—1461 ईसवी का एक शारदा अभि-लेख का नमूना। इसमें वन्हडाक द्वारा एक तालाब के निर्माण का उल्लेख है। अक्षर अरबी-फारसी शिलालेखों की तरह उभरे हुए हैं, खुदे हुए नहीं। मूल सस्कृत शिलालेख हजारा जिले में मिला था और अब पेशावर सग्रहालय में सुरक्षित है।



सिक्को आदि का अध्ययन सिक्का-शास्त्र के अन्तर्गत माना जाता है जबकि मुहरो आदि का विवेचन मुहर-शास्त्र कहलाता है। सुविधा के लिए मुहर और छाप मे भी भेद किया जाता है। मुहर, उस मूल मुहर अथवा साचे को कहते है जिस पर अक्षर अपने उल्टे रूप मे खुदे होते है और उन उल्टे अक्षरो के दबाव आदि से जो रूप मिट्टी, मोम आदि पर बन जाते है वे छाप कहलाते है। भारत के प्राचीन स्थानो पर मिट्टी की (पकाई हुई और धूप से सूखी हुई) हजारो छापें मिलती है। स्वभावत ही मुहरो की सख्या कम है, यद्यपि वे भांति-भाति की है। उनमे से कुछ हाथी दात की है कुछ कीमती रत्नो आदि की, और कुछ मिट्टी की। इसके अतिरिक्त सोने-चादी तथा अन्य धातुओ की मुहरो तो विपुल मात्रा मे है ही।

अभिलेख-शास्त्र का क्षेत्र

अभिलेख-शास्त्री मे दो प्रकार की योग्यता होनी चाहिए। एक पुरानी लिपियो को पढने की और दूसरी भाषाओ को समझने की। ये दोनो भिन्न विषय है। पहले को पुरा-लिपि-शास्त्र (palaeography) और दूसरे को भाषा-शास्त्र कहते है। पुरा-लिपि-शास्त्र का सबध केवल प्राचीन लिखित सामग्री से है, उसके अर्थ से नही। प्राय ऐसा होता है कि कोई विद्वान् किसी लेख के अक्षरों को पढ अथवा पहचान सकता है, परन्तु फिर भी उस लिखित भाषा के अर्थ को नही समझ पाता। उदाहरणार्थ, हम रोमन लिपि जानते है तब भी यह आवश्यक नही कि उस लिपि मे लिखे हुए फेच, इटेलियन, स्पेनिश आदि भाषाओ के लेखो को समझ सके। वह तो तभी सभव होगा, जब हमे इन भाषाओ का भी ज्ञान हो। भारत के प्राचीन उत्कीर्ण लेखो मे विविध लिपियो और भाषाओ का प्रयोग हुआ है अत उनके अध्येता का कार्य और भी कठिन और जटिल है। भाषा-शास्त्र और पुरा-लिपि-शास्त्र के बीच का शास्त्र है 'वर्तनी-शास्त्र', (orthography) जिसका सबध मुख्यत. शब्दो के अक्षर विन्यास से है। कभी व्याकरण के और कभी व्यक्ति-गत रुचि के कारण एक ही शब्द अनेक प्रकार से लिखा जाता है जैसे'—अय्यर, ऐयर, आइयर आदि। भारत के प्राचीन लेखों मे इस प्रकार का वर्तनी-भेद बहुत अधिक मात्रा में मिलता है।

उत्कीर्ण-लेख-शास्त्र की एक और शाखा है 'अभिव्यक्ति शैली' (Diplomatic)। विविध प्रलेख, दानपत्र, ताम्र-पत्र आदि किस शैली और भाषा में लिखे जाते है, इसकी विवेचना अभिव्यक्ति शैली के शास्त्र मे होती है।

अभिलेख-शास्त्र की एक शाखा सुलेख है। सुलेख का अर्थ है सुन्दर अक्षरो में लिखकर अभिव्यक्त करना। लिपिकार अथवा उत्कीर्ण करने वाले के अक्षर-सौंदर्य की जांच करना इस शाखा के अन्तर्गत आता है। अरबी और फारसी भाषा के उत्कीर्ण-लेख सुलेख की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है उनकी विशेषता यह थी कि वे खुदे हुए न होकर उभरे हुए होते थे।

भारत के उत्कीर्ण-लेख

भारत के उत्कीर्ण-लेखो का अनुपम महत्व है। ऐतिहासिक खोज मे इनसे जितनी सहायता भारत मे मिली है, उतनी अन्यत्र कहीं नही। इतिहास-रचना के साधन के रूप मे पुरातत्व वेत्ता ने जितनी सामग्री प्रस्तुत की है उसमे सबसे अधिक महत्वपूर्ण स्थान उत्कीर्ण-लेखो का ही है। यदि हम कहे कि उत्कीर्ण-लेखो के अभाव मे भारत के प्राचीन इतिहास की सामग्री नगण्य ही रही होती, तो किसी प्रकार की अत्युक्ति नही होगी। सौभाग्य से भारत मे उत्कीर्ण-लेखो की सामग्री इतनी अधिक है कि वह अन्य सामग्री के अभाव को खटकने नही देती, अन्यथा ऐतिहासिक अभिलेख, इतिवृत्त आदि के रूप में तो हमारे पास बहुत ही कम सामग्री है। अब तक प्राप्त प्राचीन उत्कीर्ण-लेखो की सख्या वस्तुत हजारो मे है। यही नही प्रतिवर्ष सैकडो की सख्या मे नये उत्कीर्ण-लेख भी मिल जाते है। इसके अतिरिक्त अन्य अनेक प्राचीन स्थान है जिनकी खुदाई होने पर इसी प्रकार की और बहुत-सी सामग्री मिल जाने की आशा है।

उत्कीर्ण-लेखो से प्राप्त हुई सामग्री को सामान्यत अन्य सभी प्रकार की सामग्री से अधिक विश्वासयोग्य माना जाता है और उसकी प्रामाणिकता की पुष्टि के लिए अन्य साधन ढूढने की बहुत कम आवश्यकता होती है। यही नही साहित्यिक ग्रथो, प्राचीन कथाओ तथा अन्य अनुमानो की प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिए ये उत्कीर्ण-लेख बहुत बडे साधन होते है।

भारत से बाहर भी दक्षिण-पूर्वी एशिया के अनेक द्वीपो और भूखण्डो मे सस्कृत के अनेक उत्कीर्ण-लेख मिले है जिनका अध्ययन और प्रकाशन मुख्यतया फ्रासीसी और डच विद्वानो ने किया है।

प्राचीन भारतीय लिपियां

यदि प्राचीन लिपियो के क्षेत्र मे काम करने वाले विद्वानो ने अपना सहयोग न दिया होता, तो सम्भवत प्राचीन उत्कीर्ण-लेख हमारे लिए अगम्य वस्तु ही रहे होते। लिपियो के क्षेत्र मे सबसे अधिक श्रेय श्री जेम्स प्रिसेप को है। उन्होने सबसे पहले अशोक के लेखो को पढकर विस्मृत ब्राह्मी लिपि को एक बार पुनर्जीवित किया। ब्राह्मी ही भारत की सबसे प्राचीन ऐतिहासिक लिपि है। परवर्ती शोध कार्य से यह सिद्ध हो गया है कि वर्तमान देवनागरी, गुजराती, बगला, उडिया, तेलुगु, तमिल, कन्नड, मलयालम आदि लिपिया ब्राह्मी लिपि से ही विकसित हुई है। यही नही अपितु बर्मा, हिन्द-चीन, हिन्देशिया, श्रीलका आदि अन्य पडोसी देशो की लिपियो की जननी भी ब्राह्मी ही है। विविध क्षेत्रो और विविध समयो पर ब्राह्मी का किस प्रकार विकास हुआ उसको स्पष्ट करने वाले अनेक उत्कीर्ण-लेख हमें उपलब्ध है।

उत्तर-पश्चिम भारत में अशोक के दो शिला-लेखो मे खरोष्ठी लिपि का भी प्रयोग हुआ है जो सामी परिवार की है। ब्राह्मी और उससे विकसित लिपियो के अक्षर बाई से दाहिनी ओर लिखे जाते है जब कि खरोष्ठी लिपि के अक्षर उससे विपरीत दाहिनी से बाईं ओर को। खरोष्ठी का प्रयोग केवल उत्तरी भारत और चीनी

तुर्किस्तान तक सीमित था। पाचवी शताब्दी तक उसका प्रयोग भारत मे लुप्त हो चुका था। उसमे उत्पन्न होने वाली कोई लिपि भारत मे दृष्टिगोचर नही हुई।

भारत मे होने वाले मुसलमान शासको के बहुत मे लेख अरबी और फारसी लिपियो मे है। वे लिपिया भी खरोष्ठी के समान दाहिनी से बाई ओर को लिखी जाती है।

भारतीय अभिलेखों की भाषाएं

यद्यपि वैदिक और लौकिक सस्कृत का साहित्य बहुत प्राचीन है, फिर भी यह आश्चर्य की बात है कि अब तक मिले हुए सभी प्राचीनतम अभिलेख प्राकृतो मे है। परवर्ती शिलालेखो मे अवश्य सस्कृत को प्रमुखता रही है और उसमे भी बाद के समय के तो प्रान्तीय भाषाओ के तथा अरबी, फारसी के उत्कीर्ण-लेख भी मिलते है। भारत मे कुछ अभिलेख पुर्तगाली डच, फ्रेच और अग्रेजी आदि भाषाओ के भी है, परन्तु वे सख्या मे नगण्य ही है।

सस्कृत के कुछ अभिलेख पूर्णत पद्य मे है, कुछ मे गद्य और पद्य का मिश्रण है और शेष केवल गद्य मे है। उनकी शैली अनेकरूपा है। सरल, साधारण शैली से लेकर अत्यन्त आलकारिक शैली तक के रूप मिलते है। वास्तव मे कुछ उत्कीर्ण-लेखो मे उत्कृष्ट काव्य-तत्व विद्यमान है और उनका समावेश श्रेष्ठ साहित्य के अन्तर्गत किया जा सकता है। बहुत से अभिलेखो मे विशेष प्रकार की शब्दावली और अभिव्यक्ति का प्रयोग है, जो भाषा-शास्त्री दृष्टि से अनुपम महत्व की है, क्योकि उन से यह विदित हो सकता है कि प्राचीन भारत में शासन-प्रणाली किस प्रकार की थी।

उत्कीर्ण-लेखों के स्वरूप

भारत में मिलने वाले उत्कीर्ण-लेखो मे जो वर्ण्य विषय रहा है उसका विवेचन इस लेख के क्षेत्र से बाहर है, फिर भी आगे सक्षेप मे जो उल्लेख किया जाएगा उससे भारत की इस लेख सम्पदा का कुछ परिचय मिल सकेगा। उत्कीर्ण-लेखो में मूर्धन्य स्थान तो निस्सदेह हडप्पा और मोहेनजोदडो मे प्राप्त ससार प्रसिद्ध मुहरो का है। उतनी ही प्राचीन सामग्री पिछले वर्षो मे सिन्धु घाटी के दक्षिण-पूर्व के प्रदेशो के कुछ भागो से मिली है जैसे—पजाब, गुजरात और राजस्थान के क्रमश रूपड, लोथल, कालीबगा आदि स्थानो मे। उन अनुपम मुहरो और ताबीजो मे जो छापे अथवा उत्कीर्ण-लेख है वे आज भी रहस्यमय बने हुए है। उनके रहस्योद्घाटन के अनेक प्रयास किये जा चुके है। उनकी सर्वांगपूर्ण व्याख्या करने का विशिष्ट प्रयत्न सम्भवत जी० आर० हटर का है (स्क्रिप्ट आफ हडप्पा एड मोहेनजोदड़ो एड इट्स कनेक्शन विद अदर स्क्रिप्ट्स, लदन, 1934)। श्री हटर के अनुसार वह लिपि प्राचीन भारतीय लिपि है और ब्राह्मी का भी विकास उसी से हुआ था।

पढे गये उत्कीर्ण-लेखो का ताता मौर्य-सम्राट् अशोक के लेखो से ही प्रारम्भ होता है। वे लेख ब्राह्मी तथा खरोष्ठी लिपियो मे है। अशोक के कोई दो सौ लेख अब तक प्राप्त हुए है और वे देश के विभिन्न भागो मे फैले हुए है। उन लेखो से सम्राट् अशोक की दया-भावना, प्रजावत्सलता तथा विविध प्राणियो के प्रति करुणार्द्रता का आभास मिलता है। अशोक के छोटे लेखो मे मुख्य स्थान नेपाल की तराई मे स्थित रुम्मिनदेई के स्तम्भ लेख का है जिसकी सहायता से बुद्ध के जन्म-स्थान का पता चलता है। उसमे स्पष्ट लिखा है कि 'तथागत का जन्म यहा हुआ'। मौर्यवश के पश्चात् अनेक ऐसे राजवश हुए है जिनका पता केवल उनके उत्कीर्ण-लेखो से चलता है। मघ, नल, मेकल आदि वशो के राजाओ के नाम तो पुराणो मे विदित थे पर उनके उत्कीर्ण-लेखो ही से यह विदित हो पाया कि वे किस काल मे और किस प्रदेश मे विद्यमान थे। इसी प्रकार गुप्त, वाकाटक, पल्लव और चोल आदि राजवशों के विषय में भी जानकारी उनके उत्कीर्ण-लेखो से ही मिली है।

पुराने उत्कीर्ण-लेखो से देश की धार्मिक, सामाजिक, सास्कृतिक, आर्थिक और प्रशासनिक व्यवस्था का एक चित्र उपस्थित होता है। इसके अतिरिक्त उनसे बहुत सी भौगोलिक सामग्री भी प्राप्त होती है जो अन्य साधनो से अगम्य होती।

बहुत से उत्कीर्ण-लेखो मे तो सही-सही तिथिया भी दी हुई है जिनसे यह पता चलता है कि भारत मे विक्रम, शक, गुप्त, कलचुरी, गाग, हर्ष और लौकिक आदि अनेक प्रकार के सवत् प्रचलित थे।

पिछले सौ सवा सौ वर्षों मे उत्कीर्ण-लेखो से जो सामग्री प्राप्त हुई है उसकी सहायता से भारतीय इतिहास का एक गौरवमय रूप उपस्थित हो पाया है। भारतीय इतिहास के प्राचीनतम काल से अब तक के विवरणो का उद्घाटन करने का महत्वपूर्ण कार्य इन लेखो की सहायता से ही हुआ है। उत्कीर्ण-लेखो के विषय में अनेक विद्वानो और सशोधको ने घोर प्रयत्न किया है। ऐसे कार्यकर्ताओ मे अनेक अतरराष्ट्रीय ख्याति के विद्वान् भी है। उनके प्रयत्नो के फलस्वरूप बहुत-सी गुप्त सामग्री प्रकाश में आयी है, अनेक गूढ तथ्यो का उद्घाटन हुआ है और और भारतीय इतिहास के कई गौरवमय अध्यायो का लिखा जाना सभव हुआ है। इतिहास को उत्कीर्ण-लेखो या अभिलेखो की कितनी बड़ी देन है, इसका अनुमान लगा सकना वस्तुत बहुत कठिन है। वह देन नि सदेह विपुल है।

(रूपान्तर : काशीराम शर्मा)

पुरातात्विक संरक्षण



एम० एन० देशपांडे

भारत मे प्राचीन स्मारको के सरक्षण की समस्या बडी गम्भीर है। पुरातत्व और वास्तुकला की दृष्टि से हमारा देश बडा धनी है। प्रागैतिहासिक शिलाश्रय, शिलाओ को काट कर बनायी गयी गुफाए, विभिन्न धर्मावलम्बियो के देवालय, मस्जिदे, गिरजाघर, किले, स्नानघाट, जलाशय और पुल आदि स्मारक प्रचुरता से पाये जाते है। ये सब भारत के दीर्घकालीन इतिहास के विभिन्न युगो के स्मारक है। किन्तु सरक्षण की समस्या का कारण यह प्रचुरता ही नही, वरन् जलवायु सम्बन्धी कठिनाइया भी है। वास्तव मे इन सब बातो से ही स्मारको की मरम्मत का स्वरूप और समय निर्धारित होता है। यह प्रसन्नता का विषय है कि लगभग एक शती के अनुभव के परिणामस्वरूप भारत के पुरातत्व सर्वेक्षण ने इस महान् कार्य को सुचारु रूप से सम्पन्न करने के लिए कुछ सिद्धान्त निर्धारित किये है और एक सगठन का निर्माण किया है। इस लेख का मुख्य उद्देश्य कुछेक उपयुक्त उदाहरण देकर सरक्षण सम्बन्धी इन सिद्धान्तो की व्याख्या करना है जिससे कि पुरातात्विक सरक्षण विषयक मुख्य तथ्यो को समझा जा सके।

यूरोप के देशो मे गिरजाघरो जैसे स्मारको को पिछले दो विश्व युद्धो के दौरान भारी क्षति पहुची। वहा स्मारको के पुनर्निर्माण का कार्य एक प्रकार से सर्वांगीण नवीकरण के रूप में किया जा रहा है। सिद्धान्त यह है कि मूल सरचना के प्रामाणिक

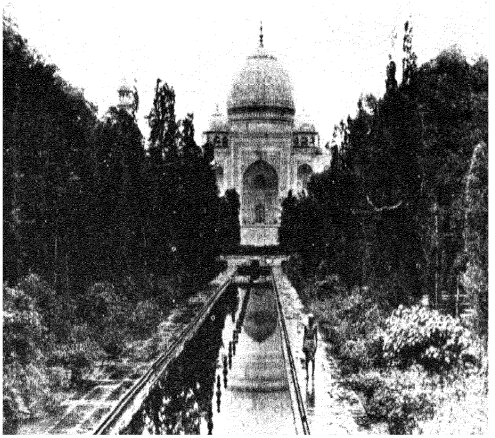
अवशेषो को सुरक्षित किया जाए और साथ ही उसका ऐसा पुनर्निर्माण किया जाए कि वह मूल जैसा ही मालूम पडे। इसके विपरीत भारत के पुरातत्व सर्वेक्षण की सामान्य नीति यह रही है कि प्राचीन सरचना को उसी दशा मे बनाये रखा जाए जिसमे कि वह सर्वेक्षण को सौपी गयी थी। किसी भी प्रकार का पुनर्निर्माण तभी किया जाता है जब कि वैसा करना सम्पूर्ण स्मारक की सरचनात्मक स्थिरता की दृष्टि से अत्यावश्यक हो जाए। यह सच है कि कभी-कभी सुन्दरता की दृष्टि से भी यह आवश्यक हो जाता है कि स्मारक के जो अग नष्ट हो गये है उन्हे पुनर्निर्मित कर दिया जाए, किन्तु मुख्य उद्देश्य यही रहा है कि कम से कम पुनर्निर्माण किया जाए और स्मारक की प्राचीन रचना को सरक्षित रखा जाए। इसका उदाहरण 1957-58 मे चित्तौडगढ मे राणा कुम्भ के तिमजले महल मे की गयी मरम्मत है। इस महल मे कमरो के ऊपर का गुम्बज लगभग आधा गिर चुका था और बचे हुए भाग बडी खतरनाक स्थिति मे लटके हुए थे, लकडी की बल्लिया और करगहने बिल्कुल बेकार हो गये थे और बगल की दीवारे निराधार हो गयी थी। इसका पूर्ण पुनर्निर्माण आसान था। उसका अर्थ यह होता कि चाहे प्राचीन ढग पर ही सही, छठी शती की इमारत के स्थान पर बीसवी शती की इमारत तैयार हो जाती। किन्तु पुरातत्व सर्वेक्षण ने बचे हुए भागो को उसी रूप मे सरक्षित रखने का मार्ग अपनाया। अत इस हेतु पार्श्व के कमरे के दो भूमि तलो मे पुष्ट मसाले के सीमेंट कक्रीट के हाल (रिंग) छिपा कर डाल दिये गये, जो उसी सामग्री से निर्मित खडे स्तम्भो मे बचे हुए है, ये स्तम्भ भी छिपाकर मुख्य कमरे और बरामदे के चारो कोनो मे डाले गये है। लम्बाई वाली दीवारो का सहारा देने के लिए बगल की दीवारो मे पुष्ट मसाले के कक्रीट की बल्ली डाली गयी है, जो लौटती हुई दीवार मे की बल्ली से बधी है। गुम्बज के केवल उसी भाग का पुनर्निर्माण किया गया है, जो गिर गया था। इस प्रकार गुम्बज को पुन उसका मूल आकार दे दिया गया है।

सर्वेक्षण की इस पद्धति को और स्पष्ट करने के लिए और उदाहरण एलोरा की गुफा मे न० 15 के सामने के मडप की मरम्मत है। यहा पश्चिमी ड्योढी की दीवार के बाहरी भाग मे राष्ट्रकूट वश के राजा दतिदुर्ग का एक लेख खुदा हुआ है। यह आठवी शती का एक महत्वपूर्ण लेख है। छत और एक स्तम्भ के गिर जाने के कारण यह लेख वर्षो तक खुला पडा रहा था और फलस्वरूप मिटन लगा। इसको रोकने का एकमात्र उपाय छत का पुनर्निर्माण था। अत. ड्योढी की छत को पुनर्बलित सीमेंट कक्रीट द्वारा ऐसे ढग से पुनर्निर्मित किया गया कि पुरानी और नयी रचना मे, रग और रूप दोनो दृष्टियो मे, भेद करना बहुत कठिन है। पुनर्निर्मित भाग का सकेत देने के लिए एक हलकी रेखा खोद दी गयी है। यहा ध्यान देने योग्य बात यह है कि ध्वस्त अश का पुनर्निर्माण उस अश के लिए ही नही वरन् लेख की सरक्षा के लिए भी आवश्यक हो गया था। इस प्रकार स्पष्ट है कि पुरातत्व सर्वेक्षण का मुख्य उद्देश्य स्मारक की सरचना को बनाये रखना है जिसके लिए न्यूनाधिक पुनर्निर्माण वाछनीय ही नही, कभी-कभी अत्यावश्यक भी हो जाता है।

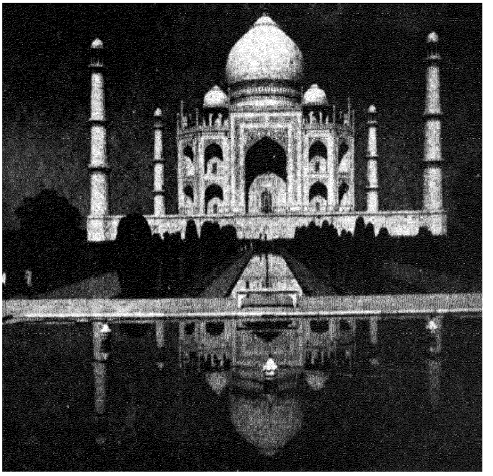
प्राचीन स्मारको की मरम्मत के सम्बन्ध मे एक महत्वपूर्ण समस्या सौन्दर्य है। कुछ लोगो का कहना है कि सौदर्य की बात व्यक्तिगत है अत इसके विषय मे विभिन्न मत हो सकते है। किन्तु यह सच नही है। प्राचीन स्मारक युग विशेष की सफलता का प्रतीक और उस काल के लोगो की सृजनात्मक भावना का परिचायक होता है। अत उसमे उस युग की स्पष्ट छाप होती है। यदि सरक्षक किसी स्मारक को उसके पूर्ण रूप मे समझता है, उसके निर्माणकाल और वास्तुकला की प्रणाली को जानता है, उसके निर्माण मे लगी सामग्री, उसके रचनात्मक पहलुओ और उसके पतन के कारणो को समझता है तो निश्चय ही वह पूरे विश्वास के साथ उसकी मरम्मत का समायोजन और निष्पादन कर सकता है और अत मे उसे यह देखकर आश्चर्य होगा कि किसी प्रकार की विशेष चेष्टा किये बिना ही सौन्दर्य का पूरा ध्यान रखा गया है और मरम्मत तथा, यदि कुछ पुनर्निर्माण किया गया है तो वह भी, स्मारक के स्वरूप के सर्वथा अनुकूल है। इसके विपरीत किसी भी प्राचीन स्मारक की मरम्मत उसके विषय मे पूर्ण जानकारी के बिना समुचित रूप मे आयोजित नही की जा सकती। यही कारण है कि स्मारको का सरक्षण सिविल इजीनियरो और वास्तुकला व्यवसायियो पर नही छोडा जा सकता।

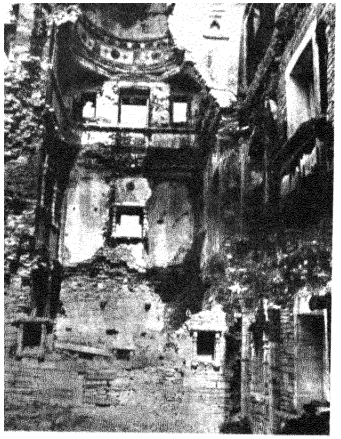
उपर्युक्त बातो से यह निष्कर्ष निकलता है कि स्मारक के सरक्षण की समस्या का हल उस स्मारक को उसके ऐतिहासिक, वास्तुकलात्मक एव सरचनात्मक दृष्टियो से पूर्णत समझने पर निर्भर है।

इस सामान्य नियम की उपयोगिता दक्षिण मे गोल गुम्बज मे की गयी मरम्मतो से सिद्ध होती है। सत्रहवी शती का यह स्मारक ध्वनि लक्षणो के लिए प्रख्यात है। इसके दूरश्रावी गलियारे के ऊपर के गुम्बज के बाहरी भाग मे अनेक दरारे आ गयी थी और गुम्बज के भीतरी भाग के प्लास्टर मे सिलाप के चिन्ह दिखायी दे रहे थे। इससे स्मारक के ध्वनि की गूज के गुण को हानि पहुचने की आशका हो गयी थी। अत 1931 मे गुम्बज के बाहरी भाग मे गुनाइट कर उसे पानी अथवा सिलाप से बचाने की पक्की व्यवस्था कर दी गयी। गुम्बज मे तत्पश्चात् हुए एक और परिवर्तन से सर्वेक्षण के सामने नयी समस्या उठ खडी हुई। बाहरी हिस्से मे गुनाइट लगाने से प्लास्टर के गीले हिस्से शीघ्र ही सूख गये और ईटो से अलग होकर गिरने लगे। इसके साथ ही ईटो के बाहरी भाग मे आडी-तिरछी दरारे पड गयी। यह बिल्कुल ही अप्रत्याशित क्षति थी जिससे कि ध्वनि की गूज के गुण को हानि पहुच रही थी। अत तुरन्त कार्यवाही करना आवश्यक हो गया। ध्वनि लक्षणो का बने रहना गुम्बज की भीतरी दशा पर निर्भर करता है। अत इस बात की जाच करने का निश्चय किया गया कि यदि गुम्बज के भीतरी भाग से प्लास्टर निकाल दिया जाए और उसे स्थिर रखने के लिए उस पर गुनाइट लगा दिया जाए तो

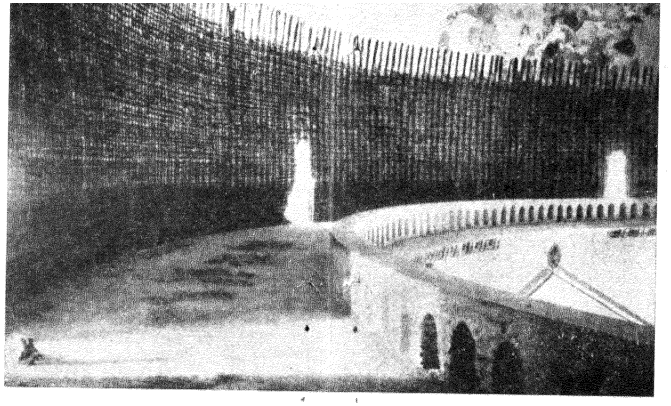


आगरा का ताजमहल
1892 में (ऊपर)
और 1961 में (दायें)

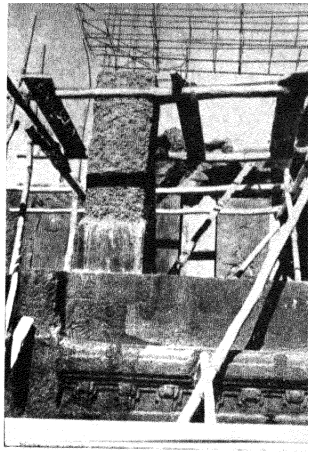




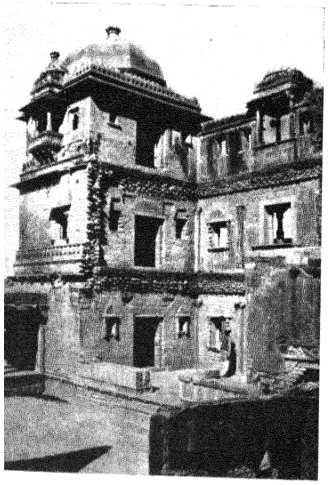
चितौड़गढ़ में राणा कुम्भा का महल मरम्मत से पहले (ऊपर) और बाद में (नीचे)



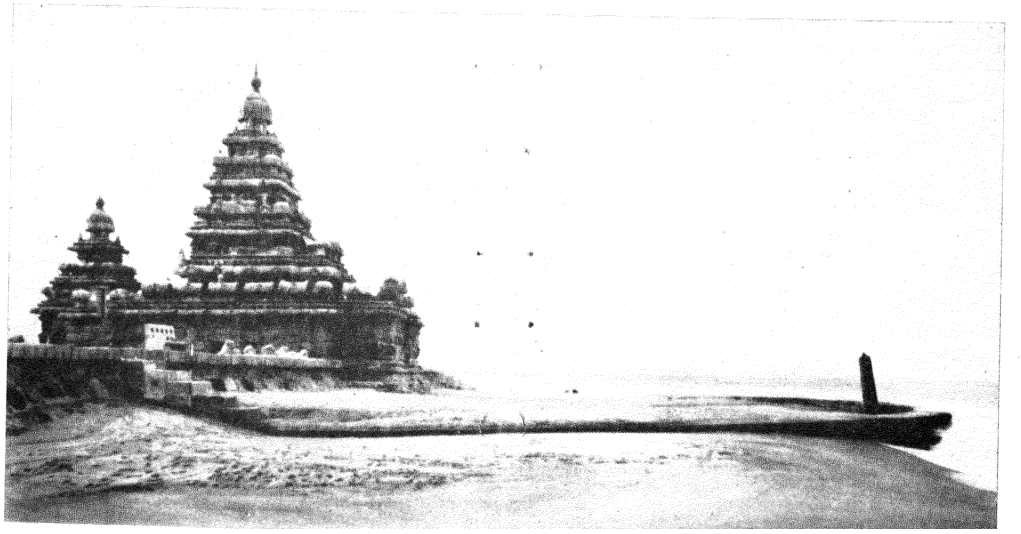
बीजापुर की गोल गुम्बद : पुनर्बलन के लिए लगायी गयी छड़ें

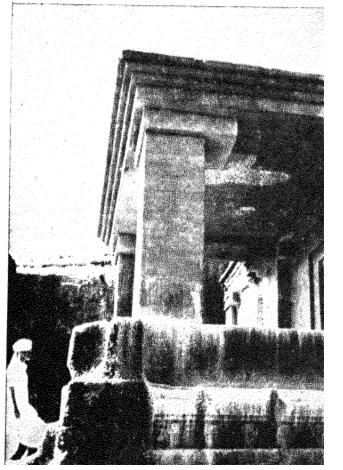


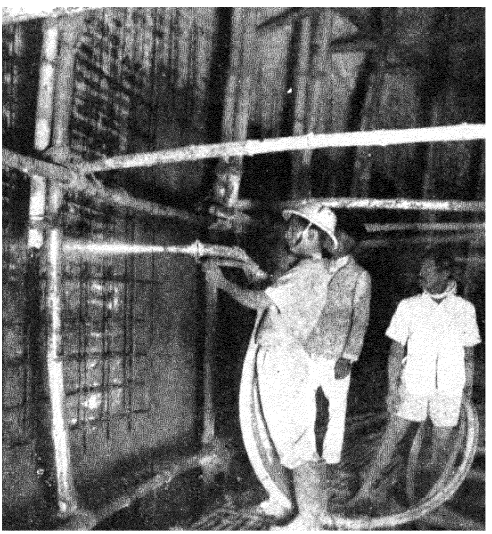
एलोरा की गुफा के मंडप के सामने की ड्योढ़ी, मरम्मत के समय (ऊपर) और मरम्मत के बाद (नीचे)



महाबलिपुरम् का तटमन्दिर— और संरक्षण की उद्बन्ध दीवाल







बीजापुर की गोल गुम्बद .
गुनाईटिग का काम चल
रहा है

क्या गुम्बज के दूरश्रावी तत्वो पर, जो कि उसका मुख्य आकर्षण है, कोई प्रतिकूल प्रभाव तो न पडेगा ? यह निश्चय किया गया कि गुम्बज के भीतरी भाग के नीचे और सामने साढे चार इच मोटी पुष्ट गुनाइट परत लगा दी जाए जो कि मूल आधार पर पुन पुष्ट की गयी गोलाकार बल्ली पर आधृत हो तथा मूल आधार पर उसे ढाई फुट की ऊचाई पर दुगना कर दिया जाए। तदनुसार गुम्बज की चिनाई मे गारे चूने मे दोनो ओर तीन फुट पर फन्नी के द्वारा ईटो के भीतरी हिस्से मे गुनाइट परत को चूल बैठायी गयी। इस काम को करते समय स्टेनलैस स्टील की फन्नियो का प्रयोग किया गया जिससे कि जग लगने और उससे खराबी पैदा होने की आशका न रहे। गुनाइट मे एक हिस्सा पोर्टलैड सीमेट और साढे तीन हिस्सा रेता था। सभी प्रकमो मे गुनाइट लगाने की प्रामाणिक विधि का प्रयोग किया गया। तत्पश्चात् गुनाइट की सतह पर नया प्लास्टर चढा दिया गया जोकि मूल गुम्बज की रग रेखा के समान ही बिल्कुल चिकना और एकसार था। यह काम मार्च, 1949 से लेकर जुलाई, 1951 तक चला और पुरातत्व सर्वेक्षण को इस बात का श्रेय है कि वास्तुकलात्मक विशिष्टताओ और ध्वनि लक्षणो के लिए प्रसिद्ध इस स्मारक की पूर्णत मरम्मत हो गयी और मरम्मत की इस पद्धति की सार्थकता भी सिद्ध हो गयी। मरम्मत के पश्चात् गुम्बज के ध्वनि लक्षणो का रेकार्ड बम्बई की विज्ञान सस्था के डाक्टर तावडे ने भरा। उनका कहना है कि स्पष्ट गूजो की अधिकतम सख्या बारह है। इस प्रकार पहले जाच करने वालो द्वारा रेकार्ड की गयी गूजो से अधिक प्रभावी गूजे रेकार्ड हुई। दूरश्रावी गलियारे और प्रतिध्वनि कोल जैसे अन्य ध्वनि लक्षणो मे भी सुधार हुआ है। यह सब सुधार भीतरी भागो की उपर्युक्त मरम्मत से ही सम्भव हो सका है।

इस सम्बन्ध मे एक बात विशेष उल्लेखनीय है। यह मरम्मत मे प्रयुक्त की जाने वाली सामग्री के बारे मे है जिसे बडी सावधानी से चुना जाना चाहिए। यह बात उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी कि मूल सरचना मे प्रयुक्त सामग्री के तत्वो की जाच। स्मारको की मरम्मतो मे ऐसी सामग्री का प्रयोग होना चाहिए जिससे कि किसी प्रकार का प्रतिकूल भौतिक या रासायनिक प्रभाव न पडे। अनेक प्राचीन इमारतो मे चिनाई को बाधने के लिए लोहे की छडो और फन्नियो का प्रयोग होता रहा है किन्तु यह देखा गया है कि कुछ समय बाद लोहे मे जग लगने और उसके फैलने से चिनाई मे दरारे पड जाती है और इस प्रकार स्मारक की बनावट कमजोर पड जाती है। चिनाई को बाधने आदि के काम मे इस बात का ध्यान रखना आवश्यक होता है कि केवल ऐसी सामग्री का प्रयोग किया जाए जो उपर्युक्त दोषो से रहित है। टपकने वाली छतो को ठीक करने, छत कक्रीट को मजबूत बनाने आदि के लिए जिन अनेक पेटेट मिश्रणो की सिफारिश की जाती है उनके सम्बन्ध मे भी यही बात लागू होती है। इन मिश्रणो को स्मारको मे प्रयोग करने से पूर्व प्रयोगशालाओ ने उनकी परीक्षा कर ली जानी चाहिए।

प्राकृतिक तत्वो से होने वाली क्षति का सामना करना आसान नही है। बगाल की खाडी के तट पर कोणार्क के सूर्य मदिर और महाबलिपुरम् के समुद्रतट मदिर ने बडी गम्भीर समस्याए उत्पन्न कर दी थी जिनका हल अलग-अलग तरीको से किया गया। तीव्र समुद्री हवा ने कोणार्क के सूर्य मदिर के सम्पूर्ण अहाते को रेते से भर दिया जिससे कि उसके नक्काशीदार चबूतरे का एक भाग रेते से ढक गया। अहाते से रेत को हटाने के साथ ही साथ पुरातत्व सर्वेक्षण को अहाते मे रेत के प्रवाह को रोकने के लिए स्मारक के चारो ओर घने बाज के पौदे लगाने के लिए प्रबन्ध करना पडा। जल से बचाने की सामग्री के रूप मे आइरनाइट मिश्रित सीमेट से दरारे भरने का तरीका व्यापक रूप से अपनाया गया है और यह काम अभी भी चल रहा है। नमक के प्रभाव से सतह को जो हानि हुई है उसे दूर करने और सतह को अभेद्य बनाने के लिए यथोचित रसायनो का प्रयोग करना पडा है। महाबलिपुरम् के समुद्रतट मन्दिर से समुद्र की लहरे लगातार चौबीसो घटे टकराती रहती थी जिससे कि इस मदिर के नष्ट हो जाने का भय हो गया था। इसका उपाय यह किया गया है कि एक उद्बन्ध दीवाल का निर्माण कर दिया गया है और अब लहरे उसी से टकराती है।

सरक्षा के सम्बन्ध मे एक और बात, जिसकी ओर ध्यान देना आवश्यक है, उन कारणो की वैज्ञानिक जाच करना है जिनसे कि भवन निर्माण सामग्री नष्ट होती है, जिससे कि उसका उपाय किया जा सके। इस और इससे सम्बद्ध अन्य प्रयोजनो के लिए पुरातत्व सर्वेक्षण की एक विशिष्ट रासायनिक शाखा है जो देश की चित्रकला की भी देखभाल करती है। इनकी सफाई और रक्षण की समस्या बडी सावधानी के साथ और उनके सम्बन्ध मे विस्तृत और व्यापक जानकारी से ही हल हो सकती है। स्मारको मे उगी वनस्पति इत्यादि को, जो कि उन्हे विरूपित और नष्ट करती है, हटाने और इस प्रकार ठीक की गयी सतह को सुरक्षित रखने के लिए बडे कुशल प्रयोगो और यथोचित मिश्रणो आदि की आवश्यकता होती है।

सरचनात्मक और रासायनिक परिरक्षण मात्र से ही स्मारक का सरक्षण कार्य पूरा नही हो जाता। स्मारक की प्राचीन पृष्ठ भूमि और ढाचे को समझना और उसे समझने के लिए समुचित परिस्थितियो का सृजन करना होता है। जिस स्मारक के चारो ओर प्राचीन काल मे उद्यान था उसके चारो ओर पुन उद्यान बनाना भी उसके सरक्षण का एक आवश्यक अग है।

स्मारक की प्राचीन पृष्ठभूमि की रक्षा बहुत महत्व रखती है। नगर आयोजको को इसका ध्यान रखना चाहिए और सरक्षको को तो इसके लिए सघर्ष तक करना पडता है। राष्ट्र की दिन-प्रतिदिन बढती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए स्मारको के आसपास आधुनिक इमारतो के निर्माण से स्मारक के सौन्दर्य को हानि पहुचती है। इस सम्बन्ध मे स्मारको के सरक्षको को स्मारको के हित मे बहुत सतर्क रहना और बहुधा अन्य हितो का रोष सहन करना पडता है।

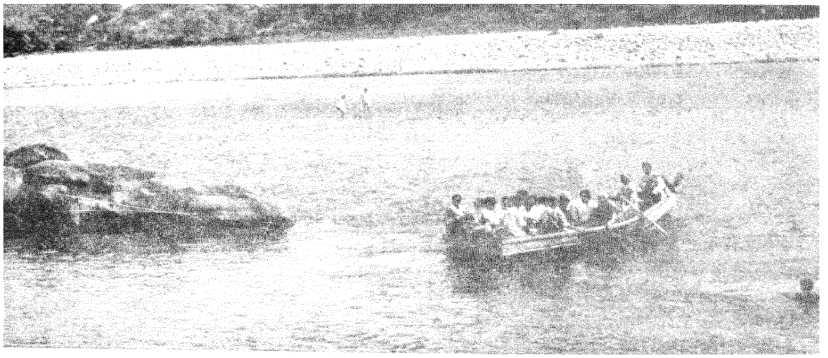
(रूपान्तर बसन्त कुमार पाडे)



भारत में पुरातत्व प्रशिक्षण

वी० डी० कृष्णस्वामी

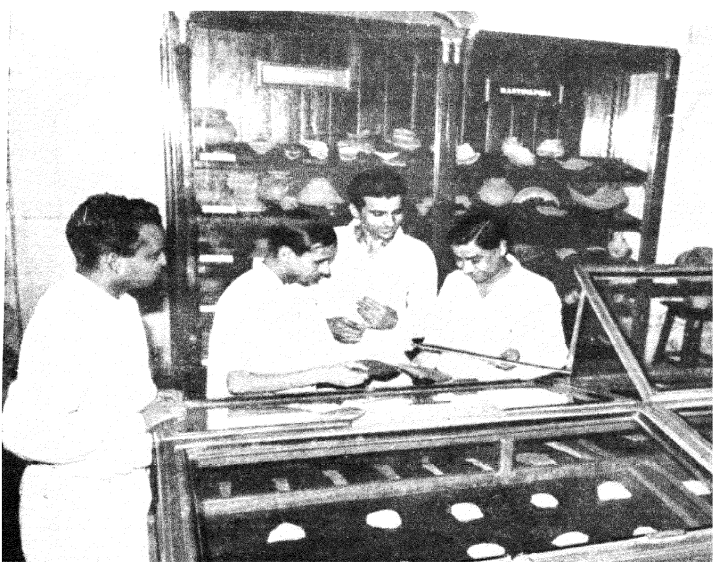
पुरातत्व एक ऐसा सुव्यवस्थित अध्ययन है जिसमे प्राचीन वस्तुओ का अध्ययन इस आशय से किया जाता है कि प्राचीन युग का चित्र पुन मूर्तिमान् किया जा सके, परन्तु यह तभी सम्भव है जब प्राचीन व्यक्तियो के कार्यों के ठोस प्रमाण हो और वे अपने अवशेष इस रूप मे छोड गय हो जिन्हे पहचाना जा सके। प्राचीन युग का मानव पाच लाख वर्षों के कालविस्तार मे अपनी निशानिया विभिन्न रूपो मे छोड गया है—जैसे औजार और उपकरण, कला और वस्तु शिल्प के नमूने, गडे हुए शव, स्मारक, टीलो और सभी प्रकार के अभिलेख—ये सब बाते इतिहासकार के अनुमान के परे है। पुरातत्ववेता इन 'सारवान् अवशेषो' का अध्ययन भूगर्भशास्त्र, प्राचीन शिलालेख-शास्त्र, शारीरिक नृतत्व शास्त्र इत्यादि की सहायता मे करता है और इसके फलस्वरूप मानवीय क्रियाकलापो का एक

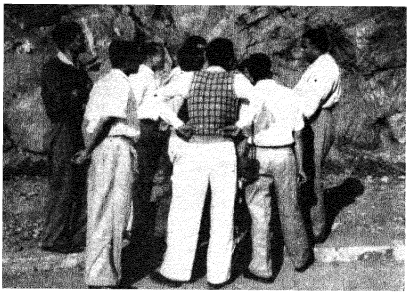


धरती के अध्ययन के लिए व्यास के प

विद्यालय के निदेशक श्री

ियाई पुरावस्तुओं की जांच करते हुए





दिल्ली के आस-पास भूतत्वीय अध्ययन करते हुए छात्र

अट्टिरापक्कम् (मद्रास) के निकट शिविर में इकट्ठे किये गये
पुरापाषाण काल के औजारों का वर्गीकरण और अध्ययन



सम्पूर्ण विवरण तैयार हो जाता है जिसकी सहायता से सही निरूपण होता है। इस प्रकार पुरातत्व एक विज्ञान है, जिसके कई रूप है। अपनी विशेष आवश्यकताओ के कारण इधर कुछ समय से यह अत्यन्त तकनीकी विज्ञान बन गया है जिसमे सदैव इस बात का प्रयत्न रहता है कि व्याख्या करने मे अधिक से अधिक यथार्थता प्राप्त की जाय। अब इतिहासकार शताब्दियो से मानव की प्रगति की कहानी लिखने मे पुरातत्व की सहायता ले रहा है। इस तरह पुरातत्व ज्ञान की मान्यताप्राप्त विशिष्ट शाखा बन गई ह जिसकी अनेक प्रविधिया है। यह तथ्यो का अपार भडार है तथा मानव के आरम्भिक इतिहास के निरूपण की नई प्रणाली है। अत पुरातत्ववेत्ता प्राचीन पदार्थों का सग्राहक मात्र नही है, प्रत्युत वैज्ञानिक दृष्टिकोण वाला ऐसा व्यक्ति है जो अपने कार्य के लिए विश्वविद्यालयो के अन्दर और उनके बाहर विशेष रूप से प्रशिक्षित व्यक्ति है। वह ज्यो-ज्यो आगे बढता जाता है, त्यो-त्यो अनेक नये तरीके अपनाता है और नई उपलब्धिया प्राप्त करता है।

भारत में पुरातत्व का सिंहावलोकन

पिछले सौ वर्षों मे पुरातत्व-प्रशिक्षण की जो प्रगति हमारे देश मे हुई है उसका हम यहा सक्षेप मे पुनरवलोकन मात्र कर सकते है। भारतीय पुरातत्व के इतिहास मे सन् 1861 का वर्ष अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योकि इसी वर्ष मे भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग (आर्क्योलौजिकल सर्वे आफ इडिया) की स्थापना हुई थी, जो उस समय से लेकर आज तक देश मे पुरातत्व सम्बन्धी कार्यो का आधार स्तम्भ रहा है। इसका श्रीगणेश छोटे पैमाने पर हुआ था। इसे अनेक कठिनाइयो का सामना करना पडा और कुछ बुरे दिन भी देखने पडे। परन्तु आज ससार मे यह पुरातत्व का सबसे बडा सरकारी सगठन बन गया है और इसमे पुरातत्व की प्रत्येक शाखा के प्रशिक्षित कुशल विशेषज्ञ विद्यमान है। किन्तु अपने निर्माण के प्रारम्भिक काल मे जब सर्वेक्षण के उद्देश्य और उसके तरीके अस्पष्ट थे उस समय प्रशिक्षण के महत्व की ओर ध्यान देना सम्भव नही था। प्रथम पुरातत्व सर्वेक्षक श्री अलक्जेडर कनिघम (सन् 1861) अन्वेषण के क्षेत्र मे अग्रणी थे ही साथ ही साथ इस दिशा मे उनकी अव्यवसायी रुचि विलक्षण थी।

1885 मे कनिघम के स्थान पर बर्गेस पुरातत्व सर्वेक्षक नियुक्त हुए। उन्होने कला और शिल्प के अध्ययन पर बहुत बल दिया। उनके विचार मे "पुरातत्व केवल कला का इतिहास था" और उनके अधिकाश कार्यक्रम इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए थे। इसका प्रमाण उनके महत्वपूर्ण और सावधानी से किये गये शिल्पिक सर्वेक्षण कार्यों मे मिलता है। उन्हे खुदाई के काम मे सक्रिय अभिरुचि लेने के लिए समय नही मिलता था। किन्तु अपने समय के वैज्ञानिक तरीको से परिचित न होते हुए भी वे इतनी प्रखर प्रतिभा वाले थे कि उन्होंने खुदाई के व्यावसायिक नियत्रण के लिए आग्रह किया और सर्वेक्षण विभाग के सिवाय किसी और के द्वारा खुदाई को अवैध घोषित कराने के लिए सरकारी साधन अपनाने पर बल दिया। बर्गेस ने शिलालेखो की खोज और उनके अनुवाद कार्य मे भारतीय विद्वानो का सहयोग प्राप्त करने पर और उन्हे शिलालेख सम्बन्धी अनुसधान मे प्रशिक्षित करने पर विशेष बल दिया। उन्होने सर्वेक्षण विभाग के अभिलेख अनुसधान अनुभाग की सुदृढ नीव रख दी।

सन् 1902 मे महानिदेशक के रूप मे जान मार्शल की नियुक्ति स्वय इस महत्व को मान्यता प्रदान करने वाली घटना थी कि सर्वेक्षण विभाग को सगठित करने और उसे मार्ग प्रदर्शित करने के लिए 'इंजीनियरी कौशल के साथ पुरातत्व का ज्ञान रखने वाले प्रशिक्षित अन्वेषक' की आवश्यकता है। उनके अधीन पुरातत्व कार्यों मे अत्यधिक वृद्धि हुई विशेषकर खुदाई और परिरक्षण कार्य मे। भारतीय परिस्थितियो मे स्मारको के परिरक्षण की समस्याओ के सम्बन्ध मे उनकी बडी पैनी दृष्टि थी और उन्होने अपने तरीको को निर्धारित किया है। उनके अधीन सर्वेक्षण विभाग ने छात्रवृत्तियो को बनाये रखा जिसे पाने वाले व्यक्ति आगे चलकर प्रतिष्ठित पुरातत्ववेत्ता हुए। किन्तु जैसे-जैसे समय व्यतीत होता गया खुदाई के उनके तरीके अन्तर्राष्ट्रीय मानदड से बहुत पीछे पड गये। पुरातत्व विषयक प्रशिक्षण तब तक प्रारम्भिक दशा मे ही था।

उनकी सेवा निवृत्ति के पश्चात् सर्वेक्षण विभाग के दिन अच्छे नही रहे जिससे 1927 मे सरकार ने एक विदेशी विशेषज्ञ सर लेनार्ड बूले को भविष्य मे की जाने वाली खुदाइयो और तत्सम्बन्धी मामलो पर प्रतिवेदन देने के लिए आमत्रित करने का निश्चय किया। सर लेनार्ड बूले ने अपने प्रतिवेदन मे यह विचार प्रकट किया कि उन्हे "इस बात के साक्ष्य मिले है कि काम शौकिया ढग पर ऐसे लोगो द्वारा किया जा रहा है जो अच्छे ढग से काम करने के लिए आतुर तो है किन्तु वे पर्याप्त रूप मे प्रशिक्षित और अनुभवी नही है।" उन्होने यह अनुभव किया कि खुदाई के काम मे भाग लेने के लिए विदेशी और भारतीय सस्थाओ को अधिकाधिक प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।

1944 मे डाक्टर आर० ई० मार्टीमेर ह्वीलर सामरिक सेवा से वापस बुलाये गये और सभी प्रकार से सुधार करने के लिए उन्हे महानिदेशक (डाइरेक्टर जनरल) नियुक्त किया गया। इससे भारत मे पुरातत्व विषयक प्रशिक्षण को बहुत प्रोत्साहन मिला। प्रारम्भ से ही ह्वीलर ने व्यावहारिक प्रशिक्षण पर बहुत बल दिया। उन्होने यह महसूस किया कि विश्वविद्यालय के स्नातको को इतिहास और भाषा का जो केवल सैद्धातिक ज्ञान प्राप्त होता है उनसे वे व्यावहारिक पुरातत्ववेत्ता नही बन सकेंगे। उन्होने कहा कि फारसी का ज्ञान आज ताजमहल को गिरने से नही रोक सकता, सस्कृत का ज्ञान तजोर के महान् मंदिर मे चोल चित्रो को पूर्वावस्था मे नही ला सकता। उनके अधीन सर्वेक्षण विभाग ने उत्तर में तक्षशिला मे और दक्षिण मे अरिकामेडु में पुरातत्व तकनीक मे प्रशिक्षण-विद्यालयो को सगठित किया और इसके अतिरिक्त ऐसे अन्य स्थानो मे भी, जहा कि उन्होने खुदाई की,

छोटे-छोटे विद्यालय स्थापित किये। इसका बहुत अच्छा स्वागत हुआ और भारतीय विश्वविद्यालयों, संग्रहालयों, और अन्य संगठनों के विद्यार्थी और उनसे सम्बद्ध व्यक्ति बहुत अधिक संख्या में भर्ती हुए। सर्वेक्षण विभाग ने तब से इस प्रणाली को कायम रखा है भले ही वह सीमित पैमाने पर है।

ह्वीलर ने संरक्षण-रिफ्रेशर्स कोर्स भी शुरू किया। इससे विभागीय प्रशिक्षण पाठ्यक्रम की मांग और उपयोगिता बहुत अच्छी तरह प्रकट हो गयी। किन्तु उसने और केन्द्रीय पुरातत्व परामर्श बोर्ड के, जो कि 1945 में स्थापित हुआ था, सदस्यों ने भी यह महसूस किया कि तदर्थ प्रशिक्षण को स्थायी आधार पर संगठित करने और सर्वेक्षण विभाग के सावधानी से चुने गये कर्मचारियों द्वारा प्रशासित करने का अब समय आ गया है। उसने यह सुझाव दिया कि प्रशिक्षार्थियों के निचले वर्गों के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाय —

(क) युवक पदाधिकारी और अधीनस्थ प्राविधिक कर्मचारी गण

(ख) सर्वेक्षण विभाग के वरिष्ठ पदाधिकारी (रिफ्रेशर्स कोर्स),

(ग) विश्वविद्यालयों से चुने गये स्नातक, जो पुरातत्व को अपना व्यवसाय बनाना चाहते हैं या जो इतिहास पढ़ाने और अनुसंधान के अपने कार्य को, पुरातत्व विषयक तरीकों और सामग्री का स्वयं ज्ञान प्राप्त करके, बढ़ाना चाहते हैं।

पुरातत्व महानिदेशक के प्रतिवेदन में जो बात पैदा हुई थी उसके बारे में स्थायी समिति ने 1947 में केन्द्रीय पुरातत्व परामर्श बोर्ड से यह सिफारिश की कि बोर्ड भारत के पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग में स्थायी प्रशिक्षण शाखा की तत्काल स्थापना की आवश्यकता के सम्बन्ध में सरकार से लिखा पढ़ी करे। केन्द्रीय परामर्श बोर्ड के सदस्यों ने समय समय पर इस बात की मांग की है कि सर्वेक्षण विभाग का अलग प्रशिक्षण विद्यालय होना चाहिए, क्योंकि 'पुरातत्व की दृष्टि से विश्वविद्यालय अधूरे हैं।' सन् 1947 में ह्वीलर ने स्वयं लिखा था कि "इस समय विश्वविद्यालयों में पर्याप्त पैमाने पर पुरातत्व के क्रमबद्ध प्रशिक्षण की व्यवस्था नहीं है इसलिए इस अत्यावश्यक कार्य का भार सर्वेक्षण विभाग पर स्वतः पड़ जाता है।" यह सर्वेक्षण विभाग के लिए एक नया प्रयत्न था कि वह पुरातत्व के अध्ययन में प्रभावशाली अभिरुचि का प्रोत्साहन दे और उसका विकास करे।

यह अनुभव किया गया कि सर्वेक्षण विभाग ने अपनी शाखाओं, सर्किलों और शिल्पिक कर्मचारियों के रूप में अपना जो बृहत् कार्य-क्षेत्र बना लिया है उसे देखते हुए यही विभाग प्रशिक्षण प्रदान करने में महत्वपूर्ण योग देने के लिए सबसे अधिक उपयुक्त है। ह्वीलर ने घोषणा की थी कि "यदि भारतीय विश्वविद्यालयों में पुरातत्व का साधारण प्रशिक्षण प्रदान करने की पर्याप्त व्यवस्था हो भी जायेगी, तब भी इस विभाग के लिए शिल्पिक और प्रयोगात्मक पुरातत्व के प्रशिक्षण के अधिकांश कार्यक्रम को स्वयं पूरा करना पड़ेगा।"

ह्वीलर ने यह भी विचार रखा था कि विकासशील राजनीतिक वातावरण में समय की सामान्य भावना के अनुकूल ही यह तय हो जायेगा कि पुरातत्व सम्बन्धी प्रशासन का भार किसके जिम्मे रहे। किन्तु उसने इस बात पर बल दिया था कि प्राविधिक प्रशिक्षण और प्राविधिक मानदंडों को अन्ततः बनाये रखना केन्द्रीय सरकार की ही जिम्मेदारी होगी।

पुरातत्व विद्यालय

इस दृष्टि से सन 1959 में भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग के तत्वावधान में पुरातत्व विद्यालय का उद्घाटन एक बहुत बड़ी आवश्यकता की पूर्ति करता है। इसका उद्देश्य यह है कि पुरातत्व की पूर्ण जानकारी रखने वाले कर्मचारी तैयार हों।

विद्यालय के अध्ययनक्रम की मुख्य विशेषता है—खुदाई और स्मारकों के परिरक्षण में बहुत ऊंचे दर्जे का व्यावहारिक प्रशिक्षण प्रदान करना। इसके साथ स्मारकों और प्राचीन पदार्थों, का सर्वेक्षण, रेखांकन, फोटोग्राफ, रासायनिक परिरक्षण और संग्रहालय पद्धतियों का व्यावहारिक प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। कला, वास्तुशिल्प, प्राचीन शिला लेखों का अध्ययन, मुद्राशास्त्र जैसे परम्परागत विषयों की सैद्धान्तिक शिक्षा के अतिरिक्त प्रागितिहासिक और आदि-ऐतिहासिक और प्रारम्भिक इतिहास सम्बन्धी पुरातत्व की शिक्षा पर भी बहुत बल दिया जाता है। इसके अन्तर्गत प्रकाशन की शिक्षा भी, जिसमें ब्लाक बनाना और मुद्रण और प्राचीन विधियां भी हैं, दी जाती है जो व्यवसायी पुरातत्ववेत्ता के लिए निःसन्देह बहुत महत्वपूर्ण है। प्रसिद्ध स्मारकों, स्थानों और संग्रहालयों का निरीक्षण कराकर इस अध्ययनक्रम को पूर्ण शिक्षाप्रद बनाया जाता है।

प्रत्येक अध्ययन क्रम की अवधि प्रारम्भ में पन्द्रह महीने थी, किन्तु अब उसे बढ़ा कर बीस महीने कर दिया गया है अर्थात् एक वर्ष के अक्तूबर से तीसरे वर्ष की मई तक। अध्ययनक्रम की समाप्ति पर एक परीक्षा होती है जिसमें लिखित प्रश्नपत्र, व्यावहारिक परख, लेख और मौखिक परीक्षा होती है। सफल उम्मीदवारों को भारत सरकार डिप्लोमा प्रदान करती है।

विद्यालय में उसका अपना भरापूरा पुस्तकालय है। विद्यार्थीगण इस पुस्तकालय के अतिरिक्त विशाल केन्द्रीय पुरातत्व पुस्तकालय से भी पूरा पूरा लाभ उठा सकते हैं। विद्यालय से सलग्न एक केन्द्रीय संग्रहालय है जो सफदरजंग, नई दिल्ली में स्थित है और जिसकी मुख्य विशेषता यह है कि उसमें ऐसी मिट्टी के भांडों तथा अन्य प्राचीन सामग्री का बृहत् संग्रह है जो देश के महत्वपूर्ण अन्वेषण और खुदाई वाले स्थानों से प्राप्त हुए हैं। प्रागितिहासिक काल और आदि-ऐतिहासिक काल और पश्चाद्वर्ती काल की संस्कृतियों की

प्राचीन वस्तुओं का संग्रह इस दृष्टि से अद्वितीय है कि इनमें भारत के सभी भागों से देश का प्रतिनिधित्व करने वाले स्थानों की मिली जुली सामग्री का पूर्ण संग्रह देखने को मिल जाता है। इसके अतिरिक्त यहां पर ऐसे अनेक चार्ट और फोटो प्रदर्शित हैं जिनमें कला, वास्तुकला और प्राचीन शिलालेख सम्बन्धी विषयों का दिग्दर्शन कराया गया है।

यह विद्यालय एक निदेशक के अधीन है जो सर्वेक्षण विभाग का एक वरिष्ठ पदाधिकारी है। सर्वेक्षण विभाग के अन्य वरिष्ठ पदाधिकारी और लब्धप्रतिष्ठ बाहरी व्यक्ति भी अपने-अपने विशिष्ट विषयों पर व्याख्यान देते हैं।

विद्यालय के प्रत्येक अध्ययनक्रम के लिए प्रवेश दस उम्मीदवारों तक ही सीमित है। ये उम्मीदवार मान्यताप्राप्त विश्वविद्यालय से निम्नलिखित विषयों में से किसी एक में एम० ए० या इसके बराबर की आनर्स डिग्री प्राप्त करने वाले होते हैं भारतीय इतिहास, संस्कृत, पाली, प्राकृत, फारसी, अरबी, और पुरातत्व। जो उम्मीदवार पुरातत्व विभाग की सेवा में पहले से ही हैं उनके लिए इन योग्यताओं में ढील दी जाती है। जो विद्यार्थी कहीं से वेतन नहीं पाते उन्हें ढेढ सौ रु० मासिक छात्रवृत्ति दी जाती है। जब विद्यार्थी अपने प्रशिक्षण के अध्ययनक्रम में दिल्ली से बाहर जाते हैं तब उन्हें रेल और बस का यात्रा भाड़ा दिया जाता है।

यह संतोष की बात है कि इस विद्यालय को भारत के बाहरी देशों में भी मान्यता मिली है। बर्मा और नेपाल के विद्यार्थी इस विद्यालय में भर्ती हुए हैं।

विश्वविद्यालयों का सहयोग

अनेक विश्वविद्यालय कई दशाब्दियों से विद्यार्थियों को पुरातत्व के शास्त्रीय और परम्परागत विषयों में जैसे उत्कीर्ण लेख, मुद्राशास्त्र, कला और वास्तुशिल्प इत्यादि में, जो प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति के स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम के अंग हैं, प्रशिक्षित करके महत्वपूर्ण कार्य करते रहे हैं। कुछ विश्वविद्यालयों ने पिछले दस वर्षों में पुरातत्व के अधिक तकनीकी विषयों का अपने पाठ्यक्रम में सम्मिलित कर लिया है और इस ओर अग्रसर होने में थोड़े से विश्वविद्यालयों को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से प्रोत्साहन मिला है। इस दिशा में इलाहाबाद, बड़ौदा, कलकत्ता, लखनऊ, मद्रास, पूना और सागर विश्वविद्यालयों ने मूल्यवान् कार्य किया है। किन्तु यह बात सच है कि अभी तक हम विभिन्न विश्वविद्यालयों में पुरातत्व और क्षेत्र-प्रशिक्षण के अध्ययन-क्रम में एकरूपता नहीं ला सके हैं। कुछ विश्वविद्यालयों को छोड़कर बहुत से विश्वविद्यालयों में पुरातत्व का प्रशिक्षण दोनों स्थानों में—कक्षाओं में और अन्यत्र क्षेत्रों में—प्रदान करने के लिए प्रशिक्षित कर्मचारियों और साज-सामान का अत्यन्त अभाव है। इसके होते हुए भी भावी पुरातत्ववेत्ता के लिए यह आवश्यक है कि वह आगे चलकर अन्य साधनों से भले ही व्यवसायिक प्रशिक्षण प्राप्त कर ले, लेकिन विश्वविद्यालय में अध्ययन काल में आधार स्वरूप प्रशिक्षण प्राप्त कर लेना चाहिए और इसके लिए यह आवश्यक है कि ये सुविधाएं हर जगह उन्मुक्त रूप से इस बात को ध्यान में रखते हुए मिलनी चाहिए कि किन्हीं भी परिस्थितियों में शिक्षा का मानदंड निम्न-स्तर का न होने पाए।

क्षेत्रीय भाषाओं को जो प्रोत्साहन इस समय मिल रहा है और जो नये-नये विश्वविद्यालय स्थापित हो रहे हैं, उनसे यह समस्या प्रमुख रूप से सामने आ रही है कि शिक्षा प्रदान करने और खुदाई के कार्य के लिए पर्याप्त संख्या में योग्य और प्रशिक्षित कर्मचारी मिलें। देश के विभिन्न भागों में पुरातत्व के क्षेत्र में उन्मुक्त विचारविमर्श और विचारों के आदान प्रदान की व्यवस्था करने के उद्देश्य के लिए यह आवश्यक है कि विश्वविद्यालय से निकलने के पश्चात् नियत स्थानों में कुछ अवधि तक प्रशिक्षण का कार्यक्रम चलाया जाय।

पुरातत्व का भविष्य

यह निस्संदेह संतोष की बात है कि भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग ने, जो देश में अपने ढंग का एकमात्र संस्थान है, अपना विकास यहां तक कर लिया है कि अब वह पुरातत्व सम्बन्धी कार्य करने वाले सभी संगठनों जैसे राज्य सरकारों, विश्वविद्यालयों और विद्वत् परिषदों या संस्थाओं को भ्रातृत्व-सहयोग प्रदान कर सकता है।

सर्वेक्षण विभाग का जिस प्रकार यह उद्देश्य नहीं है कि वह दूसरों के मार्ग में बाधाएं डालकर खुदाई के मामलों पर अपना एक छत्र प्रभुत्व बनाये रखे, उसी प्रकार वह यह भी नहीं चाहता कि प्रशिक्षण का कार्य दुहरा हो जाये। दोनों अवस्थाओं में उच्चतम 'मानदंड' को बनाये रखना है। यह ध्यान देने योग्य बात है कि पुरातत्व का केन्द्रीय परामर्श बोर्ड ऐसा स्थान है जहां भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग, विश्वविद्यालय और राज्यों के प्रतिनिधि, सहकारिता और विचारों के आदान-प्रदान के लिए एकत्र होते हैं। इसी तरह से पुरातत्व विद्यालय विश्वविद्यालयों द्वारा प्रदान किये जाने वाले प्रशिक्षण को अनुपूरित करने के लिए, न कि उसका स्थान ग्रहण करने के लिए, यथाशक्ति प्रयत्न कर रहा है।

सर्वेक्षण विभाग के कार्यकलाप को (जिसमें यह विद्यालय उसका अविभाज्य अंग है) ह्वीलर के इन शब्दों में संक्षिप्तरूपेण अभिव्यक्त किया जा सकता है "यह विभाग भारत और संसार के लिए उच्चतम शैक्षणिक महत्व का शक्तिमान साधन है, यह ऐसा विभाग है जिसकी प्रभावकारिता पर सांस्कृतिक अभिरुचि के संरक्षक के रूप में भारत की प्रतिष्ठा बहुत कुछ निर्भर है।"

(रूपान्तर विश्वेश्वर नारायण)



भारत की प्राचीन वस्तु सम्बन्धी विधि

अमलानन्द घोष

भारत एक ऐसा देश है जिसमें प्राचीन स्मारकों, स्थानों तथा अन्य प्राचीन वस्तुओं के बारे में पिछली शताब्दी में ही कानून बनाया जा चुका था जब कि बहुत से दूसरे देशों में इस प्रकार का कोई कानून नहीं था।

भारतीय निखात निधि अधिनियम, 1878 में बनाया गया है कि जब किसी व्यक्ति को कोई कोष (अर्थात् धरती या उससे सम्बद्ध किसी वस्तु में छिपा हुआ) या दस रुपये से अधिक मूल्य की कोई वस्तु मिलती है तो उसे चाहिए कि वह इसके बारे में जिले के कलेक्टर को बताए और या तो उसको निकटवर्ती सरकारी खजाने में जमा करा दे अथवा कलेक्टर को उसके लिए उपयुक्त जमानत दे। यदि कलेक्टर यह समझे कि यह कोष ऐसा है जिसका पता लगने से सौ वर्ष पहले उसे भूमि में गाड़ा गया था, तो वह उस कोष को स्वामिहीन घोषित कर सकता है और कोष को यह उसके मूल्य की राशि को उस स्थान के स्वामी और उस कोष को पाने वाले के बीच पच्चीस और पचहत्तर प्रतिशत के अनुपात में बाट सकता है, यदि दोनों पक्षों के बीच इसके विपरीत कोई समझौता न हो चुका हो। यदि उस स्थान का स्वामी आकर उस कोष की माग नहीं करता, तो सारे का सारा कोष पाने वाले को ही दिया जा सकता है। कलेक्टर भी यदि चाहे तो कोष को बाटने के बजाय उसे सरकार की ओर से ले लेने का निर्णय कर

सकता है और कोष के पाने वाले एव भूमि के स्वामी को उस कोष के मूल्य के अतिरिक्त उसके पांचवें भाग तक का और भुगतान कर सकता है। यदि कोई व्यक्ति पाये गये कोष की रिपोर्ट कलेक्टर को नही करता या उस कोष को सरकारी खजाने मे जमा नही करता अथवा उसको इस प्रकार बदल देता है कि जिससे वह पंहचाना न जा सके तो वह न केवल उस कोष मे से अपना हिस्सा पाने का ही हक खो बैठेगा, बल्कि वह एक साल की कैद या जुर्माना अथवा दोनो प्रकार के दड का भागी होगा। इस प्रकार हम देखते है कि इस अधिनियम के उपबन्ध बिल्कुल आधुनिक है, क्योकि उनमे अनिवार्य घोषणा' और क्षतिपूर्ति करके माल को लेने की व्यवस्था की गयी है।

इस अधिनियम को लागू करने से सरकार प्राचीन कलाकृतियो और इकट्ठे किए गए सिक्को आदि को प्राप्त करने मे सफल हो सकी है, जिससे सग्रहालयो को समृद्ध होने का अवसर मिला है। यहा इस बात को ध्यान मे रखा जाना चाहिए कि यदि कलेक्टर को किसी कोष के पाए जाने की सूचना दे दी जाती है और यदि सरकार उस कोष को लेने का निर्णय कर लेती है, तो उस कोष के पाने वाले और उसके स्वामी को जितने मूल्य का वह कोष है उसके वास्तविक मूल्य के अलावा इसके पाचवे भाग अधिक मूल्य का भी भुगतान किया जायगा। तो भी यह अस्वीकार नही किया जा सकता कि इस उपबन्ध के होते हुए भी कुछ नासमझ लोग बहुधा पायी गयी वस्तुओ को छिपा लेते है और धातु की बनी वस्तुओ को पिघला डालते है।

1904 के प्राचीन स्मारक परिरक्षण अधिनियम पर जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है, यहा विस्तार मे ध्यान देने की आवश्यकता नही है, क्योकि उसका स्थान अब बहुत कुछ प्राचीन तथा ऐतिहासिक स्मारक और पुरातत्व सम्बन्धी स्थान तथा अवशेष (राष्ट्रीय महत्व की घोषणा) अधिनियम ने ले लिया है। तो भी यह कहा जा सकता है कि पहले वाले अधिनियम के उपबन्ध जो शासन व्यवस्था के बदल जाने से बहुत कुछ पुराने पड चुके है, स्मारको के सरक्षण और खुदाई को नियमित रूप से चलाने एव उससे सम्बन्धित दूसरे मामलो मे पचपन वर्षों तक सरकार के लिए सहायक सिद्ध हुए है।

1947 के प्राचीन वस्तु (निर्यात नियत्रण) अधिनियम मे सरकार से लाइसेस प्राप्त किए बिना सौ वर्ष से अधिक पुरानी किसी भी वस्तु को भारत से बाहर भेजने या बाहर भेजने का प्रयत्न करने के लिए दण्ड की व्यवस्था की गयी है।

15 अक्तूबर, 1959 से प्राचीन तथा ऐतिहासिक स्मारक और पुरातत्व सम्बन्धी स्थान तथा अवशेष (राष्ट्रीय महत्व की घोषणा) अधिनियम लागू हो गया है। यह अधिनियम ससद् ने इससे पिछले वर्ष पास किया था। इस अधिनियम की धाराओ को न केवल इसलिए अनुकूलित किया गया है कि आजकल की आवश्यकताए पूरी की जा सके, अपितु उसमे कुछ अन्य विशिष्ट उपबन्ध भी रखे गय है।

यह अधिनियम उन सभी स्मारको और स्थानो पर भी लाग होता है, जिन्हे 1951 मे राष्ट्रीय महत्व का घोषित किया जा चुका है अर्थात् वे स्मारक जिनका परिरक्षण प्राचीन स्मारक परिरक्षण अधिनियम के अन्तर्गत पहले से ही किया जा रहा है तथा जिनमे भूतपूर्व राज्यो के कुछ महत्वपूर्ण स्मारक भी शामिल हैं। इनके अलावा सरकार इस सूची मे कुछ और भी स्मारक और स्थान शामिल कर सकती हैं। इस प्रकार के सभी स्मारक और स्थान परिरक्षित समझे जाते है।

यदि कोई परिरक्षित स्मारक किसी व्यक्ति विशेष का हो, तो केन्द्रीय सरकार उसके स्वामी से स्मारक की देख-रेख तथा दूसरे मामलो के बारे मे करार करा सकती है। यदि स्वामी करार करना अस्वीकार कर देता है या करार करने मे असफल रहता है तो सरकार उसी स्मारक की देख-रेख करने के लिए कुछ अधिकार अपने हाथो मे ले सकती है और उस स्मारक पर स्वामी के अधिकारो पर कुछ प्रतिबन्ध लगा सकती है।

यदि पुरातत्व महानिदेशक को यह विश्वास हो जाता है कि किसी स्मारक का स्वामी कोई ऐसा काम करना चाहता है, जिससे स्मारक की सुरक्षा को खतरा पैदा हो सकता है या स्मारक के ऊपर अथवा उस के निकट कुछ इमारत बनवाना चाहता है तो वह उस व्यक्ति को वैसा करने मे मना करने का आदेश दे सकता है।

यदि किसी स्मारक को धार्मिक उपासना के स्थान के रूप मे इस्तेमाल मे लाया जा रहा है तो परिरक्षण के पश्चात् भी उसका वही रूप बना रहेगा।

किसी भी व्यक्ति को किसी परिरक्षित स्थान पर कोई खान आदि खोदने की अनुमति नही है किन्तु वहा पर सामान्य रूप से कृषि की जा सकती है। सरकार की अनुमति प्राप्त किये बिना किसी परिरक्षित स्थान मे कोई इमारत नही बनवायी जा सकती। यदि कोई इमारत बनवायी भी जाती है, तो उसे गिरवाया जा सकता है, जिसका खर्च बनवाने वाले को देना पडेगा।

पुरातत्व महानिदेशक से लाइसेस प्राप्त किए बिना किसी परिरक्षित क्षेत्र मे खुदाई का काम भारत के पुरातत्वीय सर्वेक्षण के अधिकारी के अतिरिक्त और कोई भी व्यक्ति नही कर सकता है। पुरातत्वीय सर्वेक्षण का अधिकारी किसी अपरिरक्षित स्थान की भी खुदाई करवा सकता है।

यदि किसी स्थान का स्वामी कोई व्यक्ति विशेष हो, चाहे वह स्थान परिरक्षित हो या न हो तो भी सरकार उस स्थान के स्वामी से खुदाई मे प्राप्त वस्तुओ को खरीद सकती है।

केन्द्रीय सरकार की अनुमति प्रात किए बिना कोई भी राज्य सरकार न तो कही की खुदाई ही करवा सकती है और न खुदाई के लिए किसी को प्रोत्साहित ही कर सकती है।

यदि केन्द्रीय सरकार यह महसूस करती है कि प्राचीन वस्तुए ऐसी है जिनके टूट-फूट जाने या उठा लिए जाने अथवा खराब हो जाने की सम्भावना है अथवा उन्हे किसी सार्वजनिक स्थान मे रखने की आवश्यकता है तो वह ऐसी वस्तुओ को खरीद सकती है।

केन्द्रीय सरकार यह निदेश भी दे सकती है कि प्राचीन वस्तुए जहा पर रखी हुई हैं उन्हें उससे अनुमति लिए बिना उस स्थान से न हटाया जाए ।

इस अधिनियम के अधीन किए गए अपराधो के लिए तीन मास तक का कारावास या पाच सौ रुपये का जुर्माना अथवा दोनो ही दण्ड एक साथ दिए जा सकते है ।

सरकार द्वारा इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमो का भी, जो कि साथ ही अर्थात् 15 अक्तूबर, 1959 से लागू हो चुके है, समान महत्व है जिनका यहां सक्षेप मे उल्लेख किया जाता है ।

थोडे से स्मारको को छोडकर जिनमे बीस नए पैसे शुल्क लगता है शेष स्मारको मे बिना कोई शुल्क दिए प्रवेश किया जा सकता है । पन्द्रह वर्ष से कम आयु के बालको से कुछ भी शुल्क नही लगता ।

केवल मान्यता-प्राप्त धार्मिक बैठको को छोडकर इन स्मारको मे कोई भी मीटिंग, सम्मेलन अथवा पार्टी आदि करने की अनुमति नही है । स्मारको मे लाइसेंस प्राप्त किए बिना किसी वस्तु का विज्ञापन, बिक्री या उनके बारे मे प्रचार अथवा गाइड का कार्य करना मना है ।

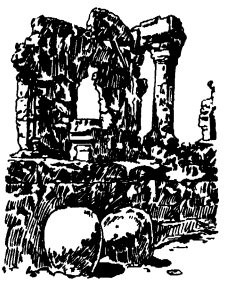
सामान्यत स्मारको के नक्शे बनाने और फोटो लेने की इजाजत है, किन्तु कैमरा स्टैंडो या दूसरी ऐसी वस्तुओ के इस्तेमाल करने की अनुमति नही है जिससे दूसरे दर्शको को कोई असुविधा होने की सम्भावना हो । स्मारको की सिनेमा फिल्मे तैयार करने के लिए लाइसेंस लेना जरूरी है ।

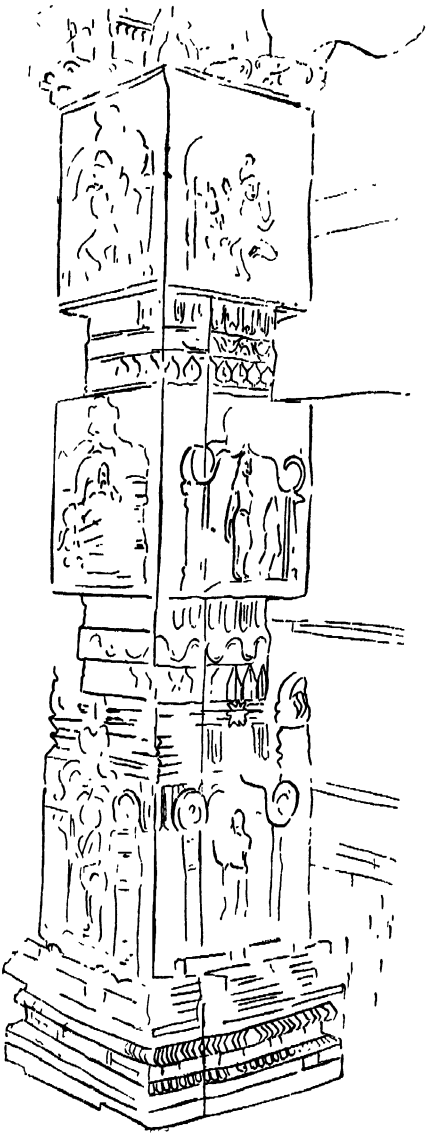
यदि सरकार यह महसूस करती है कि किसी परिरक्षित स्मारक के पास खुदाई का काम करने या इमारते बनवाने पर रोक लगनी चाहिए या उनका विनियमन किया जाना चाहिए, तो वह उन स्मारको के आस-पास के कुछ क्षेत्रो को निषिद्ध अथवा विनियमित क्षेत्र घोषित कर सकती है । किसी निषिद्ध क्षेत्र मे खान खोदने या निर्माण कार्य करने की अनुमति नही होती । किसी विनियमित क्षेत्र मे ऐसा करने के लिए लाइसेंस की आवश्यकता होती है । सरकार अनधिकृत रूप से बनायी गयी इमारतो को गिरवा भी सकती है । ये उपबन्ध इसलिए रखे गए है, जिससे स्मारको की सुरक्षा होती रहे और उनकी सुन्दरता नष्ट न होने पाए, किन्तु ऐसा करने से यदि किसी व्यक्ति की कोई हानि होती है, तो उसके लिए उपयुक्त क्षतिपूर्ति दी जाएगी ।

इन उपबन्धो का उल्लघन करने पर नियमो मे अर्थ दण्ड की भी व्यवस्था की गयी है ।

(लेखक की "इण्डियन आर्कियोलाजी" पुस्तक के "लाज रिलेटिंग टु मानूमेंट्स एण्ड अदर आब्जेक्ट्स" नामक अध्याय से अनुकूलित)

(रूपान्तर सुरेश मिश्र)





पुरातत्वीय महत्व के स्थलों पर संग्रहालय

केदारनाथ पुरी

पिछली शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे भारत का पुरातत्व सर्वेक्षण बहुत अव्यवस्थित दशा मे था। जब दशा में सुधार हुआ और पुरातत्व सर्वेक्षण अपने पैरो पर खड़ा हुआ था उसकी योजनाए और नीतिया बनायी जाने लगी तो उन हटायी जाने योग्य प्राचीन वस्तुओ के भविष्य के विषय मे गभीरतापूर्वक विचार किया गया, जो ऐसे महत्वपूर्ण स्थानों से प्राप्त हुई थी जहा बडे पैमाने पर योजनानुसार खुदाइया की गयी थी। उस समय यह तय हुआ था कि ऐसी छोटी और हटायी जाने योग्य वस्तुओ को जिन्हे उनकी मूल स्थिति मे सुरक्षित रखना सभव नही था, उन भग्नावशेषो के निकट ही रखा जाए जहा से वे प्राप्त हुई थी। ऐसा इसलिए सोचा गया था ताकि ऐसी प्राचीन वस्तुओ का अध्ययन उनके प्राकृतिक वातावरण में और मूलत उनके संग-साथ वाली चीजो के साहचर्य मे किया जा सके और वे दूसरे स्थान पर हटाए जाने से अपना महत्व न खो बैठें। किसी भी बड़े स्थल पर अनेक वर्षों तक चलने वाली खुदाई के परिणामस्वरूप छोटी-छोटी प्राचीन वस्तुए इतनी अधिक मात्रा में प्राप्त होती है कि उन्हे किसी एक सग्रहालय मे, चाहे वह कितना ही बडा हो, प्रदर्शन के लिए रखना सभव नही होता। देश भर के विभिन्न सग्रहालयो मे ऐसी प्राचीन वस्तुओं के प्रतिनिधि सैट भेज देने के बाद भी आमतौर पर उनका सग्रह इतना विशाल रह जाता है कि उनको रखने के लिए विशेष प्रबन्ध आवश्यक होते है। इस प्रकार किसी भी महत्वपूर्ण खुदाई स्थल पर वस्तुओ के तात्कालिक परिरक्षण के लिए क्षेत्र-प्रयोगशाला (फील्ड लेबोरेटरी) और उनको रखने के लिए संग्रह-स्थान आवश्यक हो जाते है। अत· स्थल का महत्व और उसकी पुरातत्वीय सभाव्यता निश्चित

होते ही वहा पर उन ग्राम लोगो, विद्वानो और विद्यार्थियो की शिक्षा और उनके मनोरजन के लिए जो खुदाई के दौरान और उसके समाप्त हो जाने के बाद भी (जबकि भग्नावशेषो को आने वाली पीढियो के लिए परिरक्षित किया जाता है) उन स्थानो को देखने के लिए भारी सख्या मे आते है, योजनानुसार एक सग्रहालय की इमारत बनवाना उचित होगा ।

इस नीति के अनुसार भारत का सर्वप्रथम खुदाई स्थलीय सग्रहालय भारत के पुरातत्व सर्वेक्षण द्वारा बनारस के निकट सारनाथ मे सन् 1904 मे स्थापित किया गया था । सारनाथ मे बाकायदा खुदाई का काम सन् 1904 मे आरम्भ हो कर सन् 1928 तक चलता रहा । अन्य महत्वपूर्ण स्थानो पर भी खुदाई आरम्भ होने के साथ-साथ वहा सग्रहालय बनाये गये । ऐसे स्थानो मे हडप्पा, मोहेनजोदडो, तक्षशिला (ये तीनो स्थान अब पाकिस्तान मे है), नालन्दा, नागार्जुनकोडा, अमरावती, वैशाली, कोडापुर और साची के नाम उल्लेखनीय है । प्राचीन नगरो वाले स्थलो पर स्मारको की सफाई और उनके आस-पास के क्षेत्रो मे खोज के दौरान मे बहुत अधिक सख्या मे मूर्तिया और वास्तुकला के नमूने एकत्र हो गए थे । ये सभी चीजे अनेक वर्षो तक मूर्तियो आदि को रखने के लिए बनाए गए शेडो मे पडी रही । उन्हे अब सग्रहालय भवनो मे प्रदर्शन के लिए रखा जा रहा है । ऐसे सग्रहालय या तो बनकर तैयार हो गए है या बन रहे है । खजुराहो, कीचिग, हाम्पी, आलमपुर बोधगया और बीजापुर ऐसे स्थान हैं । मुगलकालीन सगृहीत वस्तुओ को जैसे पोशाके, गलीचे, हथियार, लेख आदि जो 1857 के विप्लव मे पूर्व या उसके बाद दिल्ली के लाल किले से प्राप्त हुई थी, सुरक्षित रखने के लिए एक सग्रहालय पिछले पचास वर्षों से लालकिले के अन्दर मुमताज महल नामक एक ऐतिहासिक इमारत मे बना हुआ है । दक्षिण भारत मे ब्रिटिश कालीन अवशेषो को रखने के लिए एक सग्रहालय मद्रास के फोर्ट सेट जार्ज के भीतर एक सुरक्षित ऐतिहासिक इमारत मे बनाया गया था । इसी प्रकार का एक और इतिहास एव पुरातत्व के महत्व वाले स्थल पर बना सग्रहालय श्रीरगपट्टन के दरिया-दौलत मे (जिसे ग्रीष्मकाल मे अपने उपयोग के लिए टीपू सुलतान ने सन् 1784 मे बनवाया था) सन् 1959 मे खोला गया था । यहा पर टीपू सुलतान और उनके उदारमना पिता हैदर अली की या उनसे सम्बद्ध वस्तुए और अवशेष रखे गए है । होयसाल साम्राज्य की राजधानी हालेविड मे एक खुला हुआ सग्रहालय बहुत दिनो से बना हुआ है । उस काल की सास्कृतिक सम्पदा को सुरक्षित रखने की दृष्टि से भारत का पुरातत्व सर्वेक्षण यहा पर एक नियमित सग्रहालय स्थापित करने का विचार कर रहा है । इस दिशा मे आरभिक कदम के रूप मे इस स्थान पर एक सग्रहालय कार्यालय स्थापित कर दिया गया है और उसके लिए एक योग्य सग्राध्यक्ष भी नियुक्त कर दिया गया है । यह सबसे नया स्थलीय सग्रहालय है ।

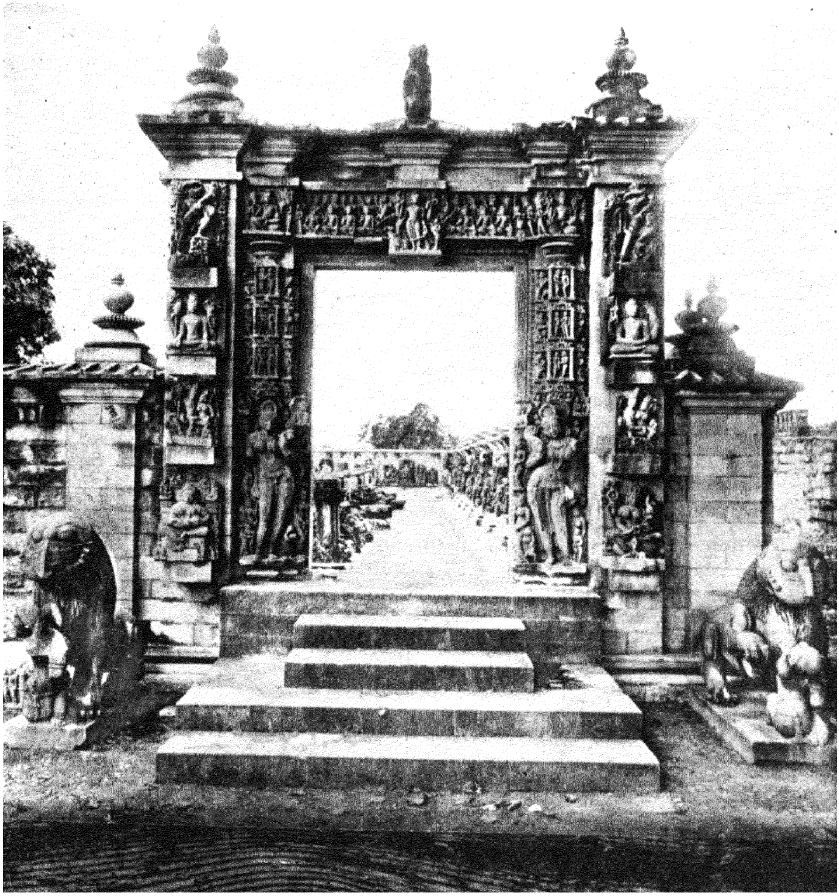
आध्र प्रदेश में आलमपुर, बिहार मे वैशाली, उडीसा मे कीचिग और मैसूर में बीजापुर के सग्रहालयो को छोड़कर अन्य सभी खुदाई स्थल पर बने सग्रहालयो का प्रबन्ध भारत के पुरातत्व सर्वेक्षण द्वारा किया जाता है । इस कार्य के लिए भारत के पुरातत्व सर्वेक्षण की एक सग्रहालय शाखा है जिसका अध्यक्ष एक अधीक्षक (सुपरिटेडेंट) है और उसका मुख्य कार्यालय कलकता के भारतीय सग्रहालय मे है ।

सारे देश मे बिखरे हुए स्थलीय सग्रहालयो का सक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है —

आन्ध्र प्रदेश

आलमपुर जिला महबूबनगर, के लिए करनूल से एक सडक जाती है । दूरी केवल पन्द्रह मील है । करनूल नगर मे टैक्सिया मिल जाती है । आलमपुर रोड नामक एक रेलवे स्टेशन भी है जहा से आलमपुर गाव लगभग चार मील की पूरी पर है । यहां का सग्रहालय सन् 1952 मे स्थापित हुआ था और वह एक विशाल मण्डप के रूप मे बना हुआ है जिसका अभी केवल आधा भाग ऊपर से ढका हुआ है । यहा पर ऐसी मूर्तियो, शिलालेखो और वास्तुकला के नमूने सगृहीत है जो या तो यही पर या फिर आस-पास के स्थानो से प्राप्त हुए है । इनको देखने के लिए काफी अधिक सख्या मे यात्रीगण यहा पर आते है । यहा पर इतने अधिक लोगों के आने का एक मुख्य कारण यह भी है कि आलमपुर हिन्दुओ और मुसलमानो दोनो ही का तीर्थस्थान है । पहले यह स्थान दक्षिण काशी के नाम से ज्ञात था । यहा पर एक स्थानीय दरगाह भी है जहा पर उसके मौके पर भारी भीड होती है ।

अमरावती मे एक प्रसिद्ध स्तूप था जिसे अठारहवी शताब्दी के अतिम वर्षों मे एक स्थानीय जमीदार ने पत्थर को जलाकर चूना प्राप्त करने के लिए बिलकुल नष्ट कर दिया था । यह स्थान कृष्णा नदी के दाहिने तट पर गुन्तूर के पश्चिम में वहा से केवल बीस मील है । यहा बस या टैक्सी द्वारा पहुचा जा सकता है । बसे गुन्तूर नगर और अमरावती के बीच चलती है । टैक्सिया गुन्तूर मे मिल जाती है । अधिकाश नकाशी की हुई पत्थर की ऐसी चौखटे जिन पर बुद्ध के जीवन के दृश्य अकित है और जो नष्ट होने से बच गयी थी, मद्रास से सरकारी संग्रहालय और लन्दन के ब्रिटिश सग्रहालय में पहुचा दी गयी थी । इस प्रकार के अन्य फुटकर प्रस्तर खण्ड ससार के दूसरे सग्रहालयो मे भी रखे हुए है । वर्तमान शताब्दी के आरम्भ मे इस स्थान की और आगे सफाई के दौरान टूटे-फूटे पत्थर के टुकडे इधर-उधर बिखरे हुए पाये गये थे, जो कि किसी समय स्तूप के भाग रहे होंगे । स्तूप के ये शिला-फलक, क्रासबार, शिखर के पत्थर, बुद्ध की मूर्तिया आदि अमरावती की उस कला का प्रतिनिधित्व करते है जो ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी से लेकर सैकडो वर्ष बाद तक सम्पन्न अवस्था मे रही थी । उस कला के ये अवशेष अब मूर्तियो को रखने के लिए बनाए गए शेड (ओसारे) में सुरक्षित है । हाल के वर्षों मे जो छोटे पैमाने पर खुदाइयां हुई है उनके फलस्वरूप कुछ बिल्लौरी भग्नावशेष, ताबूत, मूर्तिया, शिलालेख और अन्य लघु महत्व वाली प्राचीन वस्तुए प्राप्त हुई हैं । ये सभी चीजें



खजुराहो के संग्रहालय का प्रवेश द्वार



हाम्पी की गजशाला

अब एक छोटे से किराए के मकान मे भली प्रकार सजा कर रखी गयी है । एक संग्रहालय भवन का निर्माण भी हो रहा है ।

अमरावती एक और दृष्टि से भी महत्वपूर्ण स्थान है । यहा पर काले नकाशी वाले भाण्ड और उत्तरी काली पालिश वाले भाण्ड तथा पाषाण सस्कृति के अवशेष मिले हैं । स्तूप के स्थल से लगभग डेढ मील पर एक नगरी के अवशेष है जो शायद प्राचीन शिलालेखो मे उल्लिखित प्राचीन धनकटुक नगरी थी । यहा पर उचित रूप से खुदाई के बाद उत्तर के साथ दक्षिण सम्पर्क के विषय पर महत्वपूर्ण प्रकाश पडेगा ।

कोंडापुर हैदराबाद से सडक के रास्ते अडतीस मील है । यदि हैदराबाद से बस द्वारा जाया जाए तो पाच मील का रास्ता पैदल तय करना पडेगा क्योकि वहा बैलगाड़ी को छोडकर दूसरी कोई सवारी नही मिलती । कोंडापुर के प्राचीन स्थल की खुदाई आशिक रूप से भूतपूर्व हैदराबाद रियासत के पुरातत्व विभाग द्वारा की गयी थी । यहा पर जो चीजें प्राप्त हुई है उनमें एक प्रकार की सफेद और पकी हुई मिट्टी काओलीन की बनी बुद्ध की मूर्तिया, विभिन्न प्रकार के मृत्तिका पात्र, सातवाहन सिक्के, नक्काशी वाले भाण्ड, मनके, चूडिया, लोहे की वस्तुए आदि उल्लेखनीय है । ये सभी वस्तुए सातवाहन काल की है जिनका विस्तार ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी से लेकर लगभग पाचवी शताब्दी ईसवी तक था । इनमें दक्षिण की आन्ध्र सस्कृति की विशेषताए स्पष्ट दिखायी देती है ।

नागार्जुनकोंडा यह स्थान गुन्तूर या हैदराबाद से सडक द्वारा लगभग सौ मील और दक्षिणी रेलवे के मछरेला रेलवे स्टेशन से केवल चौदह मील है ।

सन् 1926 में कृष्णा नदी के दाहिने तट पर नागार्जुनकोडा की खोज और इसके बाद सन् 1927–31 तथा 1938–40 मे हुई बौद्ध खण्डहरो के समूह की खुदाइयो के परिणामस्वरूप कम उभडी सुन्दर और कोमल नक्काशी वाले पाच सौ से अधिक पत्थर और अन्य प्राचीन वस्तुए प्राप्त हुई है, जो एक सग्रहालय मे रखी हुई है । इसे सन् 1948 मे खोला गया था । जो सिक्के मिले है, उनमे एक सोने का सिक्का रोमन सम्राट हैडरियन (117–138 ई०) का और अनेक आन्ध्र के सीसे के सिक्के है । शिला-फलको पर अधिकाशत: जातक कथाओ के दृश्य और बुद्ध के जीवन की प्रमुख घटनाए अकित है । ये इक्ष्वाकु राजाओ (दूसरी से तीसरी शताब्दी ईसवी) के काल की मूर्ति-निर्माण कला के उत्कृष्टतम नमूनों में से है । कुछ हद तक इन खोजो से अमरावती स्तूप के शिलाफलको की क्षति पूरी हो गयी है ।

कृष्णा नदी के बहाव की दिशा मे दस मील नीचे जो नागार्जुनकोडा बाध बनाया जा रहा है उसके निर्माण के पूरे हो जाने पर नागार्जुनकोडा का प्राचीन स्थान पानी से डूब जाएगा । केवल नागार्जुन पहाडी का शिखर चारों तरफ घिरी हुई झील की पानी की सतह से लगभग दस फीट ऊचा बना रहेगा । इस प्राचीन स्थान की भली प्रकार खुदाई और खोज की जा चुकी है और पहाड़ी के शिखर पर एक नए संग्रहालय भवन का निर्माण हो रहा है । शिखर पर ही सब महत्वपूर्ण स्मारक हटाकर ले जाए गए है और उन्हे फिर से ठीक किया गया है । पुनर्निमित स्मारकों सहित यह सग्रहालय-द्वीप पानी मे डूबे हुए प्राचीन स्थान के नाम को जीवित रखेगा । वह भारत के पुरातत्व सर्वेक्षण द्वारा स्मारकों को एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाने और उनके पुनर्निर्माण के अग्रगामी कार्य का सदैव साक्षी बना रहेगा ।

बिहार

बोधगया राजकुमार गौतम के ज्ञान-प्राप्ति का स्थान और बौद्धो और हिन्दुओं का एक बडा तीर्थस्थान है । यहा पर ससार भर से हजारो लोग आते है । गया रेलवे स्टेशन से यह स्थान केवल आठ मील की दूरी पर है । यहा का सग्रहालय बुद्ध जयती समारोह के सिलसिले मे स्थापित किया गया था और सर्वसाधारण के लिए उसका उद्घाटन 28 दिसम्बर, 1956 को तिब्बत के परमादरणीय दलाई लामा द्वारा किया गया था । यहा के सग्रह मे बोध गया और उसके आस-पास से प्राप्त मूर्तिया और वास्तु खण्ड सम्मिलित है, जो सग्रहालय भवन में रखे जाने से पूर्व मदिर के निकट एक खुले हुए ओसारे (शेड) में एकत्र किये गये थे । यहा पर रखी गयी अधिकाशत मूर्तिया और कास्य की वस्तुए पाल काल की है । दो पत्थर की मूर्तिया, जो यक्षो की है, और भी पहले की है । वे सभवत. ईसा पूर्व पहली शताब्दी की है । गया जिले मे और स्वय बोधगया की खुदाई में पायी गयी मूर्तिया भी इस सग्रह मे शामिल की जा रही हैं ।

नालन्दा तक पटना से सडक द्वारा या बख्तियारपुर राजगिर लाइट रेलवे के नालन्दा नामक रेलवे स्टेशन से पहुचा जा सकता है ।

नालन्दा महायान सम्प्रदाय का मुख्य केन्द्र था और यह अध्ययन का भी विख्यात केन्द्र था । यहा पर एक बडे क्षेत्र मे अनेक मन्दिर और मठ है । यहा पर बाकायदा खुदाई का काम 1916 से 1931 तक हुआ था । चीनी यात्री ह्वेनत्सांग और इत्सिग दोनो ही ने नालन्दा मे अध्ययन किया था और वे यहा के जीवन और सस्था का बहुत सजीव वृत्तान्त लिख कर छोड गए है । खुदाई के दौरान में गुप्त काल से पूर्व की कोई भी चीज प्रकाश मे नही आयी, यद्यपि साहित्यिक परपरा के अनुसार बुद्ध और महावीर दोनो ही इस स्थान पर आए थे । जनश्रुति यह भी है कि अशोक ने नालन्दा मे एक मन्दिर बनवाया था । कहा जाता है कि उसने बुद्ध के एक प्रमुख शिष्य सारिपुत्र के चैत्य पर अपनी श्रद्धाजलि अर्पित की थी ।

यहा पर खुदाई के दौरान जो चार मन्दिर और आठ मठ निकले है और जो अब भली प्रकार सुरक्षित है, उनमे से बडी सख्या मे पत्थर की मूर्तिया, पकी हुई मिट्टी की पटिया, कास्य मूर्तिया, मुद्राए और उनकी छापें, सिक्के, ताबे की पत्तर पर खुदे लेख और अन्य घरेलू कामकाज की चीजें प्राप्त हुई थी । इनमे से अधिकतर वस्तुए गुप्त और पाल काल (414 से 1154 ई०) की है । इनमें से कुछ नमूने की प्राचीन वस्तुए भारतीय सग्रहालय, कलकत्ता, पटना

सग्रहालय, पटना और राष्ट्रीय सग्रहालय, नई दिल्ली को भेजने के बाद बची हुई चीजो को खुदाई स्थल पर बने सग्रहालय मे रखा गया है जिसे बुद्ध जयती समारोह के अवसर पर 1956-57 में और विस्तृत किया गया था ।

एक कमरे में केवल राजगिर की खुदाई से प्राप्त प्राचीन वस्तुए रखी गयी हैं । राजगिर नालन्दा के दक्षिण मे केवल छ मील के फासले पर है ।

वैशाली अल्प जन-शासन (ओलिगार्की) मे विश्वास रखने वाले उत्तर बिहार के लिच्छवियो की राजधानी और भगवान महावीर का प्रसिद्ध जन्मस्थान है । बुद्ध की मृत्यु के लगभग एक सौ वर्ष बाद यहा द्वितीय बौद्ध परिषद् बुलायी गयी थी । यहा के किलेबन्द भग्नावशेषों की खुदाई समय-समय पर की गयी है । ऐसी खुदाइया सन् 1903-4, 1913-14 और 1948 मे और अन्तिम खुदाई पटना के जायसवाल रिसर्च इन्स्टीट्यूट द्वारा की गयी थी जिसके द्वारा एक अशोक कालीन स्तूप और उनमे भग्नावस्था मे ताबूत प्रकाश मे आए थे । इन खुदाइयो के द्वारा ईसा पूर्व दूसरी से तीसरी शताब्दी की एक मुद्रा की छाप और पाचवी शताब्दी ईसवी तक की सैकडो प्राचीन वस्तुए प्रकट हुई थी । पहले की खुदाइयो से प्राप्त वस्तुए पटना सग्रहालय में है परन्तु सन् 1945 से वैशाली मे एक सग्रहालय स्थापित कर दिया गया है । यह मुख्य रूप से चक्रमदास गाव के श्री बिजौली सिह के उत्साह के परिणामस्वरूप सभव हो सका है । जमीन की सतह पर प्राप्त प्राचीन वस्तुओ का उनका जो सग्रह था उसे वैशाली सघ ने ले लिया था और बाद में सन् 1950 मे उसे बिहार सरकार ने ले लिया । इस संग्रहालय मे वैशाली क्षेत्र के लगभग सौ गावो से प्राप्त प्राचीन वस्तुए रखी गयी है ।

दिल्ली

दिल्ली का लाल किला लाल किले के पुरातत्वीय क्षेत्र मे एक प्राचीन भवन मुमताज महल है । सन् 1911 से इस महल का उपयोग मुगल कालीन ऐतिहासिक सग्रहो के प्रदर्शन के लिए एक सग्रहालय के रूप में किया जा रहा है । कुछ फर्नीचर, ताबे के बर्तन, आभूषण, पहनने के कपडे तथा अन्य विविध वस्तुए, जो कि या तो लाल किले में 1957 में उसके पतन के बाद पायी गयी थी या इस महल की ही बतायी जाती है, दर्शनीय है । यहा पर चार्टों, मुगल चित्रकारी, सिक्कों, पाण्डुलिपियो, मुद्रित पुस्तकों और सुन्दर लिखावट के नमूनो का जो सग्रह है उससे मुगल कलाओ और शिल्पो के अध्ययन की सामग्री प्राप्त होती है । स्वय किले मे स्मारको की सफाई के दौरान में और दिल्ली मे तथा उसके आस-पास प्राप्त मूर्तिया भी इस सग्रहालय में रखी है ।

मध्य प्रदेश

खजुराहो पहुचने के दो मार्ग है । एक मार्ग सतना से होकर है और दूसरा हरपालपुर से है । सडक के रास्ते खजुराहो सतना से 72 मील और हरपालपुर से लगभग साठ मील है । यहां का सग्रहालय, जो फिलहाल बिना छत वाला और दीवार से घिरा हुआ स्थान है, 1910 में स्थापित किया गया था और इसका नामकरण बुन्देलखण्ड के तत्कालीन पोलिटिकल एजेन्ट डबल्यू० ई० जार्डीन के नाम पर हुआ था । उन्होने मूर्तियो को प्राप्त करने मे बहुत उत्साहपूर्वक सहायता दी थी । यहा के सग्रह में खजुराहो तथा उसके पास-पड़ोस से स्मारको की सफाई के दौरान प्राप्त कई हजार मूर्तिया और नक्काशी वाले पत्थर है । ब्राह्मण, बौद्ध और जैन सम्प्रदायो की ये मूर्तिया शीघ्र ही उस भवन मे रख दी जाएगी, जिसका निर्माण हो रहा है । खजुराहो के मन्दिर स्थापत्य कला की भारतीय-आर्य शैली के है जो दसवी से बारहवी शताब्दी ईसवी के बीच चन्देल राजपूतो द्वारा बनवाए गए थे । इन मन्दिरो की दीवारो पर हजारो मूर्तिया बनी हुई है । उत्तरी भारत की कला के इतिहास मे इनका स्थान सबसे महत्वपूर्ण है क्योकि यही एक मात्र ऐसा स्थान है जहा मन्दिर भली प्रकार सुरक्षित है और आक्रमणकारी सेनाओ के मूर्तिभजक जोश का शिकार होने से बचे रहे है ।

सांची भोपाल-दिल्ली लाइन पर एक रेलवे स्टेशन है । यहा का दर्शनीय स्थल रेलवे स्टेशन से लगभग एक मील है । यहा पर सन् 1912 से 1919 तक बाकायदा खुदाई, सफाई और सरक्षण का काम सर जान मार्शल की निजी देख रेख मे हुआ था । कई वर्ष तक जो काम यहा पर हुआ उसके दौरान जो खण्डित मूर्तिया और अन्य लघु महत्व वाली प्राचीन वस्तुए प्राप्त हुई थी, उन्हे एक छोटे से सग्रहालय मे रखा गया था जो 1919 मे पहाडी के शिखर पर बनाया गया था । वह भूतपूर्व भोपाल रियासत को सौंप दिया गया था । खुदाई आदि का सारा कार्य तत्कालीन भोपाल रियासत की ओर से ही करवाया गया था । स्वतत्रता प्राप्ति के बाद सग्रहालय और स्मारक भारत के पुरातत्व सर्वेक्षण द्वारा अपने अधिकार मे ले लिये गय थे । इन सगृहीत वस्तुओ को अब पहाडी के नीचे बने एक मकान मे ले जाया जा रहा है । इस नए भवन मे खुदाई-स्थल पर प्राप्त वस्तुओ के अतिरिक्त उसके बिलकुल निकटवर्ती क्षेत्रो से पायी गयी मूर्तिया भी रखी जाएगी । पत्थर पर नक्काशी का सबसे अच्छा काम स्मारको, उनके तोरणो और रेलिगो पर देखने को मिलता है । परन्तु कृषि सम्बन्धी औजार, लोहे कास्य और ताबे के घरेलू तथा मठ वासियो के कामकाज वाले बर्तन, पकी हुई मिट्टी की बनी चीजे, सिक्के और स्मारको से मिले पत्थरो के टुकडे जैसी छोटी प्राचीन वस्तुए सग्रहालय मे प्रदर्शित है ।

मद्रास

फोर्ट सैंट जार्ज, मद्रास फोर्ट सग्रहालय एक सुरक्षित स्मारक मे बना हुआ है जो सन् 1782 मे 'एक्सचेज' (विनिमय स्थान) के रूप मे बनाया गया था और जहा ईस्ट इडिया कम्पनी के अधिकारीगण और स्थानीय व्यापारी व्यापारिक समझौतो के लिए मिलते थे । इस सग्रहालय को देखने से पिछली तीन शताब्दियो के दौरान मे दक्षिण भारत के ऐतिहासिक क्रमिक विकास का आभास मिलता है । फोर्ट सैंट जार्ज भारत मे अग्रेजो की सबसे पहली बस्ती थी और उसके विस्तार और विकास को चार्टों और रेखाकनो द्वारा भली प्रकार दिखाया गया है । यहां के संग्रह में चित्रकारिया, पाण्डुलिपिया, सिक्के, तमगे, वस्त्र, चीनी मिट्टी की वस्तुएं, लड़ाई

के हथियार, छापे, रेजीमेन्टो के कलर्स, चादी की मूल्यवान वस्तुए आदि इस सग्रहालय भवन की पहली और दूसरी मजिल मे प्रदर्शनार्थ रखी हुई हैं ।

मैसूर

बीजापुर यह स्थान मैसूर राज्य के बीजापुर जिले मे स्थित है । पहले यहा पर आदिलशाही सुलतानो की राजधानी थी । यहा रेल द्वारा आसानी से पहुंचा जा सकता है । यह स्थान दक्षिण रेलवे की शोलापुर—गादा लाइन पर है ।

ऐसी प्राचीन वस्तुओ को, जिनसे बीजापुर के इतिहास पर प्रकाश पडेगा, एकत्र करने के उद्देश्य से 1912 मे यहा का सग्रहालय खोला गया था । सग्रहालय की स्थिति बहुत सुन्दर है और वह प्रसिद्ध गोल गुम्बज के सामने 'नगर खाना' मे बना हुआ है । यहा के सग्रह मे पत्थर के ऐसे फलक जिन पर लेख खुदे है, सनदे और फरमान, बीदरी भाण्ड, हथियार, काष्ठ पर नक्काशी के नमूने, चीनी मिट्टी की बनी चीजें आदि हैं । ये सभी चीजे बीजापुर के सुलतानो की ह । सग्रहालय चालुक्य कला के महान् केन्द्र बादामी, ऐहोल और पित्तादाक्कल के बहुत निकट स्थित है और इसीलिए इसमे दक्षिण की वास्तु एव मूर्त्ति सम्पदा की बहुत प्राचीन अवस्था वाले कुछ शिलालेख, मूर्त्तिया और वास्तु खण्ड भी रखे हुए है ।

हालेबिड यह स्थान हसन जिले मे है और सडक के रास्ते हसन से इसकी दूरी लगभग सात मील है । होयसाल साम्राज्य की प्राचीन राजधानी हालेबिड के होयसलेश्वर नामक मन्दिर के हाते मे ऐसी बहुत सी मूर्त्तिया पडी हुई हैं जो उसी मन्दिर मे और उसके आसपास पायी गयी थी । मन्दिर के निकट ही एक संग्रहालय बनाने का प्रस्ताव है जिसमे ये चीजे और अन्य सम्बद्ध सामग्री उचित रूप से प्रदर्शित की जाएगी । आस पास जो अनेक मन्दिर भग्नावस्था मे हैं उनकी सफाई से जो सामग्री प्राप्त होगी, वह भी इसी सग्रहालय मे रखी जाएगी ।

हाम्पी यह स्थान बेलारी जिले मे है । यहा पहुचने के लिए दक्षिण रेलवे के होसपेट नामक रेलवे स्टेशन पर उतरना होता है जहा से भग्नावशेष सात मील की दूरी पर है । स्टेशन से भग्नावशेषों तक मोटर जाने योग्य सडक है । वापसी यात्रा के लिए टैक्सिया कमलापुरम् मे मिल जाती हैं ।

विजयनगरम् साम्राज्य (सन् 1336–1565) की राजधानी हाम्पी का सग्रहालय सन् 1953 मे स्थापित हुआ था । उस विशाल क्षेत्र मे जहा उक्त साम्राज्य की राजधानी थी इधर उधर बिखरे हुए स्मारको की सफाई के फलस्वरूप बहुत अधिक सख्या मे मूर्त्तिया, सती प्रस्तर, जननायक प्रस्तर (हीरो स्टोन), स्तम्भ और अन्य वास्तु खण्ड, ताम्र पत्र अनुदान, शिलालेख, सिक्के, मनके, सोने के आभूषण, मूर्त्तिका पात्र आदि पाये गये हैं । ये वस्तुए फिलहाल दो प्राचीन इमारतो मे रखी गयी हैं जो फीलखाना (एलीफैन्ट्स स्टे-बिल्स) और गार्ड्स क्वार्टर्स के नाम से ज्ञात है ।

श्रीरंगपट्टम् टीपू सुल्तान संग्रहालय मैसूर से आठ मील पर और बगलौर से लगभग अस्सी मील पर स्थित श्रीरंगपट्टन मे यह सग्रहालय है । उक्त दूरिया ट्रेन और सडक, दोनो ही रास्तो से बराबर है । यह सग्रहालय अल्प कालीन मैसूर सल्तनत के अवशेषों को रखने के लिए बनाया गया है । सग्रहालय टीपू सुलतान के ग्रीष्मावास 'दरिया दौलत' में (जिसे टीपू सुलतान ने 1784 ई० में बनवाया था) स्थित है और उसका वहा पर होना उचित भी है । यहा के सग्रह मे टीपू सुलतान और उसके विख्यात पिता हैदरअली काल की चित्रकारी, नक्काशी, सिक्के, तमगे, पहनने के वस्त्र, पाण्डुलिपिया आदि सम्मिलित हैं । हैदर अली पहला भारतीय शासक था जिसने विदेशी ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना का पूर्वाभास पा लिया था । अधिकाश उक्त वस्तुए भारत के प्रधान मत्री के प्रयत्नो से वर्तमान डयूक आफ विलिंगडन से विनिमय द्वारा प्राप्त की गयी थी ।

उड़ीसा

कीचिंग उडीसा राज्य मे भूतपूर्व मयूरभज रियासत मे स्थित है । यहा पहुचने के लिए रास्ता दक्षिण-पूर्वी रेलवे की हावड़ा-मद्रास लाइन पर स्थित बारीपद रेलवे स्टेशन से है । इस स्टेशन से यह स्थान लगभग नब्बे मील की दूरी पर है । यहा का खुदाई स्थल पर बना सग्रहालय सन् 1922 मे मूलरूप से श्री रामाप्रसाद चन्द्र द्वारा जो भारतीय सग्रहालय, कलकत्ता के पुरातत्व अनुभाग के अधीक्षक थे, सगठित किया गया था । यहा के सग्रह में पत्थर की मूर्त्तिया, पत्थर के औजार, मनके, मृत्तिका पात्र, ताम्रपत्र आदि सम्मिलित हैं । इनमे से अधिकाश वस्तुए उन खुदाइयो के दौरान मे खोद कर निकाली गयी थी जो इस स्थल पर सन् 1922 से लेकर आगे के वर्षों तक की गयी थी । उनका महत्व इस दृष्टि से है कि वे पूर्वी भारत की उत्तर मध्य-कालीन मूर्त्तिकला की एक स्थानीय शैली के नमूने के रूप मे हैं । सग्रहालय एक ऐसी इमारत मे है जो खासतौर पर इसी प्रयोजन के लिए बनवायी गयी थी ।

उत्तर प्रदेश

सारनाथ यह स्थान बनारस नगरपालिका की सीमा मे स्थित है और भारत का एक बडा तीर्थस्थान है । इस ऐतिहासिक स्थल का सिद्धार्थ के जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है । यहा पर जो अनेक खुदाइया हुई हैं उन्ही के फलस्वरूप यहा के सग्रहालय की शुरूआत हुई । इसी स्थान पर सिद्धार्थ ने बोधगया मे ज्ञान प्राप्ति के बाद अपना पहला प्रवचन किया था । पहल प्रवचन का दृश्य अनगिनत मूर्त्तियो मे अकित है लेकिन उनमें से सबसे अच्छी मूर्त्ति इसी स्थान पर मिली थी और वह गुप्त कालीन कला का सर्वोत्कृष्ट नमूना है तथा इस सग्रहालय की एक अमूल्य निधि है । इस स्थान से प्राप्त अशोक स्तम्भ के शिखर पर बने शेरो की मूर्त्तिया अत्यन्त भव्य हैं और वह मौर्य-कालीन कला के चरम शिखर को प्रदर्शित करती है । इस सग्रहालय मे तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व से लेकर बारहवी शताब्दी ईसवी तक के काल की अनेक मूर्त्तिया, कम उभड़ी नक्काशी के नमूने, वास्तुखण्ड और शिलालेख रखे हुए हैं । यहा की एक विशेष उल्लेखनीय वस्तु मथुरा शैली की बनी बोधिसत्व की विशाल मूर्त्ति है ।

(रूपान्तर. त्रिलोकीनाथ मेहरोत्रा)

भारतीय पांडुलिपियां

फूलचन्द पांडेय

साहित्य संस्कृति का एक मात्र रक्षक एवं अग्रदूत है । उसमें भूत और वर्तमान दोनों एक साथ अठखेलियां करते पाये जाते हैं । उसमें हम 'क्या थे' से 'हम क्या हैं' तक का इतिहास सन्निहित होता है । इसी के आधार पर आज हम पिछली जिन्दगी को तत्कालीन समस्याओं से परे रख कर जीवन-सत्य का रूप दे रहे हैं । देश की संस्कृति की प्राचीनता के बारे में हम जो कुछ कह सकते हैं, उसके प्रमाण भारतीय हस्तलिखित ग्रन्थों में हैं । आज ये निधियां यूरोप के कुछ देशों में व्यक्तिगत एवं राज्य पुस्तकालयों की निजी सम्पत्ति के रूप में प्रकाश में आ रही हैं । यदि सम्पूर्ण भारतीय साहित्य के मूल स्वरूप की ओर ध्यान दिया जाय तो यह बड़ा ही स्पष्ट प्रतीत होता है कि इसका रूप आज से बहुत भिन्न था । परम्पराओं एवं पीढ़ियों को पार करती हुई हमारी प्रारम्भिक प्रगति के साथ हमारा सम्पूर्ण साहित्य मौखिक था, ऐसा उल्लेख मिलता है ।

खोजों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि संहिताओं के काल के पश्चात् सूत्र साहित्य का समय आता है जो कालान्तर में साधारण जनता के लिए समस्या का रूप धारण करने लगा । ऐसी अवस्था में सचेत चिन्तकों के सामने सूत्र के विश्लेषण एवं व्याख्या की समस्या आयी और उसी समय लेखन कला का प्रारम्भ भी हुआ । इससे पहले संपूर्ण साहित्य मौखिक था । और एक पीढ़ी से दूसरी को उत्तराधिकार के रूप में मिलता चला आ रहा था । मौखिक स्वर विधान एवं विविध उच्चारणों का रूप अब तक अपने शुद्ध रूप में आ चुका था । सम्भवत यह ई० पू० नवीं शताब्दी की बात है । हमारे लेखों का प्राचीनतम उदाहरण अशोक के शिलालेख हैं । इन प्रस्तर लेखों का विकास सम्राट् कनिष्क के समय में हुआ । इस समय प्रस्तर लेख का स्थान धीरे-धीरे ताम्र पत्र ने लिया । साथ ही सम्राट् अशोक से लेकर सम्राट् कनिष्क तक के समय में लेखन-कला की विधि में भी कुछ परिष्करण तथा विकास हुआ है । गुप्तकालीन शासन-लेखन पद्धति एवं कला की दृष्टि से सर्व श्रेष्ठ एवं शुद्ध हो गया । ताम्र-पत्र से आगे आकर समाज ने भोज-पत्र, ताड़-पत्र तथा भाड-पत्रों का प्रयोग अपने लिखने के लिये किया । आवश्यकतानुसार स्याही का भी आविष्कार हो गया । यह बनौषधियों से बनती थी और आज स्याही से अधिक चमकीली एवं अमिट होती थी । भाड-पत्र हाथ से बना हुआ कागज होता है भारत में भांड-पत्रों का प्रयोग चीन के कागज के आविष्कार से पहले होने लगा था । जब चीन द्वारा कागज के आविष्कार की बात उठाई जाती है, तो हमें भाड-पत्रों की उपेक्षा नहीं कर देनी चाहिए । नये और विकसित रूप में चीन द्वारा कागज के आविष्कार के पश्चात लेखन-कला अधिक सुगम हो गयी, पर भारत में इसका प्रयोग काफी देर से प्रारम्भ हुआ ।

लन्दन इन निधियो का अक्षयकोष है जिसका सकलन समय समय पर अग्रेजो ने हमारी उपेक्षा वृत्ति से लाभ उठाकर किया है। इसके लिये अवश्यमेव हमे उनका आभारी होना है।

ये हस्तलिखित ग्रन्थ समय-समय पर सतर्क विदेशियो द्वारा बाहर भेजे गये। मध्य एशिया, तिब्बत, चीन, जापान, अरब, ईरान तुर्किस्तान, सीरिया तथा प्रमुख यूरोपीय देशो मे भी भारतीय हस्तलिखित ग्रन्थ बिखरे हुए है। जहा तक यूरोपीय देशो का सम्बन्ध है इग्लैण्ड, जर्मनी, फ्रास, सोवियत रूस, इटली, चैकोस्लोवाकिया तथा डेनमार्क मे भारतीय पाडुलिपिया अपेक्षाकृत अधिक सख्या मे मिलती है। हमारी हस्तलिखित पोथियो की जो सम्पत्ति इन दिनो इग्लैण्ड के विश्वविद्यालयो राष्ट्रीय पुस्तकालयो एव सग्रहालयो मे सुरक्षित है सब मिला कर उनकी सख्या लगभग दस हजार होगी। लन्दन इसका सबसे बडा केन्द्र है।

इडिया आफिस पुस्तकालय, ब्रिटिश म्यूजियम तथा विक्टोरिया एव अलबर्ट म्यूजियम के भारतीय विभागो में ये भारतीय हस्तलिखित ग्रन्थ है। इडिया आफिस पुस्तकालय, लन्दन का ही नही वरन् विश्व का प्राय सबसे बडा पुस्तकालय है जिसमे लगभग पाच हजार हस्तलिखित पुस्तके है, जिनकी भाषा सस्कृत, पाली, अपभ्रश, अर्ध मागधी, तिब्बती, नेपाली, अरबी तथा फारसी है तथा जिनकी लिपिया भी ब्राह्मी, खरोष्ठी शारदा लिपि तथा फारसी लिपि मे से एक है। इडिया आफिस पुस्तकालय मे हिन्दी एव सस्कृत की पुस्तको की सख्या लगभग दो हजार के आसपास होगी। वस्तुत सस्कृत की पुस्तके अब ब्रिटिश म्यूजियम को दे दी गई है। इनमे लगभग सत्तर अनुपलब्ध पुस्तको की हस्तलिखित प्रतिया सुरक्षित है। इनमे बल्लभाचार्य का जीवन चरित्र, कोक मजरी, कोकसार, विधि सगीत दर्पण, सगीत रत्नाकर, साहित्य प्रकाश, काव्य कल्पद्रुम, साहित्य सिद्धान्त, तत्व दर्शन, पाणिनि महाव्याकरण, भरत का नाट्य शास्त्र, योगवाशिष्ठ, उपनिषद् आदि पुस्तके उल्लेखनीय है जिनका सम्बन्ध दर्शन, धर्म, सगीत, वैद्यक, काव्य शास्त्र, व्याकरण तथा नाट्य शास्त्र से है।

हिन्दी की पुस्तको की सख्या लगभग छ सात सौ होगी जिनमे पृथ्वीराज रासो, हम्मीर रासो, बीसलदेव रासो, कबीर वचनावली, पद्मावत, रामचरित मानस, रामचन्द्रिका, कवि प्रिया, बिहारी सतसई, सूर सागर के कुछ पद हरिदास के पद आदि पोथिया उल्लेखनीय है, इसके अतिरिक्त सस्कृत मूल ग्रन्थो पर दी गयी टीकाओ, भाष्यो एव अनुवादो मे रामायण, राम विनोद, वचनिका, उपनिषद्, छान्दोग्य उपनिषद, योग वाशिष्ठ, चौबीस उपनिषद सग्रह, अध्यात्म रामायण, शाही नामा, राठौर वशावली, सोमवश की वशावली, भागवत पुराण भाषा तथा लीलावती प्रमुख है। इनमे पृथ्वीराज रासो की कई पूर्ण तथा अपूर्ण प्रतिया है। इसी प्रकार रामचरित मानस की कई प्रतिया है। इसमे एक प्रति ऐसी है, जिसमे अब केवल बीस-बाईस पृष्ठ शेष रह गये है, जिसे राजापुर की प्रति कहा जाता है। एक प्रति के नीचे जैसा उल्लेख है उसके अनुसार उसे सोरो अथवा काशी से सबधित बतलाया जाता है। सूर सागर के भी कुछ छिन्न-भिन्न पद सगृहीत है जिसका लिपि काल लोग सत्रहवी शताब्दी बतलाते है। इन्ही के साथ भारतीय सग्रहालय मे लगाये हुए कल्प सूत्र के पृष्ठो का भी उल्लेख किया जा सकता है, जिसकी लेखन-पद्धति जैन शैली की है। इसकी विशेषता यही है कि किसी भी कथन का विश्लेषण चित्रो के माध्यम के साथ-साथ किया जाता है। इन पुस्तको के अतिरिक्त एक विशेष पुस्तक की हस्तलिखित प्रति का उल्लेख करना आवश्यक है, जिसे लार्ड कर्जन ने नेपाल राज्य पुस्तकालय से कुछ अन्य पुस्तको के साथ इग्लैण्ड भेज दिया था। वह पुस्तक है—दश चित्र लक्षण—यह पुस्तक मुझे देखने को नही मिल सकी, किसी खोज के विद्यार्थी द्वारा पुस्तकालय से उधार ली गयी थी।

उपर्युक्त पुस्तकालयो के अतिरिक्त इसी वर्ग मे आने वाला एक और सग्रहालय है—रायल एशियाटिक सोसाइटी। इस सोसाइटी के सक्रिय सहयोग की प्रशसा करना आवश्यक है क्योकि शोध कार्य के साथ-साथ प्रकाशनो का भी सपादन इसके द्वारा किया गया है।

सामूहिक एव सरकारी सग्रहालयो के अतिरिक्त दूसरे वर्ग के सग्रह शिक्षा सस्थाओ द्वारा किये गये है, जिनमे लन्दन, आक्सफोर्ड तथा कैम्ब्रिज के ओरियटल विभागो के पुस्तकालयो की गणना की जा सकती है। ऐसे सग्रहो मे अधिकाशत साहित्य एव इतिहास सबधी उन पुस्तको की अतिरिक्त प्रतिया है, जिनकी प्राचीनतम प्रतिया या तो इडिया आफिस पुस्तकालय या ब्रिटिश म्यूजियम मे सुरक्षित है। मेडिकल कालेज मे भी वैद्यक की कुछ पुरानी प्रतिया मिलती है जिनके विषय मे अनुमान लगाया जाता है कि ये प्रतिया बारहवी शताब्दी के लगभग की होगी।

तीसरे प्रकार के सग्रह वे है जो व्यक्तिगत रूप मे किये गये है। इसमे सबसे बडा सग्रह एक डाक्टर परिवार का है, जिसमें तीन चार सौ वैद्यक शास्त्र सम्बन्धी पुस्तके होगी और जिन्हे देखने का सौभाग्य डा० राघवन् (मद्रास विश्व विद्यालय) की सूचना से मिल गया था। इन्ही मे निघटु तथा रोग निदान नामक दो ऐसी पोथिया देखने को मिली जो सभवत आठवी शताब्दी के आसपास लिखी गयी होगी।

भारतीय हस्तलिखित ग्रथो का दूसरा केन्द्र जर्मनी है। विद्वानो की रुचि अग्रेजो की रुचि से सर्वथा भिन्न है। भारतीय प्राचीन सस्कृति एव साहित्य का जर्मन विद्वानो ने विशेष अध्ययन किया है। बर्लिन विश्व विद्यालय, बौन विश्वविद्यालय, गाटिजन विश्वविद्यालय, फ्रैंक फर्ट विश्व विद्यालयो का नाम बहुत ही आदर से लिया जा सकता है, पर द्वितीय विश्व युद्ध मे उन्हे भी क्षति उठानी पडी है। अब कुछ व्यक्तिगत सम्पत्ति के रूप मे ही कुछ ग्रन्थ मिलते है जैसे डा० केर का व्यक्तिगत सग्रह। इसमे सस्कृत की प्राचीनतम प्रतिया, पुराणो तथा उपनिषदो के छिन्न-भिन्न रूप, पाली धम्म पद, पाली व्याकरण आदि ग्रन्थ है। गणित ज्योतिष तथा फलित ज्योतिष के भी अनेक ग्रन्थ यहा के विश्व विद्यालयो के विज्ञान

विभागीय सग्रहो मे मिले है। इसी सम्बन्ध मे एक जर्मन विद्वान् डा० लेमान का उल्लेख करना चाहूगा, जिनसे मेरी भेट जर्मन-यात्रा मे हो गयी थी, इन्हे अग्रेजी नाम मात्र को मालूम थी पर सस्कृत एव हिन्दी का ज्ञान इतना अवश्य था जिसके माध्यम से वे अपने विचार प्रकट कर सकते थे उनकी अवस्था लगभग सत्तर वर्ष की थी और जर्मन भाषा मे उन्होने पाली व्याकरण भी लिखा है। उनके पास मे पाणिनि व्याकरण सम्बन्धी, अनेक हस्तलिखित प्रमाणित प्रतिया एव मुद्रित ग्रन्थ देखने को मिले थे, जिन्हे पाना मेरे लिये भारत मे तो प्रयत्न करने पर भी असम्भव मालूम होने लगा था। डा० वैल्यस्मिथ, जो इन दिनो गाटिजन विश्वविद्यालय के प्राच्य विभाग के प्रधान है इस समय भारतीय इतिहास साहित्य सबधी खोज का कार्य बडी तत्परता से कर रहे है। पिछले वर्ष वे भारत एव लका की यात्रा भी इसी सम्बन्ध मे कर चुके है। इसी के साथ प्रो० हाफमान का उल्लेख करना भी आवश्यक है।

मैक्समूलर से पहले भी भारत के प्रति रुचि जर्मन जाति मे रही है पर मैक्समूलर एक ऐसे विद्वान हुए है जिनमे यह प्रवृत्ति विशेष रूप मे स्पष्ट हो गई है। मैक्समूलर को वास्तविक रूप से भारत के प्रति प्रेम था। यूरोप मे (विशेषत इग्लैण्ड मे) भारतीय हस्तलिखित ग्रन्थो की एक विशाल निधि पहुच चुकी थी, जो बाजार मे बिक रही थी। मैक्समूलर ने अपने अध्ययन काल मे इग्लैण्ड मे खरीदी हुई हस्तलिखित प्रतियो का भली प्रकार अध्ययन प्रो० वोपट के साथ रह कर किया था। उन्ही प्रतियो में हितोपदेश, धम्मपद, यजुर्वेद के कुछ अश, सायण भाष्य और कुछ अन्य सस्कृत ग्रन्थो की हस्तलिखित प्रतिया उपलब्ध हुई थी। मैक्समूलर ने प्रथम तो हितोपदेश का अनुवाद किया तथा आगे चलकर सन् 1845 से 1873 ई० के बीच ऋग्वेद का भाष्य सहित पूर्ण प्रति तैयार कर प्रकाशित की। इससे स्पष्ट सकेत मिलता है कि जर्मनी मे वैदिक साहित्य निधि के साथ ही सस्कृत कथा साहित्य, काव्य तथा दर्शन की अनेक हस्तलिखित पोथिया उन्नीसवी शताब्दी के प्रारम्भ मे प्राप्य थी।

ग्रेगल बन्धुओ के अथक परिश्रम के परिणाम स्वरूप जर्मनी मे भाषा विज्ञान के क्षेत्र मे काफी प्रगति हुई है। भारतीय भाषाओ एव योरोपीय भाषाओ के विवेचनात्मक तुलनात्मक अध्ययन मे यह पहला कदम था जिसके पीछे भारत मे प्राप्त भाषा विषयक सामग्री एव पाणिनि महाव्याकरण की हस्तलिखित प्रति थी, और जिनके आधार पर जर्मनी मे विश्लेषणात्मक प्रणाली से भाषा सम्बन्धी खोज का प्रारम्भ किया गया था।

दक्षिणी यूरोप के केन्द्रो को मै एक ही साथ ले रहा हू। इनमे भी दो प्रधान केन्द्र है-इटली का रोम और फ्राम का पेरिस। पेरिस मे न केवल हस्त लिखित पोथियो का ही सग्रह है, वरन् हिन्दी भाषा सम्बन्धी विशेषत आर्य भाषा सम्बन्धी बहुत-सी सामग्री वहा है। मुझे पेरिस मे स्थित फ्रेच सरकारी पुस्तकालय मे कुछ प्राचीन ग्रन्थ देखने को मिले, जिनमे सबसे प्राचीन ग्रन्थ धम्मपद की हस्तलिखित प्रति है, जो कुषाणकालीन बतलायी जाती है। इस पुस्तकालय की पाणिनीय महाभाष्य, महाभारत उपनिषद्, रस सिद्धान्त, काव्य निर्णय, निघटु, रोग निदान आदि पुस्तको का उल्लेख करना भी आवश्यक है। इस पुस्तकालय के अतिरिक्त पेरिस विश्वविद्यालय के ओरियटल विभाग का पुस्तकालय भी उल्लेखनीय है जहां भाषा, लिपि तथा व्याकरण से सम्बन्धित ग्रन्थ है। यहा प्राक् ऐतिहासिक तथा मध्ययुगीन भारतीय इतिहास के उपलब्ध प्रमाण भी सुरक्षित है।

दक्षिणी यूरोप का दूसरा केन्द्र इटली का रोम है। यूरोपीय केन्द्रो मे रोम केन्द्र सबसे अधिक प्रगतिशील है, जिसका श्रेय प्रो० डा० जुसर्फ तूची को है। यह ठीक है कि फ्रास, जर्मनी और इगलैण्ड की भाति इटली के किसी राजकीय सग्रहालय का उल्लेख नही किया जा सकता पर व्यक्तिगत पुस्तकालय के रूप मे वहा लगभग एक हजार पाडुलिपिया होगी। अपनी तीन बार की भारत, तिब्बत एव नेपाल यात्रा मे प्रो० तूची लगभग पचास बोरी हस्त-लिखित ग्रन्थ भारत से ले गये है। सन् 1952-53 तथा पिछली सन् 1955 (अक्तूबर,55) की यात्राओ मे नेपाल के तराई के जिलो मे पाडुलिपिया एकत्र करायी गयी है और देश के बाहर भेजी गयी है। प्रो० तूची ने समय का अच्छा उपयोग किया है और इन बिखरी हुई निधियो का सकलन किया है। उनके व्यक्तिगत सकलन मे तिब्बत मे प्राप्त बौद्ध साहित्य सम्बन्धी सामग्री, इतिहास सम्बन्धी ग्रन्थ, जैन तथा बौद्ध दर्शन के ग्रन्थ नेपाल के इतिहास से सम्बन्धित ग्रन्थ तथा तराई के जिलो से एकत्र की हुई विविध विषयो की हस्तलिखित सामग्री है जिसमे कोष, व्याकरण, नाटक, काव्य, दर्शन तथा वैद्यक के ग्रन्थ है।

अन्त मे भारत को ही लेते है। आज भी व्यक्तिगत सम्पत्ति के रूप मे, घरो मे, हस्तलिखित ग्रन्थो की वह निधि पडी हुई है जिसके अध्ययन एव अनुशीलन के पश्चात् हमारे पिछले इतिहास एव विचारधारा की रूपरेखा ही बदल जाना सभव है। हस्त-लिखित ग्रन्थो के अच्छे सकलन, जिनमे जनता आज भी अछूती है, राज्य सग्रहालयो मे है। यह सही है कि ये सकलन किसी राजा विशेष की अपनी विशेष रुचि पर किये गये है पर सतर्कता के साथ किये गये इन सकलनो का अपना महत्व आज स्पष्ट हो गया है। वस्तुत. इन्ही मे हमारी सस्कृति छिपी है, हमारी सभ्यता छिपी है, हमारा इतिहास छिपा है, हमारा जीवन छिपा है। ऐसे सकलन महाराजा काशी नरेश का सग्रहालय, बडौदा, जयपुर, बीकानेर, उदयपुर के राणा परिवार के व्यक्तिगत सग्रहालय तथा देश मे फैले हुए छोटे-छोटे राजाओ तालुकेदारो आदि के सग्रहालय है, जिनमे महाराजा उमराव का नाम विशेष उल्लेख-नीय है।

राजाओ के सग्रहालयो के अतिरिक्त मन्दिरो से सम्बन्धित सग्रहो का भारतीय हस्तलिखित ग्रन्थो की निधियो मे विशेष महत्व है। मन्दिरो की सम्पत्ति समझ और परम्परा मे चले आए विश्वास के फलस्वरूप ये निधिया किसी प्रकार हटायी नही जा सकी है। वस्तुत. ये अन्ध विश्वास पिछली शताब्दियो मे हमारे लिए

वरदान सिद्ध हुए है, अन्यथा ये सग्रहालय तो ब्रिटिश राजसत्ता के हाथ लग ही गये होते । राजस्थान के जैन मन्दिरो तथा भक्ति परम्पराओ के मन्दिरो की सम्पत्ति के रूप मे भी हस्तलिखित ग्रन्थ मिलते है । इस प्रसग मे नाथ-द्वारा का मन्दिर, दिलवाडे का मन्दिर, गोविन्द जी का मन्दिर, आबू का मन्दिर तथा एकलिग का मन्दिर विशेष उल्लेखनीय है । यही दशा गुजरात, महाराष्ट्र, मैसूर, मद्रास तथा बिहार और बगाल के मन्दिरो मठो एव व्यक्तिगत-सग्रहो की है । दक्षिण के मन्दिरो-मठो के सग्रहो मे सस्कृत साहित्य की अधिक सख्या मे पाडुलिपिया होने का सकेत मिलता है । बिहार एव बगाल मे नीति, भक्ति एव सगीत के ग्रन्थ मिलते है और गुजरात तथा महाराष्ट्र मे सन्त साहित्य तथा भक्ति साहित्य सम्बन्धित सामग्री उपलब्ध है ।

इनके अतिरिक्त, अब उन प्रयासो की ओर सकेत कर देना ठीक ही होगा, जिनके परिणाम स्वरूप हम कुछ प्राप्य पाडुलिपियो का उल्लेख भी कर सकते है । ऐसी सस्थाओ मे काशी की नागरी प्रचारिणी सभा तथा विभिन्न सस्कृत पाठशालाए प्रयाग का हिन्दी साहित्य सम्मेलन, सारनाथ का मूलगन्ध कुटी बिहार पुस्तकालय, दरभगा रिसर्च इन्स्टीट्यूट, सर गगानाथ रिसर्च इन्स्टीट्यूट, डा० अमरनाथ झा का व्यक्तिगत सग्रहालय, भण्डारकर इस्टीट्यूट, पूना, मद्रास विश्वविद्यालय, डा० रघुवीर का सरस्वती बिहार, नई दिल्ली तथा राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर-जोधपुर का विशेष महत्व है । इस क्षेत्र मे कार्य करने वालो मे डा० बड्थवाल, (हस्तलिखित ग्रन्थो की अनुक्रमणिका-नागरी प्रचारिणी सभा), डा० वासुदेव शरण अग्रवाल, डा० राजबली पाण्डेय, डा० रामकुमार वर्मा (भिखारी दास से सम्बन्धित कुछ हस्तलिखित सामग्री डा० बर्मा को मिली है), डा० रघुवीर, डा० राघवन्, पुरुषोत्तमदास टण्डन, राहुल साकृत्यायन, डा० सुनीतिकुमार चटर्जी, डा० सुकुमार सेन, डा० उदयनारायण तिवारी डा० माता प्रसाद गुप्त, मुनि कान्ति सागर, मुनि जिन-विजय, आदि विद्वानो के नाम विशेष उल्लेखनीय है ।

विदेशो और भारत मे बिखरी हुई इन निधियो की एक सूची तुरन्त तैयार करायी जानी चाहिए जिसमे उनका ज्ञान जनसाधारण तक पहुचाया जा सके । जो पाडुलिपिया विदेशो से वापस नही आ सकती, या जिनके भारतीय मालिक उन्हे किसी सग्रहालय को नही देना चाहते, उनकी फोटो प्रतिया भी तुरन्त करायी जानी चाहिए । इन सब पाडुलिपियो को या उनकी फोटो प्रतियो को राष्ट्रीय निधि के रूप मे एक ऐसे केन्द्रीय सग्रहालय मे रखना चाहिए, जहा निश्चित तापमान और रासायनिक सरक्षण मे उनके सुरक्षित रहने की सभावना हो ।



भारतीय कलाओं के अध्ययन में
अंग्रेजों का योगदान

डब्ल्यू० जी० आर्चर

बीसवीं सदी तक भारतीय कला के रक्षण के लिए अंग्रेजो ने बहुत कुछ योगदान दिया, लेकिन कुछ थोड़े से ही विद्वानो और प्रशासको ने उसका सही रूप मे मूल्याकन किया और उसके सिद्धान्तो की खोज की। कई योग्य अंग्रेज निदेशको के अधीन पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग ने लगातार अनेको मन्दिरो और स्मारको का पुनरुद्धार किया और उनकी रिपोर्टों से इस बात का पता चलता है कि भारतीय पुरावस्तुओ की देखभाल मे लोग कितने जोश और लगन के साथ काम कर रहे थे। फर्गुसन, कनिघम, बर्गेस ने भारतीय पुरातत्व का बडे मनोयोग के साथ अध्ययन और निरूपण किया। बम्बई कला विद्यालय के अंग्रेज प्रिंसिपल ग्रिफिथ्स ने अपने छात्रो की सहायता से अजन्ता के भित्ति चित्रो का अभिलेखन किया। और भी कई लोगो ने इस दिशा मे काम किया और इस तरह पुरातत्वीय और ऐतिहासिक महत्व की अनेक वस्तुए सामने आयी।

भारतीय सिविल सेना के एक सदस्य विन्सेंट ए० स्मिथ ने न केवल प्राचीन काल से 1911 तक का भारत का एक विशद इतिहास प्रस्तुत किया, अपितु भारत और लका की कला का पूरा-पूरा लेखा जोखा सबसे पहले प्रस्तुत करने का श्रेय भी उन्हे ही दिया जा सकता है। यह ग्रथ 1911 मे प्रकाशित हुआ था और उस समय तक अनुसधान द्वारा जिन-जिन चीजो पर प्रकाश पड चूका था, उनका व्यौरा इसमे दिया गया है। उन्होने भारतीय मूर्ति और स्थापत्य कला के महत्वपूर्ण भेदो का निरूपण किया और उन्हे उपयुक्त कालो मे विभक्त किया। साथ ही उन्होने प्राचीन भित्ति चित्रो और कागडा और मुगल शैली के लघु चित्रो की भी चर्चा की। इस सबमे उन्होने बडा ही चाव लिया। उन्होने श्रेष्ठ कृतियो की यथासभव प्रशसा की और सब मिलाकर उनकी कृति उनके व्यापक दृष्टिकोण के लिए विशेष रूप से उल्लेखनीय बनी रहेगी।

फिर भी कुछ मामलो मे स्मिथ अपने समय के बन्धनो से बधे थे। वह विक्टोरिया युग के पिछले चरण की ही एक विभूति थे और वह यूरोप की उन प्रवृत्तियो से परिचित नही थे, जिन्होने कलालोचन और फलत आधुनिक कला मे क्रान्तिकारी परिवर्तन ला खडे किये। उन्हे जो पसन्द था उसकी वह प्रशसा करते थे और जो नापसन्द था उसको भी वैसा ही बता देते थे। उन्होने भारतीय मूर्तिकला की अभिव्यजना को स्पष्ट करने का कभी गभीर प्रयास नही किया, न उसकी महानता की ही कोई व्याख्या प्रस्तुत की। नारी रूप के आकर्षक पहलू का या प्रेमी-युगलो का निरूपण देखकर वह दिक्कत मे पड जाते थे और जब कभी कार्ला, खजुराहो या कोणार्क मे इस तरह की मूर्तिया उनके सामने आयी, तो या तो वे उनका वर्णन टाल ही गये या यह कहकर आगे बढ़ गये कि वे इतनी अश्लील है कि उनकी गम्भीर चर्चा नही की जा सकती। इस प्रकार केवल स्मिथ के इतिहास का ही अध्ययन करने वाला

यदि कोई व्यक्ति आज कोणार्क का पर्यटन करने जाए, तो वह वहा पर यही धारणा लेकर जाएगा कि वहा पर उसे सुन्दर घोडों की मूर्तिया और रथ ही देखने को मिलेगा। स्मिथ एक महान् इतिहासकार है । भारतीय सस्कृति के बारे मे उनकी बुनियादी धारणा है कि केवल इतिहास की तात्विक जानकारी से ही लोग भारतीय विरासत को भली भाति समझ सकेगे ।

अग्रेजो द्वारा किये गये भारतीय सस्कृति और कला के अध्ययनो मे स्मिथ की 'हिस्ट्री आफ फाइन आर्ट इन इडिया एण्ड सीलोन' एक विशेष स्थान रखती है। बाद मे आने वाले लेखको ने इसकी अनेक बातो का निराकरण किया। यह भी इसका एक प्रमाण है कि परवर्ती लेखक इससे किस रूप मे प्रभावित हुए। सामान्य पाठक के लिए भारतीय कला के सर्वप्रथम और सबसे ज्यादा ओजस्वी समर्थको मे ई० बी० हावेल का नाम खास तौर पर अग्रगण्य है। उनकी भारतीय मूर्तिकला और चित्रकला (1908), भारतीय कला के के आदर्श (1911), भारतीय स्थापत्य दर्शन, ढाचा और इतिहास (1913) पुस्तको ने भारतीय कला की सफलताओ का एक विशद सर्वेक्षण प्रस्तुत किया। उनका लक्ष्य था कि ब्रिटिश और भारतीय जनता के धन से भारतीय कला के प्रति उपेक्षा के भाव को खत्म कर दिया जाए और अपने समकालीन व्यक्तियो के समक्ष यह स्पष्ट कर दिया जाए कि भारतीय मूर्तिकला का आध्यात्मिक और भौतिक मूल्य बहुत अधिक है। कई भारतीयो द्वारा गढी गयी बुद्ध की मूर्तियो को वह बहुत महत्वपूर्ण मानते थे। अपनी रचनाओ मे सर्वत्र उन्होने इस बात पर जोर दिया है कि भारतीय धर्म और अध्यात्म बडी ही सम्माननीय वस्तु है और भारतीय कला की महानता भारतीय धर्म की महानता से सबद्ध है। उनका नाम एक ऐसे आदर्श अग्रेज के रूप मे आज भी हमारे समक्ष है जो भारतीय सस्कृति और कला के एक बडे पक्षपोषक और प्रेमी रहे और उनकी कृति का इस दृष्टि से भी सदैव समादर होता रहना चाहिए।

दोनो विश्वयुद्धो के बीच अग्रेजो द्वारा किया जाने वाला भारत विषयक अध्ययन मुख्यत पुरातत्वीय ही रहा। यद्यपि सर विलियम रौथेनस्टीन ने कहा कि धर्म की बात को अलग कर देने पर भी भारतीय मूर्तिकला दुनिया के स्तरो से भी विश्व की एक श्रेष्ठ कला का नमूना है, फिर भी कुल मिलाकर रचनात्मक आलोचना नगण्य ही रही। लघु चित्रो के बारे मे अवश्य ही इस बीच कई महत्वपूर्ण कृतिया प्रकाशित हुई। कुमारस्वामी ने 1912 मे राजपूत चित्रकला पर अपनी महत्वपूर्ण पुस्तक लिखी और इस प्रकार पजाब की पहाडियो की इस कवित्वपूर्ण कला की ओर दुनिया का ध्यान आकर्षित किया। इस समय तक मुगल चित्रकला काफी प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी थी। फिर भी आर्नल्ड और बिनयन की कोर्ट पेटिग्ज आफ दी ग्राड मुगल्स (1921) और परसी ब्राउन की 'इडियन पेण्टिग्ज अडर दि मुगल्स (1921)' ने ही पहली बार व्यौरेवार सर्वेक्षण प्रस्तुत किए और ब्रिटिश विद्वानो के बीच मुगल कला के प्रति वह विशेष अभिरुचि जागृत की जो आगे चलकर कभी मन्द नही पडी। इनमे कुछ अलग प्रकार की पर फिर भी बडी ही महत्वपूर्ण पुस्तक जे० सी० फ्रेच की 'हिमालयन आर्ट' है। फ्रेच भारतीय सिविल सेवा का एक अधिकारी था और कुमारस्वामी की प्रसिद्ध कृति से वह इतना प्रभावित हुआ कि उसने बहुत सी छुट्टिया पजाब की पहाडियो का दौरा करते हुए बितायी। उन्होने राजाओ के महलो मे जाकर उनके चित्र-सग्रह देखे 1931 मे प्रकाशित होने वाली उनकी उक्त कृति मे बताया गया है कि इन चित्रो को इन मूल सग्रहो मे जाकर देखना लेखको, आलोचको और इतिहासकारो के लिए कितना महत्वपूर्ण है।

भारत की आजादी के बाद इस बारे मे ब्रिटिश योगदान को एक नई स्थिति प्राप्त हुई। रायल एकादेमी, लन्दन की शीतकालीन प्रदर्शनी, 1947-48 के फलस्वरूप भारत और पाकिस्तान की कला (1950)' नामक विशाल सूची प्रकाशित हुई। इसमे पहले कभी भी भारतीय मूर्तियो को प्रति इतनी व्यापक प्रशसा की भावना प्रकाश मे नही आयी थी, भले ही इस बारे मे प्रकाशित कृतिया अपने चित्र-फलको के ही कारण प्रसिद्ध हुई हो और भले ही उनका लेखन गैर-अग्रेज लोगो द्वारा किया गया हो, फिर भी उनके मुद्रण और प्रकाशन के ही लिए अग्रेजो को समुचित श्रेय मिलना चाहिए। ब्रिटिश म्यूजियम और विक्टोरिया और अलबर्ट म्यूजियम ने कई प्राइवेट ब्रिटिश सग्रह प्राप्त किये है। भारत मे भी बहुत सी नयी सामग्री प्रकाश मे आयी है। ग्रेट ब्रिटेन की कला परिषद् ने राजस्थान की भारतीय चित्रकला नाम की प्रदर्शनी भी आयोजित की है। अनेक ब्रिटिश विद्वानो ने इस बीच भारत की यात्राए भी की है। इस सबके फलस्वरूप भारतीय लघुचित्र कला की बहुत सी नयी शैलिया पहली बार प्रकाश मे आयी है या पहचानी जा सकी है और इस प्रकार भारतीय चित्रकला की विविधताओ का एक नये रूप मे मूल्याकन सभव हो सका है। इस कार्य मे ब्रिटिश कला-इतिहासज्ञो ने भारतीय साथियो के सहयोग से काम किया है।

कला के इतिहास के अलावा हाल मे कला के अध्ययन की ओर जनसाधारण की अभिरुचि बढाने के लिए भी प्रयत्न किये गये है। पहले इस दिशा मे कोई ध्यान नही दिया गया था। कागडा और राजस्थान की चित्रकला की कवित्वपूर्ण झाकी, उसका विशिष्ट कला सौष्ठव, उसका मानवतापूर्ण चित्रण, कविता के प्रतीको पर उसका आधारित होना—इन सब बातो पर जोर दिया गया है और फलस्वरूप पहले से कही ज्यादा लोग भारतीय प्रतिभा की इस अभिव्यक्ति-शैली को समझने के लिए आगे बढ रहे है। इस दिशा मे कुछ और काम करके इसके प्रति लोगो की अभिरुचि बढ़ाकर और आलोचना का दायरा बडा करके ब्रिटिश कलालोचक भारतीय कला के अध्ययन मे अब भी योगदान दे सकते है ।

(रूपान्तर : रा० द्वि०)

पुरातत्व में विज्ञान का योगदान

बी० बी० लाल

पुरातत्व मे, मानवनिर्मित पुरावशेषो का अध्ययन होता है। सामान्य मान्यता है कि यह शास्त्र प्राचीन स्थानो, वस्तुओ तथा अन्य भूतकालीन अवशेषो की खोज तथा उनके उत्खननो से सम्बन्ध रखता है। मानव द्वारा निर्मित इन वस्तुओ का अध्ययन स्वभावत उतना वैज्ञानिक ढग से नही हो पाता, क्योकि इनके सम्बन्ध मे निर्णय करते समय पूर्ण आत्मनिरपेक्षता बरतना सम्भव नही, जो वास्तव मे वैज्ञानिक अध्ययन का मूलाधार है। अत पुरातत्व शास्त्र अयथार्थ होता है। इसलिए भौतिकी, रसायन, जैविकी, भूस्तरशास्त्र आदि यथार्थ विज्ञान पुरातात्विक समस्याओ को सुलझाने मे अधिकाधिक योगदान दे रहे हैं, जिससे पुरातात्विक कार्य मे अवश्यभावी रूप से आने वाली व्यक्ति-सापेक्षता की मात्रा कम होती जा रही है।

पुरातात्विक उत्खननो मे प्रयुक्त पद्धतियो को जनरल पिट्स-राइवर्स तथा बाद के पुरातत्ववेत्ताओ ने इतना परिष्कृत कर दिया है कि अब भूमि से खोद कर निकाली गयी हर एक चीज का प्राप्ति स्थान सही-सही बतलाया जा सकता है। उत्खनन मे प्रत्येक फावडा बडी सावधानी से लगाना पडता है। उसमे से निकली मिट्टी का बडे ध्यान से निरीक्षण करना पडता है। इसलिए आधुनिक उत्खनन बहुत ही धीमी और कष्टप्रद प्रक्रिया है। किसी स्थान पर सर्वांगीण उत्खनन प्रारम्भ करने से पूर्व उस स्थान की प्राप्तव्यता के बारे मे उत्खनक के मन मे निश्चित कल्पना का होना आवश्यक है। प्राचीन स्थलो की खोज निश्चय ही फलदायी होती है, क्योकि जमीन पर पाये जाने वाले बर्तनो के और थालियो के टुकडे मृण्मूर्तियो तथा मिट्टी के अन्य शिल्पतथ्य उस स्थान की पुरातात्विक संपत्ति के सम्बन्ध मे महत्त्वपूर्ण सकेत देते है। किंतु, यही पर्याप्त नही होता। आधुनिक उत्खनन मे तथ्यो की खोज होती है। उसमे केवल पुरावशेषो के सग्रह अथवा उनकी पुनरावृत्ति के लिए स्थान नही। वास्तविक उत्खनन के पहले सभाव्य स्थलो का पूर्वेक्षण नितात आवश्यक है। यथातथ्य होने के लिये पूर्वेक्षण वैज्ञानिक ढग से होना आवश्यक है ही, साथ ही यह तुरन्त भी होना चाहिए, नही तो आधुनिक सभ्यता के आक्रमण से ऐसे स्थानो का बचना कठिन है। इस क्षेत्र मे अन्य पुरातात्विक समस्याओं के वैज्ञानिक अनुसधानिक की भाति पुरातात्विको को भौतिकीविदो की शरण लेनी पडती है। भौतिकीविद् धरती के गर्भ मे छिपे निक्षेपो की खोज कर उनकी मात्रा का अनुमान लगाता है। इसके आधार पर किसी स्थल की प्राप्तव्यता का अदाज लगाया जाता है।

यदि ऐसा कहा जाय कि सभी महत्त्वपूर्ण पुरातात्विक समस्याओ को निर्विवाद रूप से सुलझाने मे पुरातत्ववेत्ता को प्राकृतिक-विज्ञानविदो पर अधिकाधिक निर्भर रहना पड़ता है तो उसमें मतभेद होने का डर नही है। इस प्रकार की कुछ समस्याए यों है :– सभाव्य स्थानो की परिधि एव उनके स्वरूप का निर्धारण, पुरावशेषो

की रचना मे प्रयुक्त पदार्थों की पहचान, प्रयुक्त पदार्थों और पद्धतियो का अध्ययन, कच्चे माल के प्राप्तिस्थान और उद्गम, आतरिक प्रमाणो के आधार पर तथा अति प्राचीन काल से जलवायु सम्बन्धी जिन परिस्थितियों से मानव गुजरा है उसका अनुमान-चित्र तैयार करना। इन सभी समस्याओ के समाधान मे ये वैज्ञानिक उसकी मदद करते है। प्राप्त चीजो का तिथि निर्धारण, जिन परिस्थितियो मे भिन्न भिन्न सस्कृतियो की उत्पत्ति और उनका लय हुआ उनकी छानबीन किये बिना सास्कृतिक एव भौतिक पुरातात्विकी का अध्ययन और पुरातत्विक शिल्पतथ्यो का सग्रह अब नही किया जाता। आधुनिक काल मे विकसित वैज्ञानिक पद्धतियो के कारण पुरातात्विक अनुसधान मे परिस्थिति एव तैथिक (chronological) पहलुओ को और भी महत्व प्राप्त हुआ है। हाल ही मे पुरातात्विक अन्वेषण की जिन वैज्ञानिक पद्धतियो का विकास हुआ है आधुनिक पुरातत्वविद् उन्हे केवल वैज्ञानिक सहायता ही नही मान सकता। सच तो यह है कि वह पुरातात्विक समस्याओ को सुलझाने मे प्राकृतिक विज्ञान की कार्य-पद्धति अधिकाधिक रूप मे अपना रहा है। आज पुरातात्विकी पर वैज्ञानिक उपागम (scientific approach) इतना छा गया है और, अनेको विज्ञानो पर वह इतनी अवलबित है कि अब विज्ञान को पुरातात्विकी की केवल एक दासी मानना असभव है। और, यह भी सम्भव नही कि केवल कुछ आनुषगिक महत्व के पुरातात्विक उद्देश्य की पूर्ति के लिए वैज्ञानिक साधनो की शरण ली जाय। अब सभी पुरातात्विक खोजे और खुदाइया विस्तृत वैज्ञानिक सिद्धान्तो पर आधारित होती है। यदि पुरातात्विकी मे भौतिक विज्ञानो की नही अपितु जातियो की खोज करनी है तो उसमे भौतिक विज्ञानो को उचित स्थान देना ही पडेगा। अत अब पुरातात्विकी मे भौतिकी, रसायन, भूविद्या, जैविकी आदि मे प्रयुक्त पद्धतिया केवल वैज्ञानिक साधन नही है। अब इसमे उनका उचित स्थान मिलने लगा है। किन्तु, प्राकृतिक विज्ञानवादी भी कोई ऐसा यन्त्र नही है जिसे यदि पुरातात्विक सामग्री दे दी जाय तो वह अपने आप समस्याओ का निरापद उत्तर दे देगा। वेत्ता की तरह उसकी भी सीमाए होती है। इन दोनो के सपूर्ण सहयोग से ही किसी पुरातात्विक कार्य की प्रमुख समस्याओ के बारे मे यदि पूर्णतया नही तो बहुत कुछ यथार्थ निष्कर्ष निकाले जा सकते है। किन्तु इस तरह का घनिष्ठ सहयोग सामान्यत नही मिलता और यह कोई आश्चर्य की बात नही है। जिनको पुरातत्वविद् एव वैज्ञानिको के बीच इस प्रकार के सहयोग का अनुभव है, वे अवश्य जानते होगे कि कला और शास्त्र के इन दो अनुशासनो के बीच कितनी गहरी खाई है। वैज्ञानिक तुरत मानेगा कि तथ्यो की विशाल मात्रा और वस्तुओ पर आधारित प्रमाणो का अनुभवी पुरातत्वविद् अपने विस्तृत अनुभव के बल पर जैसी कुशलता से उपयोग करता है उसे देखकर उसकी तुलना किसी अति जटिल गणन यत्र के साथ ही की जा सकती है जोकि जाति विज्ञान या प्रकार-विज्ञान के आधार पर विलक्षण कुशलता से दुर्व्यवस्था के स्थान पर व्यवस्था लाता है। इसके साथ उसको इस प्रकार के उपागम के मार्ग मे आने वाली अप्रत्याशित विपत्तियो का भी ध्यान रहता है, जिनको टालने के लिये भौतिक विज्ञान के सिद्धान्तरूपी दीपक की नितात आवश्यकता होती है। ऐसे उदाहरणो की कमी नही है जहा अनुभवी पुरातत्वविद् भी भटक गये थे। यह भी सच है कि कही कही पुरातात्विक सामग्री वैज्ञानिक प्रयोगशालाओ को अधाधुध भेज कर उस पर झटपट वैज्ञानिक रिपोर्टें मगवाने की प्रवृत्ति भी दिखायी देती है। मानो, वैज्ञानिक के पास कोई रामबाण ओषधि या कोई जादू की छडी है, जिससे वह पुरावशेषो की काया-पलट कर देगा।

पुरातात्विक स्थलों का पूर्वेक्षण

पुरातात्विक स्थलो के सर्वेक्षण मे भौतिकीय पद्धतिया बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुई है। जिस स्थल की खोज पहले ही हो चुकी है उसकी खोज मे चुबकीय एव विद्युतीय प्रतिरोधकता (resistivity) पर आधारित पद्धतिया महत्वपूर्ण सहायता पहुचाती है। इन पद्धतियो द्वारा कई प्रकार के असाधारण उपस्तरीय क्षेत्रो (sub-surface disturbances) का पता चलता है। इसके आधार पर पुरातत्वविद् को उन फलदायी क्षेत्रो का सकेत मिलता है जहा वह अपना खुदाई कार्य आरम्भ कर सकता है।

चुंबकीय सर्वेक्षण

जैसा कि सब जानते है कि लोहा चुबकीय क्षेत्र की उत्पत्ति का प्रधान घटक है। भूमि मे गडी हुई लोहे की वस्तुओ की पहचान उनके कारण उत्पन्न चुबकीय क्षोभ के अध्ययन से हो सकती है। किन्तु लोहे के बने पुरावशेष सकेंद्रित रूप मे क्वचित् ही पाये जाते है। जमीन मे गडे अन्य प्रकार के पुरातात्विक अवशेषो द्वारा उत्पन्न चुबकीय क्षेत्र इतने क्षीण होते है कि अति सुग्राही (Sensitive) यत्रो द्वारा ही वे पकड मे आ सकते है। प्रोटोन चुबकत्वमापी के आविष्कार से अब पुरातात्विक निक्षेपो की पहचान और पुरातात्विक सरचनाओ का स्थान निर्धारण सभव हो गया है। आशा है कि प्रोटोन चुबकत्व मापन पद्धति भविष्य मे पुरातात्विक खोज मे महत्वपूर्ण योगदान देगी।

तापावशिष्ट (thermo remanent) चुबकत्व की बात वर्षों से सुविदित है। अत पकी मिट्टी के बने पुरावशेषो, मिट्टी के बर्तन बनाने वाली भट्टियो, पकी ईटो की सरचनाओ (structures) और प्रचड अग्निकाड मे गुजरे स्थानो का पता तापावशिष्ट चुबकत्व के अध्ययन से लगने की आशा की जा सकती है। प्रत्यक्ष अनुभव से देखा गया है कि इस पद्धति से साधारण चुबकीय क्षेत्रो का पता तो चलता ही है, साथ ही साथ यह पद्धति भरे हुए गड्ढे या खाइयो जैसे पुरातात्विक स्तरो के निर्धारण मे भी काम आती है। इस तरह तापावशिष्ट चुबकीय अभिज्ञान का क्षेत्र एकदम विस्तृत हो गया है। अब इसका उपयोग केवल पकी मिट्टी की वस्तुओ तक सीमित न रहकर सभी पुरातात्विक स्थलो के अध्ययन मे होने लगा है।

विद्युतीय प्रतिरोधकता सर्वेक्षण

मिट्टी कभी गढे या खाई मे भरी रहती है, कभी वह दीवाल के रूप मे होती है या अन्य समरूप निक्षेप के रूप मे। जैसा उसका स्वरूप होगा उसी के अनुरूप उसकी विद्युतीय सवाहकता होगी। विद्युतीय प्रतिरोधकता सर्वेक्षण इसी सिद्धात पर आधारित है। विद्युतीय प्रतिरोधकता निक्षेप पास, समृदा, चिकनी मिट्टी, पत्थर, भरे हुए गड्ढे, खबो के गड्ढे इत्यादि मे उपस्थित आर्द्रता (नमी) की मात्रा पर निर्भर होती है। अत इनकी प्रतिरोधकता मे काफी भिन्नता पायी जाती है, जिससे उनका पता स्पष्ट रूप मे लग जाता है। ऐसे स्थानो मे जहा कि वर्षा अधिक होती है इस पद्धति की यथार्थता प्राय नही रहती, यद्यपि चुबकीय सर्वेक्षण मे धात्विक लोहा और अग्निजन्य शैलो द्वारा उत्पन्न असाधारण क्षोभ यदाकदा ही पाये जाते है।

पुरातात्विक सामग्री का वैज्ञानिक अध्ययन

उत्खनन मे पर्याप्त पुरातात्विक सामग्री प्रकाश मे आती है। इस सामग्री के अध्ययन से पुराने जमाने के पुरावशेषो की रचना मे प्रयुक्त पद्धतियो एव प्रविधियो का अनुमान लगाने मे सहायता मिलती है। इससे उनमे प्रयुक्त कच्ची सामग्री और उसके प्राप्ति-स्थानो का भी पता चलता है। इनके आधार पर पुरातत्वविद् विभिन्न सस्कृतियो के आदान प्रदान, शिल्पशास्त्र के विकास या ह्रास तथा युगयुगो की जलवायु सम्बन्धी परिस्थितियो के बारे मे जानकारी प्राप्त कर सकता है।

पिछले कुछ वर्षों से मिट्टी के बर्तनो का अध्ययन अनुसधान की दृष्टि से बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। इस अध्ययन मे रासायनिक विश्लेषण, तापावशिष्ट चुबकत्व, सूक्ष्मदर्शिकी (m croscopy) तथा उत्सर्जन वर्णक्रम विज्ञान बहुत विश्वासार्ह साधन है। हाल ही मे पुरातात्विक नमूनो के अध्ययन के लिए विश्लेषण की कुछ ऐसी महत्वपूर्ण पद्धतिया विकसित हुई है जिनमे इन नमूनो की तोडफोड नही करनी पडती। इस प्रकार की पद्धतियो मे से कुछ यो है . बीटा किरण प्रकीर्णन (scatterng) पद्धति, क्ष-किरण प्रतिदीप्ति वर्णक्रम विज्ञान (X-ray fluorescent spectroscopy) और न्यूट्रान सक्रियीकरण विश्लेषण। पराबैगनी प्रकाश मे किये गये परादीप्ति विश्लेषण, रेडियोग्राफी तथा अवरक्त (इन्फ्रा रेड) पद्धति का भी पुरातात्विक कलावस्तुओ के स्वरूप एव गठन सबन्धी अध्ययन मे प्रचुरता से उपयोग होता है।

मृद्भाण्ड पुरातात्विकी

मिट्टी की बनी वस्तुओ, जैसे बर्तन, मूर्ति और अन्य पकी वस्तुओ के अध्ययन से उनमे प्रयुक्त कच्चे पदार्थों, उनको आकार देने मे या सजाने मे प्रयुक्त पद्धतियो, पकाने की विधि, उनको रगने के विभिन्न वर्णको के सम्बन्ध मे महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है।

मृद्भाण्डो के परीक्षण मे रासायनिक विश्लेषण की मानक पद्धतियो के द्वारा उनमे प्रयुक्त गिट्टी और वर्णको की कल्पना हो जाती है। मिट्टी के बर्तनो की सतह की जाच सूक्ष्मदर्शक यत्र की सहायता से करने पर उनकी बनावट मे प्रयुक्त पद्धतियो की प्राय. काफी जानकारी मिल जाती है। कोई वस्तु हाथ से बनी है या कुम्हार के चाक पर, या उसकी सतह को आखिरी रूप किसी खास तरीके से दिया गया है यह जानना भी रोचक होता है।

अत मृद्भाड पुरातत्व में जहा विश्लेषणात्मक रसायन-शास्त्र की मानक पद्धतियो का उपयोग होता है, वही पकी मिट्टी की वस्तुओ के खण्डो का अध्ययन भी सूक्ष्मदर्शक यत्र की सहायता से होता है और उनकी भीतरी रचना मालूम की जाती है। मृद्-भाडो के स्तरो की इस प्रकार जाच करने की पद्धति से हमे उनमे प्रयुक्त मिट्टी मे उपस्थित खनिजो को मालूम करने मे तथा उनकी बारीकी जानने मे सहायता मिलती है। साथ साथ उससे हमे उनके पकाने की पद्धति का भी पता चलता है। मृद्भाडो के भौतिकीय गुणधर्मों का भी अध्ययन किया जाता है। उदाहरणार्थ, उनकी कठोरता, घनता या छिद्रता (porosity) जानना आवश्यक होता है। छिद्रता परीक्षण का मृद्भाडो के अध्ययन मे महत्व है ही, किन्तु केवल इन्ही गुणधर्मों के आधार पर मृद्भाडो की पहचान हमेशा नही की जा सकती।

रासायनिक विश्लेषण की मानक पद्धतियो के अतिरिक्त, मृद्भाडो के अध्ययन मे उत्सर्जन वर्णक्रमिकी (emission spectroscopy) की भी सहायता ली जाती है। वर्ण-क्रमिकीय विश्लेषण किसी वस्तु के रासायनिक घटको का निर्धारण करने की एक भौतिकीय पद्धति है। यह इस सिद्धान्त पर आधारित है कि जब परमाणु उत्तेजित होते है, तब वे कुछ विकिरण उत्सर्जित करते है। इनमे प्राप्त वर्णक्रमो का फोटो खीचा जाता है। उत्सर्जन वर्णक्रमो या रेखा वर्णक्रमो से हमे विभिन्न तत्वो की उपस्थिति या अनुपस्थिति का ज्ञान होता है। इसके अतिरिक्त उपस्थित तत्व की मात्रा का भी कुछ अश तक अदाज लगाया जा सकता है। रासायनिक विश्लेषण की तुलना मे वर्णक्रमीय विश्लेषण मे विशेषत यह लाभ है कि इसमे पुरातात्विक वस्तु को बिना तोडे उसके घटको का अशत मात्रात्मक निर्धारण किया जा सकता है।

मृद्भाडो के अनुसधान मे प्रयुक्त पद्धतियो की चर्चा करते हुए तापातरीय विश्लेषण पद्धति का भी उल्लेख किया जा सकता है। स्तरलेखीय (petrographic) पद्धति से सूक्ष्म-कणात्मक पदार्थों की पहचान आसानी से नही हो पाती। इनके अध्ययन एव अभिज्ञान हेतु इस पद्धति को हाल ही मे परिपूर्ण रूप दिया गया है। मिट्टी के बर्तन बहुत उच्च ताप पर पकाये जाते है। फलत. यह पद्धति मृद्भाडो मे प्रयुक्त मिट्टी मे उपस्थित खनिजो की पहचान मे उतनी सतोषजनक नही है। इसी लिए मृद्भाड पुरातत्व मे इसका उपयोग नही किया गया है। किन्तु इसका अर्थ यह नही कि पुरातात्विक क्षेत्र मे इस पद्धति के लिए कोई स्थान ही नही। पुरातत्व के अवशेषो मे धूप मे पकी हुई वस्तुए भी मिलती है। इनका अध्ययन तापातरीय विश्लेषण पद्धति से किया जा सकता है।

प्रयोगशाला मे मृद्भाडो का परीक्षण कर उपयुक्त जानकारी मिल सकती है जैसे पकाने का ताप, जिस परिस्थिति मे पकाने की क्रिया की गयी थी, वह परिस्थिति आक्सीकारक थी या अवकारक (reducing) ।

कभी-कभी इस बात का अध्ययन आवश्यक होता है कि भट्टी मे मिट्टी की चीजे रखते समय हवा के रुख का जिस तरह ध्यान रखा गया था । इसके पकाने के समय बरतनों आदि के रखने के तरीके पर प्रकाश पडता है । इस बारे में तापावशिष्ट चुम्बकत्व के अध्ययन से सहायता ली जाती है ।

बीटा किरण प्रकीर्णन पद्धति

यह एक नव विकसित अभंजक (non-destructive) विश्लेषण पद्धति है जिससे पुरातात्विक नमूनो के स्वरूप एव घटको का अध्ययन किया जा सकता है । इसका आधारभूत सिद्धान्त बहुत सरल है । बीटा किरणे जब समतल पर पडती है, तब उनमें से अधिकाश तल द्वारा अवशोषित हो जाती है, किन्तु उनका एक छोटा हिस्सा परावर्तित होता है । प्रति प्रकीर्णित (back-scattered) बीटा किरणो की मात्रा प्रतिप्रकीर्णन करने वाले प्रत्येक तत्व के लिये अलग अलग और निश्चित होती है । इस तथ्य का उपयोग कर एक सुन्दर पद्धति विकसित की गयी है, जो पुरातात्विक वस्तुओ के परीक्षण मे काम आती है । इस पद्धति से काच, ग्लेज, बर्तनो, पोर्सलिन, तथा वर्णको मे उपस्थित सीसे की मात्रा नापी गयी है ।

न्यूट्रान सक्रियीकरण पद्धति

पुरातात्विक सामग्री के अनसधान में प्रयुक्त अभंजक विश्लेषण की और भी एक पद्धति है । यह है गामाकिरण वर्णक्रम मापन पद्धति (X-Ray spectrometry) । जब किसी तत्व के न्यूक्लियस को न्यूट्रानो द्वारा उत्तेजित किया जाता है, तब उससे गामा-किरणे निकलती है । इनका तरंग-दैर्घ्य (wave-length) प्रत्येक तत्व के लिये निश्चित और अलग अलग होता है । उपर्युक्त पद्धति इस सिद्धात पर आधारित है ।

किसी सिक्के या मिट्टी के बर्तन के खड जैसी पुरातात्विक वस्तुओं को न्यूट्रान पाइल में किरणोयित (irradiated) करते है । सम्बन्धित न्यूक्लियस से निकलने वाली गामा किरणो का तरग-दैर्घ्य परीक्ष्य वस्तु में उपस्थित तत्व के अर्ध जीवन काल पर निर्भर रहता है । इन गामा किरणो के विश्लेषण से किसी तत्व की उपस्थिति या अनुपस्थिति का पता चलता है ।

यह पद्धति पूर्णतया अभजक है (अर्थात् पदार्थ को बिना तोडे-फोडे उसका विश्लेषण इस पद्धति से किया जा सकता है) दुष्प्राप्य एव मूल्यवान वस्तुओ की पहचान में इसका पर्याप्त महत्व है । बर्तनों तथा लेपित (plated) या अलेपित मुद्राओ का विस्तृत अध्ययन इस पद्धति के अनुसार किया गया है ।

क्ष-किरण प्रतिदीप्ति वर्णक्रम मापन पद्धति

पुरातात्विक अनुसधान मे इस अभजक विश्लेषण पद्धति का बहुत ही महत्व है । इसकी सहायता से पुरातात्विक नमूनों के घटको का यथार्थ निर्धारण शीघ्रता के साथ और उनको क्षति पहुचाए बिना होना है ।

जब किसी तत्व को उच्च वोल्टता युक्त क्ष-किरण नलिका द्वारा प्रभावीरूप से किरणोयित किया जाता है, तो वह उत्तेजित हो जाता है और उसके अतस्थ (inner) इलेक्ट्रान सक्रिय हो जाते है और उनमे से क्ष-किरणे निकलने लगती है जिनका स्वरूप प्रत्येक तत्व के लिये अपना अपना अलग होता है । इस घटना पर ही उपर्युक्त पद्धति आधारित है । इन प्रतिदीप्त या गौण क्ष-किरणो का स्वरूप घटक द्रव्यो पर निर्भर रहता है । इनका विश्लेषण गायगर या तत्सम गणक (काउटर) द्वारा किया जाता है ।

उपर्युक्त पद्धतियो मे पुरातात्विक नमूनो को अभग रख कर उनकी पहचान की जा सकती है । विश्लेषण की अन्य पद्धतियो मे शिल्पतथ्यो को काफी क्षति पहुचती है । अत. इनको अशत भजक पद्धतिया कह सकते है । रासायनिक सूक्ष्म विश्लेषण मे परीक्ष्य वस्तुओ से सूक्ष्म मात्राए निकालनी पडती है । प्रकाशीय वर्णक्रम-मापिकी मे, क्ष-किरण तथा गामा-किरण वर्णक्रम मापन पद्धतियो के विपरीत, पुरातात्विक वस्तुओ से कुछ मात्रा मे मूल पदार्थ निकालना पडता है जिसका विश्लेषण मे नाश होता है ।

प्रकाशीय वर्ण क्रमिकी (optical Spectroscopy)

यदि दो धात्विक विद्युदग्रो के बीच विद्युत् स्फुलिग (spark) भेजा जाय तो प्रकाश निकलता है । यह दृश्य प्रकाश विद्युदग्रो मे उपस्थित तत्वो के बाह्य इलेक्ट्रानो के उत्तेजित होने से उत्पन्न होता है । सम्बन्धित तत्वो के लिए लाक्षणिक सुस्पष्ट तरग दैर्घ्यों से यह बनता है । आगे चलकर यदि यह प्रकाश प्रिज्म मे से गुजरता है तो हमे सम्बन्धित तत्वो के रेखिल वर्णक्रम (line spectra) प्राप्त होते है । इन उत्सर्जन या रेखा-वर्णक्रमों के आधार पर हम विभिन्न तत्वो की उपस्थिति या अनुपस्थिति का अनुमान कर सकते है । उपस्थित तत्वो की मात्रा के बारे मे भी हमे इस प्रकार अशत. जानकारी मिलती है । अत इस पद्धति को उत्सर्जन वर्णक्रमिकी (emission spectroscopy) भी कहते है ।

धात्विक पुरावशेषो मृद्भाडो की चमक, मृद्भाडो या अधात्विक पुरावशेषो के विश्लेषण मे उनसे थोडी मात्रा निकालकर वर्णक्रमिकीय विश्लेषण के लिए सिद्ध की जाती है ।

अंशत भजक विश्लेषण पद्धतियो में प्रकाशीय वर्णक्रमिकी का महत्वपूर्ण स्थान है । जहा गामा रे वणक्रमिकी या क्ष-किरण विश्लेषण से विश्वसनीय फल मिलने की संभावना नही होती, वहा प्रकाशीय वर्णक्रमिकी का उपयोग करते है ।

सक्षारण तथा मौसमी प्रभाव से सभी पुरातात्विक वस्तुओ के तलों का सगठन बहुत अधिक बदल जाता है । अत छेद कर नया और

समाग (homogeneous) द्रव्य निकालना पडता है। अत उपर्युक्त दो अभजक पद्धतियो का उपयोग यहा नही किया जा सकता।

विकिरण-चित्रण (radiography), **अवरक्त** (infra-red) **तथा पराबैंगनी** (ultra-voilet) **पद्धतियां**

विकिरण-चित्रण परीक्षण से जग लगे हुए धात्विक पुरावशेषो की सरचना स्पष्ट होती है। उदाहरणार्थ, कासे से बनी वस्तुओ के खनिजीभवन की मात्रा इस पद्धति से निकाली जा सकती है। छिपी हुई बारीकिया तथा सरचनात्मक दोष जो सामान्यत पहचाने नही जाते, वे भी इस पद्धति मे स्पष्ट होते है। उसी प्रकार अवरक्त (इन्फ्रा-रेड) किरणो के उपयोग से पुरातात्विक नमूनो की अन्यत अस्पष्ट बारीकियो के बारे में भी रोचक जानकारी प्राप्त की जा सकती है। पुरानी कलाकृतियो में कभी-कभी ऐसा भी मिलता है कि मूल कृति का रग धुधला पडने पर उस पर बाद में रग चढा देते है। इसी प्रकार टूट-फूट की मरम्मत भी कर देते है। अवरक्त किरणो द्वारा हम यह पता चला सकते है कि क्या इन कृतियों पर बाद मे रग चढाये गये है या उनकी मरम्मत की गयी है। विभिन्न प्रकार के शिल्पतथ्यो की रचना मे प्रयुक्त द्रव्यो का स्वरूप पहचानने मे पराबैगनी प्रकाश मे किये गये प्रतिदीप्ति विश्लेषण से सहायता मिलती है। इन पद्धतियो के आधार पर अनेक कला वस्तुओं का अध्ययन कर पर्याप्त महत्वपूर्ण एव रोचक जानकारी प्राप्त की गयी है। प्राचीन कलाचार्यों के चित्रो के बारे में जो जालसाजी की जाती है उसका भी पता कई बार इन पद्धतियो के उपयोग से लगाया गया है। साथ ही साथ कुछ ऐसे भी उदाहरण है जब अनेक कलाकृतियो की प्रामाणिकता भी सशयातीत रूप से स्थापित की गयी है। यहा कलाकृतियो की प्रामाणिकता के बारे में तोक (Toch) की उक्ति याद आती है।

कोरो (Corot) और हेन्नर (Henner) जैसे आधुनिक चित्रकारो की कलाकृतिओ की भी नकल की गयी है। गवाहो के कटघरे मे खडे एक लेखक से जब पूछा गया कि कोरो ने अपने जीवनकाल में कितने चित्र खीचे होगे तो उसने विनोदपूर्ण ढग से उत्तर दिया "2500, इनमें से 7500 अकेले अमरीका में ही है।" प्राचीन कलाचार्यों के चित्रो पर कूची फेरने और उनकी नकल कर असली चित्रों के रूप में चालू करने के उदाहरण अनन्त है। ऐसी जालसाजी का उपर्युक्त पद्धतियो से भडा फोड करने मे काफी सहायता मिली है।

सांस्कृतिक अवशेषों, पुरावशेषों तथा स्मारकों का परिरक्षण

अजायबघरो मे रखी प्रदर्शनीय वस्तुओ, उत्खननो मे प्राप्त पुरावशेषो, मुद्रितो (prints), रेखाचित्रो (drawings), तैलचित्रो, लघुचित्रो, प्रतिमाओ, पाण्डुलिपियो, वस्त्रो, तथा हाथी-दात, कासे, लकडी, टोकरी साजी, काच, मिट्टी आदि से बनी वस्तुओ और भित्ति चित्रो, अनाच्छादित स्मारको, शिलालेखो और मूर्तियो के साफ करने में तथा परिरक्षण में विज्ञान ने पर्याप्त सहायता की है। इनमें से अधिकाश पद्धतिया रासायनिक हैं। कुछ पद्धतिया भौतिक-रासायनिक, विद्युत्रासायनिक, या विद्युत विश्लेषणात्मक होती है, कुछ भौतिक पद्धतियों का भी उपयोग हुआ है, जैसे सुकुमार कलावस्तुओ (उदा० भित्तिचित्र, रगे हुए मृद्भाड) मे से विलयन-शील हानिकर लवणों को रसाकर्षण द्वारा बाहर निकालने की पद्धति। कभी-कभी आर्द्रता प्रवणता का उपयोग कर भगुर वस्तुओ से हानिकर द्रव्य हटाये गये है।

पराश्रव्य (ultrasonic) **पद्धति**

हाल ही में एक शुद्ध भौतिकीय पद्धति विकसित हुई है। इससे सिक्के या अन्य धात्विक पुरावशेषो की सफाई की जाती है। इस प्रकार के अवशेष जमीन मे दीर्घकाल तक दबे रहने के कारण खनिजो के सपर्क से और उन पर जग चढने के कारण एक दूसरे से जुड जाते है। इन्हे साफ करने या धात्विक पुरावशेषो के परिरक्षण मे सामान्यत जो रासायनिक पद्धतिया पुरातात्विक रसायन मे सफलता से प्रयुक्त होती है वे प्राय अति कष्टप्रद होती है और कभी-कभी उतनी सतोषजनक भी नही होती। पराश्रव्य पद्धति मे उच्च आवृत्तियुक्त ध्वनितरगो के प्रभाव से इन जुडे हुए सिक्को या अन्य धात्विक पुरावशेषो को जुडे रखने वाले द्रव्य अच्छी तरह से अलग किये जाते है। उनके पृष्ठभागो पर जमा हुआ जग भी निकल जाता है और मूल धातु सुरक्षित निकल आती है।

उपर्युक्त पद्धतियो का उपयोग धात्विक, सिकतायुक्त, चूर्ण-युक्त (calcarcous), रजतयुक्त या जैव पुरावशेषो तथा कलावस्तुओं की सफाई, उपचार तथा परिरक्षण मे अधिकाधिक होने लगा है। अजायबघरो तथा चित्रालयो मे इस प्रकार के परिरक्षित पुरावशेषो के रखरखाव मे भी वैज्ञानिक पद्धतियो का बहुत उपयोग होता है। धुआ देना, नमी और तापमान का नियन्त्रण करना, कला-वीथियो तथा अजायबघरो मे प्रकाश की उचित व्यवस्था करना आदि कामो मे वैज्ञानिक पद्धति का अवलबन करना पडता है, ताकि उनमे रखी कला सपत्ति और प्रदर्शनीय वस्तुओ को कीडे मकोडो, नमी, ऊष्मा या प्रकाश आदि कारणों से क्षति पहुचने से बचाया जा सके।

पुरातत्व में तिथि निर्धारण

ज्ञात तिथि के अवशेषो से सबद्ध कर पुरातत्वविद् अपनी नयी खोजो का तिथि निर्धारण करते है। इस प्रकार की पद्धति मे आकार प्रकार, सजावट का ढग और रग को बहुत महत्व प्राप्त होता है। और, महत्व के तथा सुनिश्चित प्रातिनिधिक नमूनों की तुलना अतिथिक (undated) वस्तुओ के साथ कर जहा तक हो सके यथार्थ तिथि निर्धारण करने का यत्न किया जाता है। इस पद्धति को प्रकार विज्ञान या जाति विज्ञान (typology) कहते है। जब भी खुदाई मे निकली हुई पुरासामग्री सुनिश्चित तिथि वाली अन्य वस्तुओ (जैसे मुद्राओं, शिलालेख आदि) के साहचर्य मे पायी जाती है, तो तिथिनिर्धारण निर्दोष होता है। ऐसे उदाहरणो में दूसरी वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग आवश्यक

नही होता। किन्तु, इस प्रकार के साहचर्य के अभाव में प्रकार-विज्ञान की शरण लेनी पडती है और इन वस्तुओ की मिलान अन्यत्र पायी गयी ऐसी वस्तुओ से भी की जाती है जिनका तिथि निर्धारण हो चुका है। तिथिनिर्धारण की यह पद्धति कुछ-कुछ व्यक्तिनिष्ठ होती है और इसे किसी सुस्पष्ट सूत्र या मात्रात्मक सामग्री (आकडो) द्वारा व्यक्त नही किया जा सकता।

प्रत्यक्ष तिथि निर्धारण

ज्ञात तिथि वाली वस्तुओ के साहचर्य के आधार पर जब वस्तुओ का तिथिनिर्धारण असभव होता है, तब वैज्ञानिक पद्धति का अवलब करना पडता है। आतरिक प्रमाणो पर आधारित यह यथार्थ तिथिनिर्धारण प्रकार विज्ञान पर आधारित निर्धारण की अपेक्षा सदैव अधिक ग्राह्य है। हाल ही मे पुरातात्विक तिथि निर्धारण की कुछ सुन्दर पद्धतिओ का विकास हुआ है।

रेडियो-कार्बन द्वारा तिथि निर्धारण

रेडियो-कार्बन (C_{14}) का आविष्कार लिब्बी ने किया। उसका उपयोग पुरातत्व मे तिथिनिर्धारण सम्बन्धी समस्याओ के समाधान मे होता है। इस तरह 7000 वर्ष पूर्व के प्राकृतिक कार्बनयुक्त पुरातात्विक पदार्थों का निरपेक्ष तिथिनिर्धारण करने मे सफलता प्राप्त हुई है। यहा, इस पद्धति की मर्यादाओ का अथवा जिन रासायनिक, भौतिकीय, भूगर्भशास्त्रीय एव पुरातात्विक धारणाओ पर यह आधारित है, उनकी चर्चा करने की आवश्यकता नही है। जिन पुरातात्विक नमूनो की तिथि या प्राप्तिस्थान ज्ञात है उन पर इस पद्धति को लागू करके जो तिथिया ज्ञात की गयी है, वे वास्तविक ज्ञात तिथियो के आसपास की ही है।

'भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण' को रेडियो कार्बन पर आधारित तिथिनिर्धारण के साधन शीघ्र ही उपलब्ध हो जाएंगे। यहां इस बात का उल्लेख करना उचित होगा कि भारतीय उत्खननों मे प्राप्त कई नमूनो का परीक्षण इस पद्धति का अवलबन कर अमरीका के पेनसिल्वानिया विश्वविद्यालय मे तथा लदन के ब्रिटिश म्यूजियम की प्रयोगशाला में हो चुका है। इनमे से पाच नमूने नवदातोली, एक नेवासा और एक उतनूर मे प्राप्त हुआ था।

चुबकीय तिथि निर्धारण

कहा जा चुका है कि पकी मिट्टी की वस्तुएं तथा वैसे ही पदार्थ जिनमे लोहा होता है, यदि पृथ्वी के चुबकीय क्षेत्र में निर्बाध रूप से रहने दिए जाए तो उनको चुबकीय घूर्ण (magnetic moment) प्राप्त होता है, जिसकी दिशा पृथ्वी के चुबकीय क्षेत्र के समातर होती है। इस तापावशिष्ट चुबकत्व की मात्रा कालानुसार बदलती नहीं, किंतु जैसा कि विदित है पृथ्वी का चुबकीय क्षेत्र बदलता है। यदि पकी मिट्टी की वस्तु फिर मे पकायी जाय तो उसका सारा का सारा पहला तापावशिष्ट चुबकत्व नष्ट हो जाता है। किन्तु ठंडी होने पर उसको फिर से नया तापावशिष्ट चुंबकत्व प्राप्त होता है जिसकी मात्रा पृथ्वी के उस समय के चुबकीय क्षेत्र (की मात्रा) पर निर्भर होती है। पकाने पर मिट्टी मे उपस्थित लोह चुबकीय द्विध्रुवीय (dipoles) बनकर पृथ्वी के चुबकीय क्षेत्र की दिशा में आ जाते है। किन्तु, उस वस्तु के ठडे होने पर ये अपनी मूल पक्तिबद्ध स्थिति मे न आकर पकाते समय अपनायी गयी स्थिति मे बद्ध रहते है। पकी ईटो, मृद्भाडो, भट्टियो, चूल्हो आदि पकी मिट्टी की वस्तुओ के तापावशिष्ट चुबकत्व के कारण पृथ्वी के चुबकीय क्षेत्र में पर्याप्त क्षोभ उत्पन्न होता है जिसका पता हम लगा सकते है। यदि इस क्षेत्र का यथार्थ मापन किया जाय तो उसमें अन्यथा समरूप लगनेवाले पृथ्वी के चुबकीय क्षेत्र मे उत्पन्न क्षोभ अकित (record) रहते है। गत काल मे पृथ्वी के चुबकीय क्षेत्र की जो स्थिति रही होगी, उसका ज्ञान हमें पकी मिट्टी से बनी भट्टियो, चूल्हो या अपनी जगह पर अचल रहे मृद्भाडो से मिल सकता है। मिट्टी के बर्तन, ईटें, मिट्टी के खिलौने, गुरिया, चूडिया तथा मिट्टी के अन्य पुरातथ्य पर्याप्त टिकाऊ होने से अधिकाश स्थानो मे प्रचुरता से पाये जाते है।

इस प्रकार के मृद्भाड और मिट्टी की वस्तुए कई स्थानो पर मिल सकती है। अत: यह सामग्री सहसंबधन (correlation), प्राप्ति स्थान निर्धारण तथा तिथि निर्धारण के अध्ययन के लिये अनुकूल है।

पकाने के बाद उसी स्थान पर रही मिट्टी की वस्तुओ के अध्ययन मे हम चुबकीय तिथि निर्धारण पद्धति का उपयोग प्रत्यक्ष रूप मे कर सकते है। यह पद्धति पकी मिट्टी की वस्तुओ द्वारा प्राप्त तापावशिष्ट चुबकत्व के मापन पर निर्भर रहती है। स्वस्थिति की अवस्था मे (In situ) मृद्भाडो, भट्टियो, चूल्हो या सरचनाओं का अनुसधान चुबकीय पद्धति मे कर सकते है। मिट्टी के बर्तनो आदि का अध्ययन केवल अप्रत्यक्ष रीति से ही किया जा सकता है।

चुबकीय तिथि निर्धारण मे, विभिन्न प्रदेशो से प्राप्त पकी मिट्टी के ऐसे नमूनो का होना आवश्यक है जिनका तिथि निर्धारण हो चुका है। इनमे मिलान कर अज्ञात तिथि वाली पकी मिट्टी की वस्तुओ का निर्धारण हो सकता है। यह अकन (calibration) सीमित क्षेत्रो के लिये ही यथार्थ होता है। किन्तु, जो नमूने रेडियो सक्रिय कार्बन द्वारा तिथि निर्धारण करने की दृष्टि से उतने पुरातन नही है उनका तिथि निर्धारण करने के लिये यह पद्धति अधिक उपयोगी है। उदाहरणार्थ पिछले दो हजार वर्षों के, इतिहासकालीन नमूने चुबकीय तिथि निर्धारण के लिये बहुत अनुकूल है, क्योकि रेडियो कार्बन द्वारा इतने आधुनिक नमूनो का तिथि निर्धारण उतने विश्वसनीय रूप मे नही किया जा सकता। फ्रान्स मे थेलियर और उनके सहयोगियो ने, इग्लैड मे कुक, एटकेन प्रभृति तथा जापान मे वाता नाबे ने, चुबकीय तिथि निर्धारण पद्धति के आधार पर बहुत कार्य किया है। फलस्वरूप पुरातात्विक वस्तुओ का चुबकीय तिथि निर्धारण करने की पद्धति तेजी मे विकसित हो

र पुराचुबिकी (archaeomagnetism) शास्त्र का रूप प्राप्त रने जा रही है। किंतु अभी इस पद्धति का उपयोग सीमित ही है ोकि अज्ञात काल की सामग्रियो का तिथि निर्धारण करने से र्व ऐसी वस्तुओ का ज्ञान जरूरी है जिनकी निश्चित तिथि दी जा कती है।

ापेक्ष तिथि निर्धारण

उपर्युक्त वैज्ञानिक पद्धतियो के आधार पर परीक्ष्य वस्तुओ का थि निर्धारण कर हम उनका काल वर्षों मे व्यक्त कर सकते हैं। तु, हर एक स्थान या वस्तु की निरपेक्ष तिथि इस प्रकार नही ायी जा सकती। आदि-ऐतिहासिक कालीन स्थानो का अध्ययन रते हुए किसी प्रकार के लिखित अभिलेखो अथवा निश्चित थि-रेखा के अभाव मे पुरातत्वविद् को अपने अध्ययन मे पर्याप्त ठिनाई का अनुभव करना पडता है। इसके लिए तिथिनिर्धारण ा विशेष महत्व होता है। ऐसी परिस्थिति मे अर्थात् किसी कार के पुरातात्विक प्रमाणो के अभाव मे तथा विशिष्ट प्रकार ी सामग्री अथवा स्थान के सम्बन्ध मे प्रत्यक्ष तिथि निर्धारण ागू करने की असमर्थता के कारण, पुरातत्वविद के लिये एक ही ार्ग बचता है कि वह विभिन्न स्रोतो से प्राप्त प्रमाणो को एकत्रित र सापेक्ष कालानुक्रम प्रस्तुत करे।

पुरातथ्यो का सापेक्ष कालानुक्रम प्रस्तुत करने के लिये कई ज्ञानिक पद्धतिया उपलब्ध है। प्राय वे किसी प्राकृतिक चक्र cycles) पर आधारित होती है जैसे कि सूर्य के धब्बो का दिखाई ना, जलवायु के हेरफेर, मिट्टी का अवसादन (sedimenta-ion) अथवा वृक्षो की वलयवृद्धि। इनमे से कुछ उन सायनिक परिवर्तनो पर आधारित है जो कि किसी पदार्थ के मीन मे दीर्घ काल तक गडे रहने से होते है।

मनदीय परतों की श्रेणी (वर्व) पर आधारित कालानुक्रम

हिमनदाक्रमित (glaciated) प्रदेशो मे प्रतिवर्ष बर्फ पीछे हटने पर मिट्टी के निक्षेप उन तालाबो की तह (bed) मे नते है जो कि हिम से अवरुद्ध होते है। इस तथ्य पर आधारित ुगर्भशास्त्रीय तिथि निर्धारण पद्धति का अवलबन पहले पहल गेरार्द गिअर ने किया। ये निक्षेप अलग अलग स्तरो मे पाये जाते है। मट्टी की ये परते कालिक होती है और प्रत्येक ऋतु मे होने वाले रिवर्तन के कारण उत्पन्न होती है। शीत ऋतु मे द्रवरूप पानी म होता है और मिट्टी का निक्षेप पतला और सूक्ष्म होता है। र्मी मे बर्फ के जल्दी पिघलने से पानी की मात्रा बहुत बढ़ती और प्रचुर अवसादन होता है और स्तर मोटे और स्थूल बनते । अत प्रत्येक अवसादन-चक्र एक वर्ष का प्रतीक है। इन वार्षिक क्षेपो की गिनती कई आडी काटो मे (sections) कर उनके ाधार पर उस प्रदेश के लिये एक कालानुक्रम निर्धारित किया ाता है। यदि किसी एक स्थान मे प्राप्त परतो की श्रेणी दूसरे स्थान र पायी गयी श्रेणी से मिलती-जुलती है तो ऐसे निक्षेपो को एक ही र्ष के निक्षेप मानते है। इसी प्रकार और हिमनदियो के बीच मे स्थित शैलो के अध्ययन से या अन्य पूरक प्रमाणों के आधार पर भिन्न भिन्न प्रदेशो की परत-श्रेणियों का पारस्परिक सम्बन्ध खोज कर अधिक विस्तृत प्रदेशो का कालानुक्रम निश्चित किया जाता है। परत-श्रेणियो के सहसबधन पर द गिअर, ब्रॉतेव्स और सौरामो ने बहुत काम किया है, किंतु इस प्रकार के कार्य की उपयुक्तता विस्तृत क्षेत्रों के लिये विश्वसनीय कालानुक्रम निश्चित करने मे कहा तक हो सकती है इसके बारे मे विद्वानो मे ऐकमत्य नही है। परत श्रेणियो के अध्ययन के आधार पर द गिअर ने उत्तर यूरोप मे लगभग बारह हजार वर्ष पूर्व के अतिम हिमयुग को एक कालानुक्रम दिया है। परत-श्रेणी युक्त मिट्टियो और सूर्य के धब्बों से सम्बन्धित चक्रो का सम्बन्ध भी जोडा गया है।

वृक्ष वलयों (tree ring) **पर आधारित कालानुक्रम**

वृक्ष वलयो पर आधारित विश्लेषण पद्धति अथवा वृक्ष कालानुक्रमिकी का विकास ए० ई० डगलस ने किया। इसका विस्तार केवल पिछले तीन हजार वर्षों तक सीमित है। फिर भी इस काल-मर्यादा मे इस पद्धति का उपयोग दक्षिण-पश्चिम अमेरिका की प्रागैतिहासिक इडियन बस्तियो का तिथि निर्धारण करने मे सफलतापूर्वक हुआ है।

केलिफोर्निया के सेकोया वृक्ष दीर्घायु होते है। प्रादेशिक कालानुक्रम प्रस्थापित करने के लिये उनका अध्ययन हुआ है। दूसरे भी कुछ वृक्षो का अध्ययन स्वीडन जैसे यूरोपीय देशो मे तिथि निर्धारण के लिए किया गया है।

जिस जलवायु मे ऋतु के अनुसार विशेष परिवर्तन होते है वहा के वृक्षो मे वार्षिक वृद्धि वलय (growth-rings) विकसित होते हैं। प्रत्येक ऋतु मे होने वाले परिवर्तनो का परिणाम वृक्षो की वृद्धि पर होना स्वाभाविक है। पिछले तीन हजार वर्ष मे हुए जलवायु के परिवर्तन नापने के साधन के रूप मे वृक्षवलयो का बडा ही महत्व है। साथ ही साथ पुरातत्व मे ऐतिहासिक स्थानो का तिथि निर्धारण करने मे भी इनकी उपयोगिता है। वसत और ग्रीष्म ऋतु के आर्द्र जलवायु मे वृक्षों के वलय मोटे और जाडो के सूखे दिनो मे पतले होते है। वृक्ष वलय कालानुक्रमिकी इसी तथ्य पर आधारित है। जिन प्रदेशों मे आर्द्र और सूखे ऋतुओ मे वर्ष का सुनिश्चित विभाजन नही होता और जहा वर्ष भर मे समान आर्द्रता की परिस्थिति रहती है वहा वृक्ष वलयो की मोटाई एक सी होती है और तिथिनिर्धारण की दृष्टि से ये वलय अनुकूल नही होते।

निश्चित तिथि पर काटे गये वृक्षो के वृद्धिवलयो का अध्ययन किया जाता है और इन वलयो की तुलना दूसरे अधिक पुराने वृक्ष वलयों के साथ की जाती है। इस प्रकार की तुलना सभव होती है क्योकि पुराने वृक्षो के बाह्य वलय बाद के वृक्षो के आतरिक वलयो के समान होते हैं। इस प्रकार निकटवर्ती काल मे काटे गये वृक्षो से आरम्भ कर तिथि निर्धारण अधिक प्राचीन कालीन वृक्षो की दिशा मे पश्चसर होता है। इस पद्धति का उपयोग इग्लैंड, मध्य यूरोप तथा स्कैंडेनेविया मे विस्तृत रूप मे हुआ है। एक दूसरे

से बहुत दूर स्थित प्रदेशों के वृक्षो मे पाये जानेवाले यूरोप, अमेरिका और अफ्रीका के वृक्षो के वलयक्रमो मे सहसम्बन्ध स्थापित करने की दृष्टि से भी प्रयत्न किये गये है।

वृक्ष वलयो के अनुक्रमो मे आवधिकता दिखाई देती है। अर्थात् उनकी सापेक्ष मोटाई अथवा पतलेपन मे लयबद्ध अदलबदल (rhythmic variation) होता रहता है। देखा गया है कि इस प्रकार के चक्रो की आवृत्ति हर ग्यारह साल के बाद होती है। इसी प्रकार सूर्य के धब्बों का औसत काल भी उतना ही होता है। सूर्य के धब्बो की सामासिक आवृत्ति 11 2 या 11 4 वर्षों के बाद होती है। वृक्ष वलयो का चक्र सूर्य के धब्बो के चक्र से मेला खाता है।

परागकण विश्लेषण (palynology)

यह पद्धति न तो पुरातात्विक स्थानो पर वस्तुओ के निरपेक्ष तिथि निर्धारण की प्रत्यक्ष पद्धति है, न इसे हम सापेक्ष तिथि निर्धारण की प्रत्यक्ष पद्धति मान सकते है। हिमनदीय निक्षेप स्तर विश्लेषण और वृक्षवलय कालानुक्रम प्राकृतिक चक्र पर आधारित है। इनसे हमे सापेक्ष कालानुक्रम रचने मे सहायता मिलती है। परागकण वैश्लेषिक अनुसधानो का उद्देश्य, विभिन्न स्थानो मे प्राप्त वृक्षो के परागकणो का सूक्ष्मदर्शीय निश्चयन कर जलवायु सम्बन्धी कालादर्शो का अनुमान चित्र खडा करना है। कोयले के दलदलो (peat bogs), तालाबो मे पाये जाने वाले जैव निक्षेपो और कीचड मे परागकण पाये जाते है। हवा के कारण परागकण बडी मात्रा मे वितरित होकर उनमे निक्षिप्त होते है और वहा फासिल के रूप मे सुरक्षित रहते है। दलदल के कोयले (peat) या कीचड से जो परागकण मिलते है, वे नमूनो के स्थानो (site of specimen) पर होने वाले वानस्पतिक सघटन की मात्रा के न्यूनाधिक सूचक होते है। इस प्रकार उनके द्वारा भूतकाल के जलवायु चित्र का पता चल जाता है। गहन अनुसधानो के फलस्वरूप हम भली भाति जानते है कि पिछले हिमाच्छादन (glaciation) से अब तक जलवायु सम्बन्धी काफी परिवर्तन हो गये है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, इन जलवायु सम्बन्धी हेरफेरो का ब्यौरा वृक्षवलयो मे तथा स्तरयुक्त मिट्टियो मे मिलता है। परागकण विश्लेषण से हम जलवायु के विभिन्न प्रदेशो (zones) की रचना कर सकते है। वैसे ही अन्य प्रदेशो मे प्राप्त पुरातात्विक अवशेषो के अध्ययन पर आधारित तिथिनिर्धारण सम्बन्धी प्रमाणो को उस जलवायु के प्रदेश के प्रमाणो से मिला कर हम उसका विश्वसनीय कालानुक्रम निर्धारित कर सकते है।

ब्रिटेन तथा यूरोप के अन्य देशो में परागकण विश्लेषण पर काफी काम हुआ है और उसके आधार पर कई प्रागैतिहासिक, कास्य--और लोहयुगीन स्थानों की हिमनदीय (glacial) काल के जलवायु को विभिन्न चरणो मे बाटा गया है।

रासायनिक तिथि निर्धारण

पुरातात्विक अवशेषो का तिथि निर्धारण रासायनिक विश्लेषण द्वारा भी किया जा सकता है। रेडियो कार्बन पद्धति जैसे रासायनिक विश्लेषण आतरिक प्रमाणो पर आधारित है, किन्तु रासायनिक तिथिनिर्धारण सापेक्ष होता है, जब कि रेडियो सक्रिय कार्बन द्वारा प्राप्त तिथिनिर्धारण निरपेक्ष। जमीन मे दीर्घकाल तक गडी हुई हड्डियो का तिथिनिर्धारण C 14 द्वारा नही किया जा सकता। इस पद्धति का उपयोग सत्तर हजार वर्ष पूर्व के अवशेषो तक ही सीमित होता है। कार्बनयुक्त वस्तुओ की तथा हड्डियों की रेडियो सक्रियता इस सीमा के बाद बहुत ही क्षीण होती है और वह किसी भी रीति से नही पहचानी जा सकती। अत आरभिक प्लीस्टोसीन (Pleistocene) कालीन हड्डियो का परीक्षण रेडियो कार्बन पद्धति द्वारा करना सभव नही। ऐसी हड्डियो का सापेक्ष तिथि निर्धारण रासायनिक विश्लेषण द्वारा हो सकता है। इस प्रकार के विश्लेषण मे हड्डियो मे उपस्थित फ्ल्यूओरीन नाइट्रोजन तथ यरेनियम की मात्रा नापी जाती है।

जो हड्डिया जमीन मे दीर्घकाल तक गडी रहती है, उनमे उपस्थित फ्ल्यूओटिन की मात्रा बढ जाती है। इसका कारण यह है कि हड्डियों मे उपस्थित हड्राक्सी अपेटाइट की प्रवृत्ति भूमि के पानी मे से फ्लूओरिन अवशोपित करने की होती है फ्ल्यूओरिन का अपेटाइट के साथ सयोग होकर वह हड्डियो मे सगृहीत होता है, इस अवशोपण क्रिया का वेग कई बातो पर अवलबित होता है। जैसे भूमिगत जल में उपस्थित फ्ल्यूओरिन की मात्रा, जो हड्डियो के सपर्क मे आता है। जितने दीर्घकाल तक हड्डिया जमीन मे गडी रहती है, उतनी ही उनमें उपस्थित फ्ल्यूओरिन की मात्रा बढती जाती है। अततोगत्वा यह मात्रा इतनी बढ जाती है कि उस काष्ठामूल्य (limiting value) के आगे वह बढ ही नही सकती। इस तथ्य के आधार पर तिथिनिर्धारण की रासायनिक विश्लेषण पद्धति विकसित हुई है। पुरानी हड्डियो में उपस्थित फ्ल्यूओरीन की मात्रा का अचूक निर्धारण कर किसी स्थान पर प्राप्त हड्डियो की सापेक्ष आयु निकाली जाती है। भिन्न भिन्न प्रदेशो से प्राप्त हड्डियो का तिथिनिर्धारण इस प्रकार करना सभव नही होता, क्योकि भूमिगत जल की मात्रा प्रत्येक प्रदेश मे अलग अलग होती है। हड्डियों मे प्रथमत यूरेनियम नही होता किंतु, जमीन मे गाडे जाने के बाद वे यूरेनियम अवशोयित करती हैं इस यूरेनियम की साद्रता नाप कर उनकी आयु का ज्ञान हो सकता है इस पद्धति का दो तरह से महत्व है। एक तो यह कि यूरेनियम व रेडियो सक्रिय होने के कारण यह पद्धति अति सुग्राही होती है दूसरा यह कि यह पद्धति अभजक होती है, और इससे हड्डियो को तोडे बिना ही उनकी रेडियो सक्रियता का निर्धारण कर सकते है।

जमीन मे दीर्घकाल तक गाडे जाने पर हड्डियो मे उपस्थित नाइट्रोजन की मात्रा धीरे-धीरे घटती जाती है। ताजी हड्डियो मे लगभग चार प्रतिशत नाइट्रोजन रहता है। गाडे जाने पर कई कारणो से हड्डिया, कोलाजेन (collagen) जैसे नाइट्रोजन युक्त पदार्थों की नाइट्रोजन मात्रा न्यूनाधिक अनुपात मे कम होती जाती है। इसके कई कारण होते है। हवा और कीटाणुओ के अभा

मे नाइट्रोजन की मात्रा रहती है। उदाहरण के लिए जब हड्डिया चीनी मिट्टी (clay) में गडी रहती हैं या जब भूम्यतर्गत पानी जमी हुई अवस्था में होता है तो ऐसा होता है। इस प्रकार हमे तुल्य परिस्थिति मे भूमि मे गाडी गयी हड्डियो की सापेक्ष आयु निर्धारित करने की रासायनिक पद्धति प्राप्त हो जाती है। तिथि निर्धारण की रासायनिक पद्धति बहुत कारगर होती है। यदि यूरेनियम, नाइट्रोजन और फ्लूओरिन के विश्लेषण से प्राप्त आकडो का सहसम्बन्ध प्रस्थापित किया जाय, तो सापेक्ष तिथि निर्धारण नितान्त विश्वसनीय हो सकता है। फास्फोरस और लोहे की मात्रा का भी निर्धारण किया जाता है। इससे बाह्य द्रव्यो के आने के कारण उत्पन्न बाधाओ का निराकरण होता है। इस प्रकार के द्रव्य पूर्णत. निकालना वैसे भी बहुत ही कष्टसाध्य होता है। पिल्टडाउन मानव का उदाहरण इस सम्बन्ध में दिया जा सकता है। फ्लूओरीन और नाइट्रोजन अनुमापन के आधार पर तथाकथित ईन्थ्रोपस डासोनी (Eanthropus Dawsoni) का नमूना जाली सिद्ध हुआ। रासायनिक प्रमाणो से यह भी सिद्ध हुआ कि इसके जबडे की हड्डी कृत्रिम रीति से क्रोमियम द्वारा (सभवत पोटैशियम डायक्रोमेट द्वारा) रगी गयी थी।

पराश्रव्य (ultrasonic) पद्धतियों पर आधारित तिथिनिर्धारण

पराश्रव्य विज्ञान (ultrasonics) की पद्धतियो का उपयोग भी हड्डियो के तिथिनिर्धारण सम्बन्धी समस्याओ का हल करने मे किया गया है। स्पेक्ट और बेर्ग ने दिखाया है कि हड्डियो मे से गुजरने वाला ध्वनितरगो का वेग उनकी आयु के अनुसार घटता जाता है। ताजी हड्डियो की तुलना मे पाच सौ वर्ष पूर्व की हड्डियो में ध्वनि वेग 25 प्रतिशत हो जाता है। किंतु, ध्वनितरगो के वेग का यह घटाव विभिन्न आयु की हड्डियो मे समान नही होता। हड्डियो के खटीभवन (calcination) सैकतीभवन (silicification) या लौहीभवन (ferrugenisation) आदि कारणो से उनका ठीक ठीक तिथिनिर्धारण कठिन होता है। यह पद्धति अभजक होती है और सापेक्ष तिथि निर्धारण मे उसका सीमित उपयोग अनुकूल परिस्थिति मे हो सकता है।

तापद्युतीय तिथिनिर्धारण

अभी अभी इस पद्धति का उपयोग पुरातत्व मे मृद्भाडो, ईटो, मृण्मूर्तियो और पकी मिट्टी की अन्य वस्तुओ के तिथिनिर्धारण मे किया गया है।

न्यूक्लीय विकिरण से मृद्खनिजो (clay mineral) को क्षति पहुचती है। इस कारण उनके मणिमो (crystals) की सरचना मे विकृति उत्पन्न होती है। तपाने पर यह विकृति निकल जाती है। इस प्रक्रिया मे सूक्ष्म मात्रा मे प्रकाश उत्सर्जित होता है जिसको हम नाप सकते हैं। इस घटना पर यह पद्धति आधारित है।

मिट्टी की वस्तुओ को पकाने पर मृद्खनिजो मे उपस्थित विकृतिया नष्ट होती है। किंतु, जब पकी मिट्टी की इन वस्तुओं पर न्यूक्लीय विकिरण का दीर्घकाल तक प्रभाव पडता है तो उनको पुन क्षति पहुचती है। इस आधार पर उनकी आयु का अनुमान हम कर सकते हैं।

मृद्खनिजो मे उपस्थित मणिमो की सरचना मे न्यूक्लीय विकिरण से उत्पन्न विकृतिया शैलो और मिट्टयों मे सूक्ष्म मात्रा मे उपस्थित थोरियम और रेडियम के रेडियो सक्रिय विच्छेदन के कारण होती हैं। थोरियम और यूरेनियम के न्यूक्लियस से निकलने वाले आल्फा कण मृद्खनिजो में उपस्थित परमाणुओ के इलेक्ट्रानो को उच्च ऊर्जा स्तर (energy level) तक उत्तेजित करते है। बहुत उच्च ताप पर (कई सौ अश सेंटीग्रेड तक) पकाने से ये इलेक्ट्रान पुन निम्न-ऊर्जास्तर पर लौट आते है। इस प्रक्रिया मे वे दृश्य विकिरण का उत्सर्जन करते है। इस उत्सर्जन की मात्रा इस बात पर निर्भर है कि कितने समय तक मृद्-भाडो पर न्यूक्लीय विकिरण का प्रभाव हुआ था, तथा मिट्टी के घटको और उनमे उपस्थित यूरेनियम का अनुपात क्या है। इसलिए मिट्टी मे बने किसी नमूने की प्राकृतिक रेडियो सक्रियता और अनकूल स्रोत से प्राप्त आल्फा किरणो की निश्चित मात्रा के प्रभाव से उत्पन्न कुल क्षति भी नापनी पडती है।

ताप-विद्युतीय तिथि निर्धारण से बहुत आशा की जा सकती है। इसका उपयोग अधिक विस्तृत मात्रा मे होने की सभावना है क्योकि सभी स्थानो पर मृद्भाडो, मृण्मूर्ति तथा लाल मिट्टी की वस्तुए (red clays) विपुल मात्रा मे पायी जाती है। रेडियो कार्बन युक्त नमूने जो तिथिनिर्धारण के लिये उपयुक्त हो, उचित सख्या और मात्रा मे मिलना हमेशा सभव नही होता। चुबकीय तिथि निर्धारण पद्धति मे भी तापद्युतीय पद्धति अधिक स्वीकार्य है, क्योकि इसमे स्वस्थिति (in situ) नमनो की आवश्यकता नही होती।

पारिस्थितिक पुरातात्विकी

जिन परिस्थितियो मे मानव युगो से रहता आया है, उनका अध्ययन भी पुरातात्विकी का एक महत्वपूर्ण पहलू है। और, यही क्षेत्र है जिसमे विज्ञान ने पुरातात्विक अध्ययन मे भली भाति योगदान किया है। वैज्ञानिक पद्धतियो द्वारा अत्यत महत्वपूर्ण जानकारी हमे मिल चुकी है। भूविद्या और जीवाश्मविज्ञान (palacontology) के आधार पर प्लीस्टोसीन (Pleistocne) कालीन जलवायु, कालानुक्रम और जीवजातविक क्रम (faunal succesion) के अध्ययन मे सहायता मिली है।

नदियो के ऊचे तट, उन्नत समुद्रतट, ऋतुक्षरण से बने निक्षेप (weathering sediments) तथा ढकी मिट्टी (buried soil) आदि के अध्ययन से जलवायु विषयक आदोलनो के सम्बन्ध मे महत्वपूर्ण आधार सामग्री मिली है। यह भूविद्या, वनस्पतिशास्त्र, प्राणिशास्त्र, भौतिकी तथा रसायनशास्त्र की वैज्ञानिक पद्धतियो पर आधारित है। इन सभी विभिन्न वैज्ञानिक पद्धतियो के

समाकलन से विज्ञान की एक नयी शाखा विकसित हुई है जिसे भूकालानुक्रमिकी (geochronolgy) कहते है ।

ऐतिहासिक एव प्रागैतिहासिक स्थानो के भूकालानुक्रमिक अनुसधान मे भूतकालीन जलवायु विषयक हेरफेरो के बारे मे महत्वपूर्ण आधार सामग्री मिलती है । भूकालानुक्रमिकीय अनुसधान मे प्रयुक्त पद्धतियो का सक्षिप्त वर्णन पहले आ चुका है ।

प्रागैतिहासिक स्थानों के अनुसधान मे मिट्टियो तथा ककडो के अध्ययन का पर्याप्त उपयोग होता है। इसके आधार पर हम भूतकालीन जलवायु विषयक परिवर्तनो का पता लगा सकते है । प्रागैतिहासिक स्थानो और गुहाओ मे प्राप्त मिट्टियो के अध्ययन मे यात्रिक एव रासायनिक दोनो विश्लेषण पद्धतियो का उपयोग आवश्यक है । पास (humus) और फास्फेट निर्धारण मे तथा लोहा, ऐल्यूमिना, सिलिका, क्षारक द्रव्यों का चलना या निक्षेपित होता आदि बातो के अध्ययन से उस स्थान की भूतकालीन जलवायुविषयक परिस्थिति का अनुमान-चित्र हम खीच सकते है । वास्तव में भूकालानुक्रमिकी (geo-chronology) का विकास बहुत ही क्षिप्रगति से हो रहा है । उसने प्रागैतिहासिक पुरातात्विकी के अनुसधान मे पर्याप्त योगदान दिया है और आगे चलकर भी यह विज्ञान भूतकालीन जलवायु तथा जिस परिस्थिति मे प्राचीन मानव रहता था इनके बारे मे अधिकाधिक जानकारी देता रहेगा ।

भारत में किया गया काम

भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण मे उपर्युक्त वैज्ञानिक पद्धतियो का उपयोग धातु, मिश्रधातु, मृण्मूर्तिया, काच, ग्लेज, मृद्भाड, छपे चित्र, रेखाचित्र, वस्त्र, भित्तिचित्र, तैलचित्र, लघुचित्र, शिलालेख तथा स्मारक जैसी पुरातात्विक सामग्री के रासायनिक विश्लेषण, वैज्ञानिक परीक्षण, तथा समुपचार एव सरक्षण के लिये बहुत हुआ है । खुदाई से प्राप्त सामग्री का परीक्षण, विश्लेषण और रासायनिक सस्करण भी हुआ है, जिससे उसकी बनावट मे प्रयुक्त द्रव्यो एव पद्धतियो और उनके पुरातात्विक महत्व के बारे में जानकारी प्राप्त होती है । इन पद्धतियो का विकास एव सवर्धन पिछले चालीस वर्षों से (1917 से) भारतीय पुरातात्विक सर्वेक्षण मे होता आया है । अन्य देशो मे भौतिकी, रसायन, भूविद्या आदि शास्त्रो में किये गये अनुसधान के फलस्वरूप जो प्रगति हुई थी और प्राचीन स्मारको तथा विभिन्न प्रकार के पुरातात्विक अवशेषो के सरक्षण में उपयोगी कई पद्धतिया अपनायी गयी थी, उससे हम पीछे नही रह सकते थे । और भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण ने सग्रहालयो मे रखी प्रदर्शनीय वस्तुओ तथा पुरातात्विक सामग्री का वैज्ञानिक परीक्षण हाथ में लिया है । इन वैज्ञानिक पद्धतियो का वर्णन आ चुका है । यह कार्य करते हुए भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण ने यह अनुभव किया कि इस प्रकार-विज्ञान की विभिन्न शाखाओ मे विकसित पद्धतियो का उपयोग बहुत अध्यवसाय के साथ करने की आवश्यकता है । भारतीय सर्वेक्षण के सर्वांगीण विकास के फलस्वरूप पुरातात्विक सामग्री धीरे-धीरे बढती जा रही है । इनके यथार्थ मूल्याकन में उपलब्ध प्रमाणो से उचित निष्कर्ष निकालने मे उपर्युक्त अनुसधानो का उपयोग हो रहा है ।

हमारे देश मे विश्लेषणात्मक रसायन ने पुरातात्विक अनुसधान मे महत्वपूर्ण सहायता पहुचायी है । मोहेनजोदडो और हडप्पा उत्खननो मे प्राप्त मिट्टी के बर्तनो आदि विपुल सामग्री का बारीकी से रासायनिक विश्लेषण किया गया है । इसके आधार पर उस समय प्रयुक्त पद्धतियो और द्रव्यो के सम्बन्ध मे महत्वपूर्ण प्रमाण प्रस्तुत किये गये है । इस प्रकार इन स्थानो मे व्यक्त भारत की आदिकालीन (proto-historic) आधिभौतिक (material) सभ्यता पर पर्याप्त प्रकाश पडा है । तक्षशिला और अन्य बुद्धकालीन स्थानो पर प्राप्त काच तथा ग्लेज आदि के ऐतिहासिक कालीन प्रौद्योगिक विकास के सम्बन्ध मे विश्लेषण से हमारा ज्ञान बहुत बढा है । इसी प्रकार नालदा, अरिकमेडु, अहिच्छत्र और अन्य स्थानो पर प्राप्त काच की वस्तुओ के रासायनिक विश्लेषण मे उनमे प्रयुक्त कच्ची सामग्री की सरचना और प्राप्ति स्थान के सम्बन्ध मे बहुत मूल्यवान् जानकारी मिली है । आगरे के चीनी का रोजा मे प्राप्त चमकदार पत्थरो (टाइल) के अध्ययन से उनकी सरचना का पता चला । साथ साथ यह भी सिद्ध हुआ कि इनका निर्माण चीनियो ने नही बल्कि ईरानी कारीगरो ने या उनके भारतीय शागिर्दों ने किया था । सहसराम मे स्थित शेरशाह के मकबरे के तथा नारनौल की एक मसजिद के चमकदार पत्थरो (tiles) के रासायनिक विश्लेषण से रोचक निष्कर्ष प्राप्त हुए है । कुषाणकाल के चमकदार मिट्टी के बर्तनो की सरचना और निर्माण पद्धति का भी निर्धारण हो चुका है । हस्तिनापुर की काच की वस्तुओ का भी विश्लेषण हुआ है, जिससे उनमे प्रयुक्त कच्ची सामग्री का स्वरूप और उसकी सरचना का पता चला है । इसके आधार पर हमे उस समय काच का काम किस प्रकार होता था और काच कैसे बनता था, इसके सम्बन्ध में जानकारी मिली है । बेदगरी, कोल्हापुर, मास्की, नासिक और महेश्वर में मिली क्रोम कांच की वस्तुओ के सम्बन्ध में रासायनिक विश्लेषण से जो रोचक जानकारी प्राप्त हुई है उसका भी यहा उल्लेख किया जा सकता है । काच और ग्लेज के अतिरिक्त प्राचीन तथा मध्ययुगीन मृद्भाडो का अध्ययन और विश्लेषण भी हुआ है । उत्तरी काले चमकीले बर्तनो का रासायनिक विश्लेषण और शैलवर्णनात्मक परीक्षण कर उनके निर्माण मे प्रयुक्त पद्धति का निर्धारण करने का प्रयत्न हुआ है । उनकी रचना में प्रयुक्त मुख्य द्रव्य तथा ऊपरी चमकदार काली सतह का स्वरूप निश्चित करने का यत्न भी हुआ है । किन्तु उसकी आखिरी तैयारी में प्रयुक्त पद्धति का निर्विवाद निर्धारण होना आवश्यक है । तभी इन वस्तुओं के काले या इस्पाती भूरे रग की प्रक्रिया स्पष्ट होगी । इस चमकदार सतह पर उपस्थित हल्के पीले, या मटुए (cream, buff) तथा लाल रग की सजावट की आकृतियों के कारण यह समस्या और भी जटिल हो गयी है ।

अरिकमेडु के उत्खनन मे पाये गये चमकदार काही (celadon) पर भी विस्तृत अनुसधान किया गया है। इस आधार पर आतरिक प्रमाणो को ध्यान मे रखते हुए उसके निर्माण का तिथिनिर्धारण किया गया है।

अरिकमेडु मे पायी गयी मिट्टी की वस्तुओ का परीक्षण एव विश्लेषण किया गया है। वहा की दोहरी मुठियो के बर्तनो (amphora) के खडो पर भीतरी तरफ से राल जैसे पदार्थ की कडी खुरचन (incrustation) मिली है। इसके रासायनिक विश्लेषण से यह प्रतीत होता है कि यह बर्तन तेल या मदिरा रखने के काम आता था। इस बर्तन में उपस्थित गोद या डामर जैसी वस्तुओ का पता प्रति दीप्ति-विश्लेषण से कैसे चला इस बात का भी उल्लेख करना यहा उचित होगा। अरिकमेडु के मिट्टी के बर्तनो मे प्रयुक्त द्रव्यो तथा पद्धतियो का विस्तृत परीक्षण हुआ है। इससे सिद्ध हुआ है कि लवणो के उपयोग से इन बर्तनो को चमकीला बनाया जाता था। और उस समय हेमटाइट और लोहयुक्त मिट्टी से बनी पट्टियो का उपयोग होता था।

उत्तर के और दक्षिण के काले चमकीले बर्तनो के (दीर्घ पाषाण कालीन वाले बर्तनो के) तुलनात्मक अध्ययन से पता चला है कि इनकी बनावट में दो भिन्न पद्धतियो का अवलबन किया जाता था। हाल ही मे उत्तर के काले चमकीले बर्तनो के निर्माण में प्रयुक्त पद्धति का अनुसधान ब्रिटिश म्यूजियम की प्रयोगशाला में हुआ है, किंतु ये प्रयोग अब तक निर्णयात्मक नही हो पाये है।

ब्रह्मगिरि (आध्र) के रगीन बर्तनो के बारे मे पता चला है कि उन पर नमक के उपयोग से चमक चढायी गयी है। उनका सफेद रग काओलिन या चूने से बना है।

उत्तर प्रदेश के रगीन भूरे बर्तनो, आध्र के तथा दक्षिण भारत के धूमिल (russet) रग के बर्तनो और दक्षिण भारतीय काले और लाल रग के दीर्घपाषाण कालीन बर्तनो के विषय मे भी पर्याप्त काम हुआ है।

रगपुर, लोथल, उज्जैन और नागदा मे पाये गये मिट्टी के बर्तनो का व्यौरेवार अध्ययन हुआ है। इन अनुसधानो से बहुत ही महत्वपूर्ण परिणाम निकले हैं। उनके व्यौरे इन स्थानो के पुरातात्विक प्रतिवेदनो मे प्रकाशित किये जाएगे।

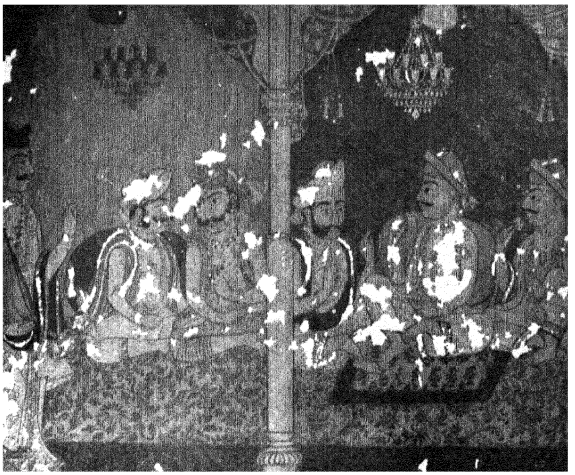
हाल ही में कई स्थानो से उत्खनन या समन्वेषण से प्राप्त मृद्-भाडो का विस्तृत अनुसधान आरम्भ किया गया है। इसका उद्देश्य इन वस्तुओं की संरचना का स्वरूप तथा उनकी बनावट में प्रयुक्त पद्धतियो का निर्धारण है। इस सम्बन्ध मे विशेष महत्व की बात यह देखना है कि क्या आदि इतिहास कालीन मृद्भाड पुरावशेषों के निर्माण में प्रयुक्त सामग्री और पद्धतिया बाद के कालखडो मे ज्यो की त्यो व्यवहृत थी या आगे चलकर दूसरी पद्धतियो और सामग्री प्रयुक्त होने लगी थी ?

प्राचीन और मध्ययुगीन भारतीय मृद्भाडो के अध्ययन में रासायनिक विश्लेषण पद्धति बहुत उपयुक्त सिद्ध हुई है। इस पद्धति का उपयोग उत्खननो मे पाये जाने वाले धातु या मिश्र धातु के नमूनो के अनुसधान मे भी विस्तृत मात्रा मे कर धातु कर्म तथा धातु लेखन विषयक समस्याए सुलझाने का यत्न हुआ है। मोहेन-जोदडो और हडप्पा से प्राप्त नमूनों के रासायनिक विश्लेषण से महत्वपूर्ण एव रोचक जानकारी मिली है। इससे यह प्रतीत होता है कि प्राचीन कारीगरो ने धातुकर्म एव धातु की वस्तुए बनाने मे उच्च-कोटि का कौशल प्राप्त किया था। कासा ढालने और उसका उपयोग कर वस्तुए बनाने की पद्धति भी वे भली भाति जानते थे। नालदा की कासे से बनी वस्तुओ का विस्तृत अनुसंधान किया गया है। अहिच्छत्र, ब्रह्मगिरि, बिसौली, बहादुराबाद, हस्तिनापुर, रगपुर, लोथल, नागार्जुनकोडा, उज्जैन, नागदा और कई अन्य स्थानो में प्राप्त धातु और मिश्र धातु के नमूनो का रासायनिक विश्लेषण एव परीक्षण हुआ है, जिससे रोचक जानकारी प्राप्त हुई है।

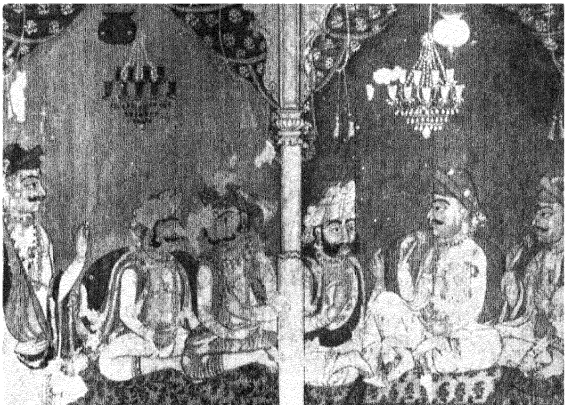
प्राचीन स्मारको की रचना तथा सजावट मे प्रयुक्त सामग्री के अध्ययन की ओर भी ध्यान दिया गया है। रगो, चूने की कलइयो (limewash), गिलावों, (plaster) तथा चूनो के नमूने भुवनेश्वर और कोणार्क के मदिरो, गोलगुबद, बीजापुर, गोलकोडा के दुर्ग, रग महल, चबा, तजौर, लेपाक्षी, सोमपल्ले और चादा के मदिरो, सारनाथ, साची, नालदा और गिलड के स्तूपो, नागार्जुन कोडा आदि स्थानो से एकत्र किये गये है। इनके रासायनिक विश्लेषण से प्राचीन और मध्ययुगीन इमारतो के बाधो मे प्रयुक्त सामग्री और पद्धतियो तथा रचना के सम्बन्ध मे पर्याप्त जानकारी मिली है।

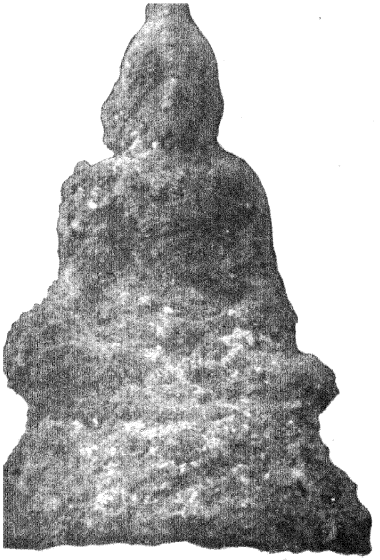
इधर कुछ वर्षों से मदिरो, लेणो, शिलालेखो तथा मूर्तियो पर रासायनिक क्रिया कर उनके सरक्षण के सम्बन्ध में विस्तृत कार्य हुआ है। भुवनेश्वर के लिंगराज मदिर मे रासायनिक उपचार द्वारा हानिकर घुलनशील लवणो और शैवाल या काई (algae) के प्रभाव से उसको बचाने का प्रयत्न किया गया है। मदिर में आगे चलकर शैवाल या शिलावल्क (lichen) न लगे इस लिए अनुकूल कक्कनाशो (fungicides) का उपयोग किया गया है। इसका परिणाम सतोषजनक निकला है। खजुराहो के कदरिया मदिर का भी रासायनिक उपचारो तथा अन्य वैज्ञानिक पद्धतियो और द्रव्यो का उपयोग कर सरक्षण किया गया है। कई मदिरो, मूर्तियों, शिलालेखो और अलंकृत पत्थरो को विस्तृत और गहन रासायनिक उपचार द्वारा विनाश से बचाया गया है। जिन स्थानो पर प्रतिबधक उपचारो का विस्तृत उपयोग हुआ है उनमें से कुछ यो है . एलीफेंटा, कार्ला, भज, कान्हेरी, भुवनेश्वर, खजुराहो, नालदा, साची, श्रावणबेलगोला, बैजनाथ (कागडा) और चित्तौड गढ।

जलवायु के प्रभाव से महत्व के स्मारको को जो क्षति पहुचती है उसका भी विस्तृत अध्ययन हुआ है। कोणार्क के सूर्यमदिर और महाबलिपुरम् के सागरतट पर बने मदिर के वैज्ञानिक संरक्षण में कई जटिल समस्याओं का सामना करना पडा है। इन मंदिरो को क्षति पहुचाने वाले कारणो का पता शैलवर्णनात्मक (patrographic)



पुनरुद्धार से पहले (ऊपर) और पश्चात् (नीचे) एक प्राचीन चित्र का रूप



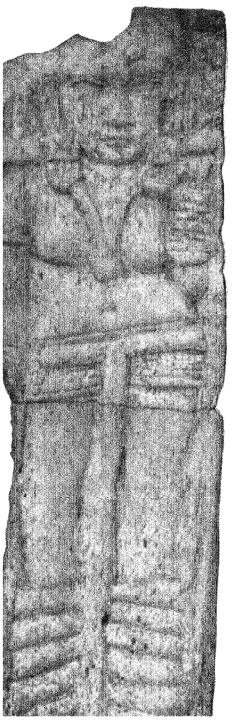


रासायनिक उपचार से पूर्व एक कांस्य मूर्ति। काल के प्रभाव ने उसका रूप कितना बिगाड़ दिया है।



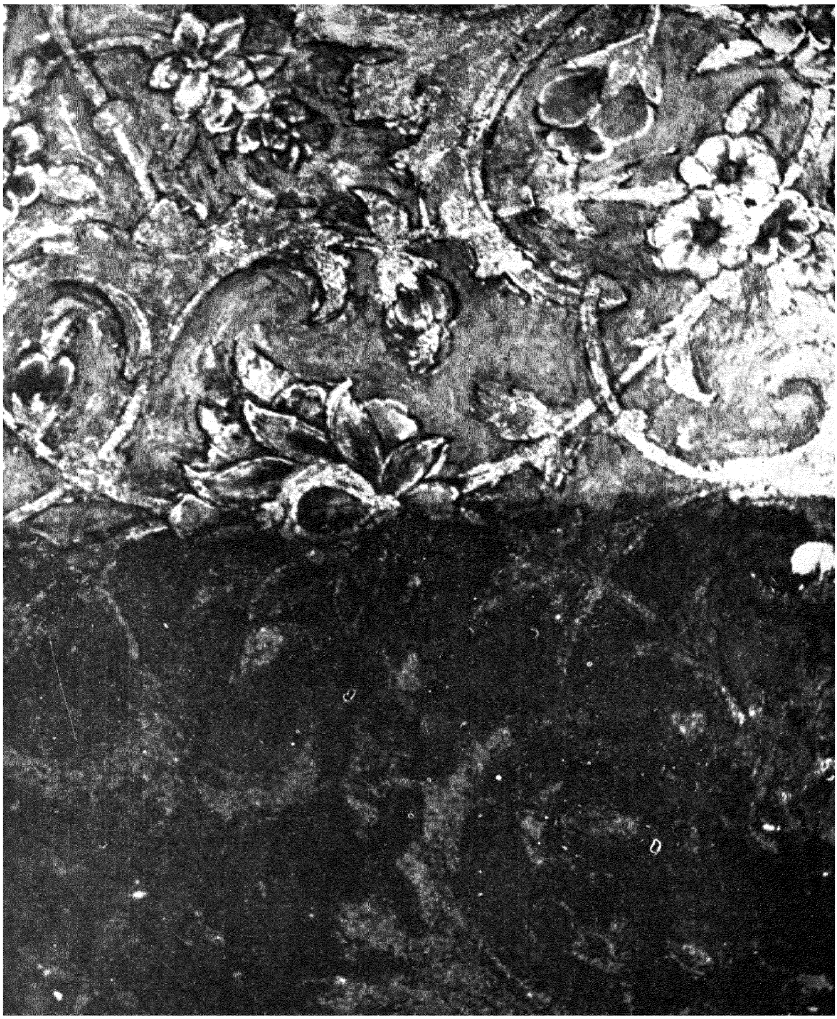
रासायनिक उपचार के पश्चात् वही मूर्ति। लगता है जैसे अभी बोल पड़ेगी।

हड्डी पर बनी आकृति
रासायनिक उपचार से पहले





वही आकृति रासायनिक
उपचार के पश्चात्



अंशत. पुनरुद्धार किया गया एक चित्र

परीक्षण तथा रासायनिक विश्लेषण द्वारा किया गया है। पता चला है कि कोणार्क में प्रयुक्त अति लोहयुक्त (ferrugenous) खांडोलाइट (Khandolite) पत्थरो को, फेल्सपार के चीनी मिट्टी से भरे जाने से और तामड़े (garnets) के चूने भरे जाने से क्षति पहुंची है। इसके फलस्वरूप क्षारक द्रव्य बह गये हैं, सिलिका निकल गयी है और सेस्क्वि आक्साइडो की मात्रा बढ गयी है। भारत सरकार द्वारा नियुक्त कोणार्क समिति के अनुरोधो के अनुसार वहा के मदिरो का रासायनिक उपचार से संरक्षण करने का काम शीघ्र ही आरम्भ होगा। महाबलिपुरम् के सागरतट पर बने मदिर पर कई शताब्दियो से समुद्र की लहरें टकराती रहने के कारण उसमें समुद्र के पानी में उपस्थित लक्षण भर गये है। इसके फलस्वरूप मदिर के स्थूल कलात्मक पत्थर चूर-चूर हो रहे है। लवणों का प्रभाव अविरल हो रहा है, क्योकि उस पर लगातार लवणयुक्त हवा और सीकर टकराते है। ऐसी चरम प्रतिकूल परिस्थिति में किसी भी उपाय से उसका सरक्षण करना असंभव प्रतीत होता है। मंदिरों, लेणो, पलस्तरो तथा पत्थर के या अन्यथा बने स्मारको का संरक्षण करना एक बहुत जटिल काम है। दूसरे देशो मे इस हेतु नवीनतम पद्धतिया विकसित की गयी है। सरक्षणार्थ उनका अध्ययन और उपयोग यथासभव हमारे देशो में भी हो रहा है।

कुछ प्राचीन स्मारक भित्ति-चित्रो से अलकृत है। चित्र बहुत नाजुक होते है। उनको कई कारणो से क्षति पहुच सकती है। अत. उनमें जो क्षति पहुच रही होगी, उसको जल्द रोकने और आगे की क्षति से बचाने की नितात आवश्यकता है। भारत में कई स्थानो पर भित्तिचित्रो का उपचार और सरक्षण के सम्बन्ध मे विपुल काम हुआ है। अजता और एलोरा के भित्तिचित्रो के सरक्षणार्थ सदैव सजगता बरती जाती है। वहा के चित्रो के रग के फफोले या पपडी या वहा का पलस्तर निकल न आए, इस हेतु सुयोग्य विलायकों (solvents) धावनद्रव्यों (detergents) और सरक्षक द्रव्यों का उपयोग किया गया है। यहा अनेक चित्र काले पड़ गये हैं। उनकी बारीकिया अस्पष्ट हो गयी है। उनको रासायनिक द्रव्यो से व्यवस्थित रीति से धोकर पुनरुज्जीवित किया गया है। जो रग उखड रहे थे, उनको फिर अन्त.स्तर पर चिपकाया गया है और गिलावा फिर दीवार मे पक्का किया गया है।

इसी प्रकार का काम बाघ, बादामी, सित्तनवासल की गुफाओ में और काजीवरम्, तजोर, लेपाक्षी, सोमपल्ले, चादा तथा तलबाहत के मदिरो मे भी हुआ है।

फतेहपुर-सीकरी और सिकदरा के स्मारकों मे पाये जाने वाले चित्रो, तथा एतमादुद्दौला (आगरा) लाल किला (दिल्ली), खुसरोबाग (इलाहाबाद) और ताबेकर वाडा (बडौदा) के चित्रो का उपचार एव सरक्षण नवीनतम वैज्ञानिक पद्धतियो और सामग्री का उपयोग कर किया गया है।

भारत मे प्राचीन जलवायु विषयक परिस्थिति का अध्ययन करने के हेतु भूकालानुक्रमिकीय अनुसधानो का उपक्रम हाल ही मे किया गया है। वीरभानपुर के प्रस्तरयुगीन अस्त्रविशेषो का उत्खनन कुछ वर्ष पहले हुआ था। उनका अध्ययन भूकालानुक्रमिकीय दृष्टिकोण से हुआ है और उसके निष्कर्ष प्रकाशित भी किये गये है। इस दिशा में और भी काम हुआ है, जिसके निष्कर्ष शीघ्र ही प्रकाशित किये जायेंगे। हाल ही मे जिनका उत्खनन हुआ है, ऐसे स्थानों मे प्राप्त सामग्री की भी जाच हो रही है। वहा की मिट्टियों का विश्लेषण हो रहा है। इसमें यांत्रिक विश्लेषण, अध्ययन, फास्फेट दथा पासे की पंहचान आदि बातो की ओर ध्यान दिया जा रहा है। इस अनुसधान के निष्कर्ष यथासमय प्रकाशित किये जायेगे।

(रूपान्तर : श्रीधर लिमये)



इंडोनेशिया का पुरातत्व और मूर्तिकला

डा० एम० शरदजितो

विदेशों में पुरातत्व

इस समय इडोनेशिया मे मूर्त्तिकला का नवोन्मेष हो रही है। हिन्दू जावा युग मे इडोनेशिया की मूर्त्तिकला अपने चरम शिखर पर पहुच चुकी थी, किन्तु इस्लाम युग और डच साम्राज्यवाद के अधीन उसे काफी धक्का पहुचा।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

डुबोई और इडोनेशिया मे त्रिनील के पास 1892 मे सबसे पुरानी खोपडी और जाघ की हड्डी मिली थी। वह एक ऐसे व्यक्ति की लगती है, जो सीधा चल सकता था और सम्भवत पुरुषाभ आदिम और मानव के बीच का प्राणी था। डुबोई ने उस स्थान के भू-स्तर को तृतीय काल का बताया है, यद्यपि कुछ अन्य विचारक उसे नवतम काल का बताते हैं। कुछ पत्थर कलातथ्य भी मिले है जिनसे पता चलता है कि उनको काम मे लाने वालो का विकास काफी आरभिक काल का था। कुछ विचारक उन्हे होमिनोआई का निकटवर्ती मानते है।

वान कोइ निगस्वाल्ड ने इस दिशा में बीसवी सदी के चौथे दशक मे काफी नयी खोजे की है और उन्हे कुछ छ लाख वर्ष पुरानी खोपडिया और हड्डिया मिली है। इसी समय के आस-पास सोलोएनसिस मानुष की हड्डिया मिली है, जिनका समय चालीस हजार ई० पू० माना गया है।

इडोनेशिया मे प्राप्त इन अवशेषो और कलातथ्यो के आधार पर इन प्रागैतिहासिक युगो का विशद ढाचा नही खडा किया

जा सकता । सास्कृतिक युगों के निरूपण को भी साथ-साथ ले, तो मानव युग अवस्था पूर्वपाषाण समय से मेल खाती है। फिर उत्तर पाषाण समय है, किन्तु बीच मे मध्य-पाषाण समय भी है।

इडोनेशिया मे आरेखन का पहला सकेत मध्य पाषाण युग की एक पत्थर पर कुरेदी गई आख है। सेलीबीज मे इसी समय के लोगो द्वारा गुहादीवारो पर चित्रित भालू और हाथ के चित्र भी मिले हैं। पागर आलम मे मुहम्मद आमीन को दीर्घ-पाषाण कालीन पत्थर पर एक मनुष्य की मूर्त्ति भी मिली है। बाद के समय के हाथीदात के औजार, चमकहीन कुल्हाडिया, सीग, हड्डिया और खोपडिया भी बहुत सख्या मे मिली हैं।

उत्तर पाषाण सस्कृति के अवशेषो से पता चलता है कि वे लोग छोटी-छोटी नावे चलाना, खेती, पशु-पालन, बढ़ईगिरी, बुनाई और कुम्हार का काम जानते थे। ये मलय-पोलीनेशियनो के आदि पुरुष थे। ये युन्नान से मलक्का होकर दक्षिण की ओर बढे। इनका समय 2,000 ई० पू० के आस-पास माना जाता है।

कास्य युग या प्रागैतिहासिक दीर्घपाषाण समय की मूर्त्तिया इडोनेशिया की पहली मूर्त्तिया हैं। डाग सौग सस्कृति का समय 200-300 ई० पू० माना जाता है। पूजा की दीर्घपाषाण पट्टिया और दूसरी पट्टिया भी मिली हैं। इनके अलावा कुछ मूर्त्तिया भी मिली हैं। फ्लोरेस की मूर्त्तियो की तुलना मे पसेमा की की मूर्त्तिया ज्यादा अभिव्यजनापूर्ण हैं। वान डेर हूप के अनुसार ये सब सस्कृति-तथ्य हिन्दू सस्कृति के आगमन से पूर्व भी विद्यमान थे।

हिन्दू संस्कृति का सम्पर्क

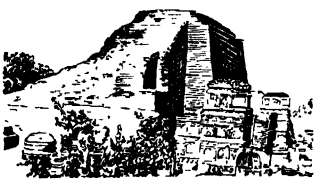
भारत और इडोनशिया दोनो के इतिहासो और दूसरी सामग्री की छानबीन के बाद भी क्रोम ईसा से पूर्व दोनो देशो के राजनीतिक सपर्क का कोई साक्ष्य न पा सका। एक चीनी उल्लेख है कि 132 ईसवी मे ये-ताओ (यवद्वीप) के नरेश पियन ने एक दूत चीन भेजा था। ग्रीक लेखक टोलोमीन भी 165 ईसवी मे अपने भूगोल विषयक ग्रंथ मे जवा दियो (यव द्वीप) का उल्लेख किया था। दोनो ही उल्लेखो में सस्कृत नाम का प्रयोग है, इससे क्रोम का निष्कर्ष है कि इससे काफी पहले इंडोनेशिया मे हिन्दूकरण शुरू हो गया गया होगा। ज्यादा प्रत्यक्ष साक्ष्य तो सेलीबीज के निकट सिकेनडेग से प्राप्त पहली शती ईसवी की एक बुद्ध-मूर्त्ति ही है। इसके बाद के अवशेषो मे चौथी शती ईसवी के वे चार यज्ञ यूप हैं जो मोइआरा कामन मे मिले हैं और जिन पर पल्लव शैली में सस्कृत की खुदाई की हुई है। इस प्रकार आरम्भ से ही इडोनेशिया मे बौद्ध और हिन्दू दोनो ही धर्मो के प्रभाव देखने को मिलते हैं।

हिन्दू प्रभाव का चरमोत्कर्ष सुप्रसिद्ध बोरोबुदूर (राजा शैलेन्द्र के समय आठवी शती मे निर्मित), प्रामबनन (राजा बलितुग के समय दसवी शती मे निर्मित) और पालेमबाग (राजा श्रीविजय के समय निर्मित) मन्दिरो मे देखने को मिलता है। इन मन्दिरो मे हजारो छोटी-बडी मूर्त्तिया हैं। इसके बाद के युग मे ऐसे बडे मन्दिर तो नही बने, पर मूर्त्तियो की परम्परा जारी रही।

इसके बाद हिन्दुस्तान के व्यापारियो के जरिए ही इस्लाम का उद्भव हुआ और लोग धीरे-धीरे उस मत मे दीक्षित हो गये। इसलाम मूर्त्तिया बनाने की अनुमति नही देता, अत मूर्त्ति-कला को कुछ धक्का भी पहुचा। पत्थर का काम मकबरो और कब्रो के पत्थरो को तराशने तक ही सीमित हो गया। बाली जैसे द्वीपो मे जहा इसलाम का प्रवेश कम हुआ, मूर्त्तिकला की परम्परा जीवित बनी रही। 17 अगस्त, 1945 को स्वाधीनता मिलने के बाद कला के सर्वांगीण विकास मे काफी तेजी आयी। इसलाम और डच काल मे बाह्य प्रभावो के कारण इडोनेशियाई जनता की मूर्त्ति निर्माण प्रवृत्ति दबी हुई रही थी, पर स्वाधीनता के बाद सहसा वह धारा नये आवेश के साथ स्पष्ट हुई।

इस प्रकार इडोनेशिया में स्थापत्य और मूर्त्तिकला का चरमोत्कर्ष काल आठवी से दसवी सदी ईसवी तक का है, जब बोरोबुदूर (ऊचाई 35 मीटर, लबाई 120 मीटर) और प्रामबनन जैसे मन्दिरो का निर्माण हुआ था।

(रूपान्तर : रमेशचन्द्र शर्मा)



बिलोचिस्तान की
प्रागैतिहासिक संस्कृति

रामकिशोर शर्मा

भारत के पड़ोसी बिलोचिस्तान की प्राचीन सभ्यता का जो उद्घाटन हाल मे हुआ है, उससे स्पष्ट होता है कि वहा की प्रागैतिहासिक सभ्यता पर भारतीय सभ्यता का बहुत गहरा प्रभाव था। उक्त अवशेषो से यह भी ज्ञात होता है कि उस समय भारत तथा बिलोचिस्तान मे व्यापारिक सम्बन्ध भी था।

जिस प्रकार सिन्धु घाटी की सभ्यता के उद्घाटन ने यूरोपीय विद्वानो को भारतीय सभ्यता की प्राचीनता के सम्बन्ध मे अपना मत बदलने के लिये बाध्य किया तथा भारतीय सभ्यता कम से कम तीन हजार ई० पू० तक की मानी जाने लगी, उसी प्रकार बिलोचिस्तान की प्राचीन सभ्यता भी इस बात की साक्षी है कि वहा बहुत प्राचीन काल मे—आज से कम से कम पाच हजार वर्ष पूर्व मनुष्यो की बस्तिया ही नही बसी हुई थी बल्कि उन बस्तियो पर, उन बस्तियो की सभ्यता पर भारतीय सभ्यता का प्रभाव भी था। इससे यही अनुमान होता है कि भारतीय सभ्यता बिलोचिस्तान की सभ्यता से अधिक प्राचीन रही होगी। सिन्ध और बिलोचिस्तान दोनो शुष्क, रेतीले एव आकर्षणहीन प्रदेश है, किन्तु सयोग से इन्ही दोनो प्रदेशो मे सबसे पुरानी मानव बस्तियो के प्रमाण मिलते है, जबकि साधारण विश्वास यह है कि सभ्यता का प्रारम्भ तथा विकास नदियो के तट के हरे भरे प्रदेशो मे हुआ। अत. कुछ विद्वानों का अनुमान है कि प्राचीनकाल में सम्भवतः पजाब और सिन्ध का जलवायु आज जैसा शुष्क न रहा होगा, किन्तु ऐतिहासिक प्रमाणो से ऐसी कोई बात सिद्ध नही होती। लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व जब सिकन्दर के बहु से साथी बिलोचिस्तान होकर अपने देश को लौटे थे तो उन्होने भ बिलोचिस्तान को शुष्क, रेतीले तथा नगे पहाडो से ढका हुआ प्रदेश बताया था। इसलिए सिन्ध तथा बिलोचिस्तान प्राचीन काल से ही प्राय वैसे ही प्रदेश रहे है जैसे कि वे आज है और इन देशो मे यद्यपि सबसे प्राचीन बस्तियो के चिन्ह मिले है किन्तु उसका अर्थ यह न समझना चाहिए कि उस समय भारत के अन्य किसी भाग मे मानव बस्तिया न रही होगी। अनुमान यही कहता है कि सिन्ध और बिलोचिस्तान मे मानव बस्तिया बसने तथा सभ्यता का प्रारम्भ होने से बहुत पूर्व भारत के शेष भागों में सभ्यता का विकास उन्नत स्थिति को पहुच चुका होगा—यद्यपि इसके प्रमाण मिलना अभी शेष है। सिन्धु घाटी की सभ्यता इसी विकसित भारतीय सभ्यता का एक अग थी तथा उस सभ्यता का प्रभाव पड़ोसी देश बिलोचिस्तान की सभ्यता पर तथा आगे सुमेर आदि देशो की सभ्यता पर भी पड़ा।

ऐतिहासिक अन्वेषको तथा पुरातत्व प्रेमियों के प्रयत्नों से, जिन्हे सर औरेल स्टीन नामक एक अग्रेज विद्वान् मुख्य है, बिलोचिस्तान के अनेक प्रान्तों में पुरानी बस्तियों तथा उनकी सभ्यता का पता लगा है। औरेल स्टीन ने सन् 1926 से सन् 1928 तक बिलोचिस्तान के कई भागों में कार्य करके अति प्राचीन तथा प्रागैतिहासिक काल के

महत्वपूर्ण सामग्री खोज निकाली। दक्षिणी बिलोचिस्तान के मकरान, खारान तथा झालावान क्षेत्रों में भी जहा इन दिनों आबादी बहुत कम है बहुत पुरानी प्रागैतिहासिक बस्तियो का पता लगा है जिनके टीले या 'टेल' (खण्डहरो के ढेर) आज भी विद्यमान है। ये टीले इस बात के प्रमाण है कि यहा किसी अज्ञात काल मे बहुत समय तक—सम्भवत कई शताब्दियों तक—मनुष्यो की बस्तिया रही थी। इन टीलो से, जिनमे से कई सौ-सौ फीट तक ऊचे है, पुराने मिट्टी के बर्तन, मिट्टी की मानवी मूर्तिया, पशकाई नदी की घाटी मे बने हुए दो बड़े मजबूत बाध (जिनके द्वारा फसल की सिचाई की जाती थी) आदि ऐतिहासिक महत्व की वस्तुए प्राप्त हुई हैं। इनसे यह ज्ञात होता है कि प्राचीन बिलोचिस्तान का सम्बन्ध सिन्ध के अतिरिक्त ईरान, मेसोपोटामिया आदि देशो से भी था।

बिलोचिस्तान के विभिन्न प्रान्तो से प्राप्त उपर्युक्त सामग्री के आधार पर उनकी भिन्नता सूचक विशेषताओ को दृष्टि मे रखते हुए, इतिहास लेखकों ने बिलोचिस्तान की प्राचीन सभ्यता को कई भागो में बाटा है यथा क्वेटा सभ्यता, उमरी-नाल सभ्यता, कुल्ली सभ्यता, जोब-सभ्यता आदि। इन समस्त सभ्यताओ पर दृष्टि डालते हुए इस बात पर विचार किया जायगा कि इन पर भारतीय सभ्यता का प्रभाव कहा तक पड़ा है।

क्वेटा सभ्यता यद्यपि बिलोचिस्तान की सबसे पुरानी सभ्यता मानी जाती है, किन्तु इस सभ्यता की बहुत कम वस्तुए अभी तक प्राप्त हो सकी हैं, अत. यह अधिक महत्व की नही समझी जाती।

दूसरी सभ्यता का नाम 'नाल-अमरी' सभ्यता है। दक्षिणी बिलोचिस्तान मे नाल स्थान पर एक समाधि (कब्र) का उत्खनन हरगीव नामक एक अग्रेज अन्वेषक ने कराया था तथा उसी के पास नन्दारा स्थान का पता औरेल स्टीन ने लगाया था। दोनो स्थानों में से मिट्टी के बर्तन आदि प्राप्त हुए है, उनमे साम्य होने के कारण दोनो स्थान एक ही सभ्यता के अन्तर्गत माने जाते है। इसी प्रकार सिन्ध का 'अमरी' स्थान भी इसी सभ्यता के अन्तर्गत माना जाता है। नाल के कबरस्तान से बहुत से मुर्दों की हड्डिया मिली। ये मुर्दे भूमि मे गाडे जाते थे। कुछ मुर्दों के साथ मिट्टी के बर्तन भी गडे हुए मिले। एक स्थान पर ताबे की एक आरी भी मिली, माला के बहुत से गुरिये भी नाल मे मिले। मिट्टी के बहुत से बर्तनों पर काले, लाल, पीले आदि रगो की चित्रकारी भी मिली।

इन बर्तनों पर पशुओं के चित्र भी बनाये गये है। ये चित्र शेर, मछली तथा चिड़ियों आदि के है जो प्राय. नंदारा स्थान मे प्राप्त बर्तनो पर मिलते है। इनमे उल्लेखनीय बात यह है कि कुछ बर्तनों पर पीपल के पत्तो के चित्र हैं। इनके सम्बन्ध मे 'प्री-हिस्टोरिक इडिया' के लेखक श्री स्टुअर्ट पिगोट ने स्वीकार किया है कि ये पीपल के पत्तों के चित्र सम्भवतः सिन्धु घाटी के प्रभाव के कारण है, क्योंकि हड़प्पा स्थान पर प्राप्त बर्तनो पर भी ऐसे पीपल के पत्तो के चित्र मिलते है। वास्तव में भारत ही एक ऐसा देश है जहां प्रागैतिहासिक काल से ही पीपल को पवित्र माने जाने के प्रमाण मिलते है तथा यह परम्परा आज तक वैसी ही चली आ रही है। आज भी भारतवासी पीपल मे देवताओ का वास मानकर उसे पूजते है। मन्दारा स्थान मे ही एक ताबे की चूडी (हाथ मे पहनने की) प्राप्त हुई तथा ताबे के कुछ और औजार भी मिले। नाल की एक कब्र से एक ऐसी मोहर प्राप्त हुई जिस पर एक सर्प के ऊपर पैर रखे हुए एक गिद्ध का चित्र खुदा हुआ था। यह मुहर 'स्टीटाइट' की बनी हुई है तथा उसकी सतह सफेद है। इसी प्रकार हडप्पा में प्राप्त अनेक मुहरो की सतह सफेद है। अर्थात् मुहर पर भी हडप्पा का प्रभाव स्पष्ट दिखायी देता है। नाल मे प्राप्त गुरिये भी उसी वस्तु के बने हुए है जिसके हडप्पा के गुरिये।

जोब सस्कृति की एक बडी विशेषता, जिस पर भारतीय प्रभाव की सभावना दिखाई देती है, मृतको का जलाया जाना है, क्योकि वहा मृतको को जलाए जाने के चिन्ह काफी परिमाण मे मिले है। कुल्ली सस्कृति मे भी मृतको के जलाए जाने के बहुत से प्रमाण मिलते हैं। विद्वानो का अनुमान है कि आदिम काल मे ससार मे सर्वत्र मृतकों को गाड देने की ही प्रथा थी। बाद मे अनेक देशो मे मृतकों के जलाए जाने की प्रथा प्रचलित हुई। ऐसे देशो मे भारत मुख्य था। यजुर्वेद मे कई स्थानो पर मृतको को जलाने का स्पष्ट आदेश दिया गया है। सम्भवत. भारत से ही यह प्रथा बिलोचिस्तान तथा पश्चिम के सुमेर आदि अन्य देशो में पहुची। सुमेर मे भी मृतको को जलाये जाने के प्रमाण मिलते है। सिन्धु सभ्यता के मृतको को जलाए जाने के अनेक प्रमाण मिले है, जिनसे उक्त कथन का समर्थन होता है। नाल के ताबे के औजार भी हडप्पा के औजारो से मिलते जुलते है। इतना ही नही श्री स्टुअर्ट पिगोट ने बताया है कि गगा की तराई मे जो औजार प्राप्त हुए हैं वे भी इन्ही औजारो से मिलते जुलते हैं। इससे अनुमान होता है कि गगा की तराई से लेकर सिन्धु घाटी तक की तथा बिलोचिस्तान मे नाल स्थान तक की सस्कृति प्राय एक ही थी।

दक्षिणी बिलोचिस्तान की कुल्ली सस्कृति पर भारतीय सस्कृति का प्रभाव और अधिक स्पष्ट दिखाई देता है। कुल्ली स्थान के आस पास मिट्टी के जो अनेक बर्तन मिले, उनकी चित्रकारी शेष स्थानो मे प्राप्त बर्तनो से भिन्न प्रकार की थी। इसी प्रकार वहा पर मिट्टी की बनी हुई और पकाई हुई स्त्रियो की तथा पशुओ की जो अनेक मूर्तिया प्राप्त हुईं उनके कारण भी यह कुल्ली की सस्कृति बिलोचिस्तान की शेष सस्कृतियो से भिन्न समझी जाती है। इस सस्कृति की वस्तुओ—लाल बर्तनो पर काले रग की चित्रकारी, लम्बे छिद्रयुक्त बर्तन आदि—पर भी हडप्पा की छाप स्पष्ट दिखायी देती है। कुछ मिट्टी के बर्तनो पर पशुओ--गाय बैल के चित्र भी प्राय वैसे ही हैं जैसे भारतीय प्रागैतिहासिक सस्कृति मे प्राप्त हुए है।

इन चित्रो के अतिरिक्त कुल्ली सस्कृति में जो अन्य महत्वपूर्ण वस्तुएं प्राप्त हुई है वे है स्त्रियो की तथा पशुओ की मिट्टी की

बनी हुई तथा पकाई हुई अनेक छोटी छोटी मूर्तिया । पशुओ की मूर्तिया बहुत बडे परिमाण मे प्राप्त हुई है । ओरेल स्टीन को कुल्ली के पास एक ही स्थान पर ऐसी 66 मूर्तिया मिली तथा एक अन्य स्थान पर 85 मूर्तिया प्राप्त हुई और ये प्राय: सभी भारतीय गाय-बैलो के आकार-प्रकार की है । कुछ लोगो का अनुमान था कि ये बच्चो के खिलौने रहे होगे । पशुओ की मूर्तिया सभव है बच्चो के लिये खिलौने के रूप मे ही बनायी गयी हो, किन्तु स्त्री मूर्तियो के सम्बन्ध मे ऐसी सभावना कम दिखायी देती है । अधिक सभव यह है कि वे उन देवियो की मूर्तिया है जिन्हे उस काल की स्त्रिया अपने अपने घरो मे हाथ से बनाकर पूजती थी । हिन्दू घरो मे आज भी स्त्रिया गौरी आदि की ऐसी छोटी छोटी मूर्तिया बनाकर पूजती है । यह प्रथा प्रागैतिहासिक परम्परा के आधार पर ही चली आयी हुई ज्ञात होती है । सम्भव है प्रागैतिहासिक काल मे इस मातृ पूजा का चलन आज से कही अधिक हो ।

इन देवी मूर्तियो की एक विशेषता यह है कि वे सब कमर तक ही बनी हुई है और उनके नीचे चपटी तली है जिससे वे खडी रह सके । इन मूर्तियो के हाथ कमर पर टिके हुए बनाये गये है— केवल एक मूर्ति के हाथ छाती से ऊपर रखे हुए बनाये गये है । इन सभी मूर्तियो मे मुख की आकृति भद्दी और विचित्र सी है जिसमे स्पष्ट है कि इन देवियो के मुख की आकृति की सुन्दरता की ओर कोई ध्यान नही दिया गया है । इन मूर्तियो के कानो मे जैसे आभूषण पहनाये गये है, वैसे आभूषण भी हडप्पा मे प्राप्त हुए है । कुछ मूर्तियो के गले मे कौडियो की मालाए भी पडी हुई मिली । इन मूर्तियो का जो मुख्य भूषण है और जिस पर भारतीय छाप सबसे अधिक स्पष्ट दिखायी देती है वह है मूर्तियो के हाथो की चूडिया । चूडिया बाये हाथ में अधिक पहनायी गयी है । कहने की आवश्यकता नही कि चूड़िया आज भी भारतीय स्त्रियो का मुख्य आभूषण है। यही नही वे सुहाग के मुख्य चिन्ह के रूप मे मानी जाती है । एक मूर्ति के सम्बन्ध मे यह भी अनुमान किया गया है कि वह साड़ी जैसा कोई वस्त्र पहने रही होगी ।

कुल्ली के पास मेही स्थान पर एक ऐसी मिट्टी की चिडिया मिली, जो अन्दर से खोखली थी तथा जिसकी पूछ मे एक छेद था जसमे फूक मारने से सीटी जैसी आवाज निकलती थी । ऐसी सीटीदार चिडिया भी हडप्पा मे बहुत प्राप्त हुई है अत: अनुमान है कि कुल्ली मे यह चिड़िया हडप्पा से ही पहुची होगी । इसी प्रकार एक अन्य मूर्ति एक बैल की मिली है जिसके नीचे पहिये लगे हुए है । मिट्टी के ऐसे छोटे-छोटे पहिये तथा उनके टुकड़े कई अन्य स्थानो पर भी प्राप्त हुए है । मेही स्थान पर कई पहियेदार गाड़ियो के टुकड़े भी प्राप्त हुए है । सयोग से ऐसी पहियेदार गाड़िया भी हड़प्पा की खुदाई मे बहुत-सी प्राप्त हुई है अत ऐसी गाड़ियां भी—जो सभवत. बच्चों के खेलने के लिये ही बनायी जाती होगी—बिलोचिस्तान मे हडप्पा से ही गयी हुई जान पडती है । श्री पिगोट का भी ऐसा ही मत है । क्योकि बिलोचिस्तान जैसे पहाड़ी प्रदेश में बैलगाड़ियो की कोई उपयोगिता नही हो सकती, जिसको देखकर ये मिट्टी की गाडिया बनायी गयी हो । इसके विपरीत सिन्धु घाटी के मैदान मे बैलगाड़िया काम मे लायी जाती होगी और उन्ही की नकल के रूप मे सिन्ध मे तथा बिलोचिस्तान में भी खिलौनो के रूप मे मिट्टी की गाडिया बनायी गयी होगी ।

मुल्ली के पास मेही स्थान के कबरिस्तान मे एक ताबे का शीशा (आइना) भी प्राप्त हुआ । उसका व्यास पाच इच का था, तथा इसमे ताबे की ही मूठ भी बनी हुई थी, जो मिट्टी की स्त्री मूर्तियो के ही आकार प्रकार की थी । ऐसे शीशे हडप्पा मे तो नही मिले किन्तु मोहेजोदडो मे बिना मूठ का एक शीशा प्राप्त हुआ है जिससे प्रकट होता है कि उस प्रागैतिहासिक युग मे भी शृगार करते समय स्त्रिया शीशे का प्रयोग करने लगी थी ।

मेही स्थान पर ही एक ऐसा बाट भी मिला है जो हडप्पा मे मिले हुए बाट से बिल्कुल मिलता जुलता है, इससे यह प्रकट होता है कि सिन्धु और बिलोचिस्तान के बीच प्रागैतिहासिक काल मे व्यापारिक सम्बन्ध भी था तथा या तो सिन्ध के व्यापारी बिलोचिस्तान मे आते जाते रहते थे या फिर सिन्ध के ही बाट बिलोचिस्तान में भी चलते थे । इस प्रकार बिलोचिस्तान के कुल्ली स्थान पर प्रागैतिहासिक काल की जो अनेक वस्तुए प्राप्त हुई है, उन पर हडप्पा तथा मोहेजोदडो का तथा इस प्रकार भारतीय सभ्यता का प्रभाव स्पष्ट है ।

इस सम्बन्ध मे एक अन्य प्रमाण भी उल्लेखनीय है । हडप्पा मे जो एक महत्वपूर्ण कला की वस्तु प्राप्त हुई है वह है एक नाचती हुई लकडी की कासे की मूर्त्ति तथा इसमे विशेष बात यह है कि इस मूर्त्ति के सिर के बालो की सजावट का जो ढग है वह पूर्णतया वैसा ही है जैसा कि कुल्ली मे प्राप्त मिट्टी की देवी मूर्त्तियो के सिर के बालो का है । इस मूर्त्ति के हाथ मे चूड़िया भी है ।

उपर्युक्त अनेक प्रमाणो के आधार पर यह मानने मे कोई आपत्ति नही जान पडती कि बिलोचिस्तान मे प्रागैतिहासिक काल मे सभ्यता का, वहा के जन-जीवन का जो रूप था वह सिन्धु घाटी की सभ्यता से बहुत अशों मे प्रभावित हुआ था । सिन्धु घाटी की सभ्यता भारतीय सभ्यता का ही एक अग थी । अत: यह भी माना जा सकता है कि उस समय भारतीय सभ्यता इतनी उन्नत अवस्था को पहुच चुकी थी जो आसपास के प्रदेशो पर अपना प्रभाव तथा अपनी छाप डालती थी ।

ईरान में पुरातत्व

महमूद तफज्जुली

भारत की तरह ईरान की भूमि भी मानव सभ्यता के अत्यन्त पुरातन केन्द्रो में से एक है। अतीत की मूक सभ्यता के अनेक सस्मरण-रत्न इस प्राचीन देश की मिट्टी के तले दबे पड़े है।

ईरान, पुरातत्वज्ञो और उन सबके, जो प्राचीन इतिहास की साक्ष्य सामग्रियो और मानव सभ्यता के स्रोत खोजने मे अभिरुचि रखते है, खोज कार्यो के लिए उर्वरा भूमि रही है। अतीत की महान् और भव्य सभ्यता के अवशेष जहा ईरान की भूमि के गर्भ में छिपे मिलते है, वहा वे पर्सिपोलिस के भग्नावशेषो, शिलालेखो और कुत्बो और पर्वतीय पार्श्वों पर की मूर्तिकला और वास्तु-स्मारको के रूप में भी, देश के विभिन्न स्थानो और घाटियो मे बिखरे पडे है।

विज्ञान ससार मे पुरातत्वविद्या का प्रादुर्भाव अपेक्षाकृत नयी चीज है। अभी इस की आयु सौ वर्ष से अधिक की नही हुई। ईरान में इसकी ओर पिछली शताब्दी के अन्त मे ध्यान आकृष्ट हुआ। जब पुरातत्वज्ञो की ओर से मिस्र की प्राचीन भूमि के देवालयो और पुराने शिलालेखो की चित्र-लिपि (हियरो ग्लिफ) को पढने की चेष्टा का सूत्रपात हुआ, उसी समय उन्होने ईरान की पहाडियो और घाटियों की गोद मे छिपे कील (कुनीफार्म) लेखो के रहस्योन्मीलन के लिए भी कमर बाधी। उसी काल मे जब मोहेन-जोदडो और हडप्पा की सभ्यता के चिह्नों का आविष्कार करने वाले खुदाई कार्यों के प्रयत्न चल रहे थे, ईरान मे भी पुरातत्वीय खुदाइयो द्वारा प्राचीन सभ्यताओ जैसे कि दक्षिण मे शूश, तेहरन के समीप रेई, कशान के निकट सियालक और दमगन, हमादान, गौरगान, गिलान और आजर्बेजान के आस-पास अन्य सभ्यताओं के अवशेष मिले।

पुरातत्व सम्बन्धी प्रथम खोजो का सूत्रपात लगभग साठ वर्ष पूर्व कुछ फ्रांसीसियो ने किया। उन्होने खुजेस्तान में खुदाई कार्य सचालन करने के लिए ईरान सरकार की मजूरी ली। उन दिनो ईरान सरकार का ध्यान पुरातत्वीय खुदाइयो के महत्व की ओर नही गया था, इसी कारण अनेक अमूल्य पुरातत्व-कृतिया देश के बाहर पहुच गयी थी। 'हमूरबी सहिता' की प्रसिद्ध अश्म-शिला, जिसे पेरिस के लूवर सग्रहालय मे गौरव का स्थान मिला हुआ है, दक्षिण ईरान के शूश स्थल से खोज में प्राप्त हुई थी। यह अनमोल कृति उन कितने ही प्राचीन अवशेषो मे से एक है, जो ईरान में खुदाई से हाथ लगे है।

ईरान मे राजनैतिक और सामाजिक स्थिति-परिवर्तन ने ईरान की जनता और सरकार दोनो को प्राचीन भूमिगत सभ्यता की निधियो के महत्व से अवगत कराया और उन्हे परिरक्षित करने की आवश्यकता के सम्बन्ध मे सजग बनाया। कोई चालीस वर्ष हुए कि ईरान में पुरातत्व सम्बन्धी कानून बनाया गया और कुछ वर्ष बाद पुरातत्व-विभाग की स्थापना की गयी। पुरातत्वीय खुदाइयो ने वैज्ञानिक

रूप धारण किया और इनके फलस्वरूप दिन प्रतिदिन अधिकाधिक मूल्यवान वस्तुएं प्रकाश में आयी ।

आज तेहरान सग्रहालय ईरान का सर्वोत्तम सग्रहालय है । यह गौरव की बात है कि इसमें ऐसी कृतिया सगृहीत है, जिनकी मिसाल दुनिया भर में नही । दारा महान् की स्वर्ण और रजत चक्रिकाए और पट्टिकाए जो पर्सिपोलिस के प्रासादो के आस्थानो मे आधार-शिलाओ के स्थान पर लगायी गयी है, ईरान की अत्यन्त मूल्यवान् ऐतिहासिक अवशेष-कृतिया है, जो तेहरान सग्रहालय में परिरक्षित है ।

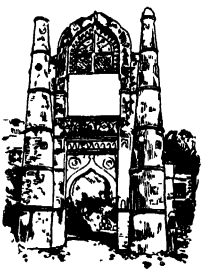
ईरान में पुरातत्व सम्बन्धी खुदाइयों का काम दो प्रकार से चल रहा है · प्रथम तो वैज्ञानिक कार्य है जो ईरान और विभिन्न देशो के विदेशीय विशेषज्ञो के सहयोग से कार्यान्वित हो रहा है। फिर दूसरे खुदाई कार्य है, जिन्हे ईरान-विशेषज्ञ और पुरातत्व-विशारद स्वय कर रहे है । ईरान मे गत कुछ वर्षो के दौरान बहुमूल्य कृतिया खोज निकाली जा चुकी है । इनमे से सर्वोत्कृष्ट वस्तुओ मे एक स्वर्ण चषक (सोन-कटोरी) है, जो आजर्बेजान के हसनालू ग्राम से मिली है । अभी कुछ सप्ताह की बात है, कि ईरान पुरातत्ववेत्ता गिलान के रूदबार क्षेत्र में मनोरजक अन्वेषण करने मे सफल हुए है । वहा उन्होने कोई पाच हजार वर्ष पूर्व के अवशेषो को ढूढ निकाला है ।

केवल पुरातत्वीय खुदाइयो का कोई अधिक लाभ नही, यदि इन के साथ वैज्ञानिक गवेषणा और प्रकाशनो का काम न हो । ईरान के शिक्षा तथा सस्कृति मत्रालय से सलग्न पुरातत्व विभाग ऐसी गवेषणा और खोज कार्यों के परिणाम को वैज्ञानिक पुस्तिकाओ के रूप मे प्रकाशित करता है । ये फारसी और यूरोपीय भाषाओ में प्रकाशित किये जाते है । अब तक तीस से अधिक ऐसे ग्रन्थ मुद्रित किये और निकाले जा चुके है । इनमे पुरातत्वीय प्रतिवेदन भी शामिल है ।

गवेषणा और खुदाई के अतिरिक्त, ईरान सरकार का पुरातत्व विभाग सग्रहालयों के प्रबन्ध और वर्तमान सस्थाओं को बनाये रखने और उनकी मरम्मत आदि की व्यवस्था भी करता है । पर्सिपोलिस में एक दल निरन्तर कार्यरत रहता है । इस्फहान और शीराज में सुन्दर और प्रसिद्ध मस्जिदो को इस विभाग के सतत प्रयत्नों द्वारा सवारा जा चुका है । 'सलतनीया' के प्रसिद्ध गुबद जैसी वास्तु-भव्यता के सस्मारको और अन्य अवशेषो को, जो देश भर में बिखरे पड़े है, नष्ट-भ्रष्ट होने से बचा लिया गया है । एक और महत्व-पूर्ण काम जो पुरातत्व विभाग ने किया है, वह है ऐतिहासिक और कलात्मक महत्व के मूल्यवान अवशेषो और उपलब्धियो की प्रदर्शनिया करना । पेरिस मे 'ईरानी कला के सात हजार साल' की प्रदर्शनी की गयी, जिसमे ईरान की पुरातन सभ्यता का प्रतिनिधित्व किया गया था । ईरानी पुरातत्व की यह सफलता, फ्रासीसी विशेषज्ञों और हितैषियो के सहयोग से सभव हुई । जिन अन्य प्रदर्शनियो ने ख्याति प्राप्त की, उनमे विशेषत उल्लेखनीय है . लदन मे 1931 में, लेनिनग्रेड मे 1935 मे, पेरिस में 1947 मे, न्यूयार्क और बोस्टन मे 1950 मे आयोजित की गयी प्रदर्शनिया ।

हमें आशा रखनी चाहिए कि भविष्य मे भारत और ईरान की पुरातत्व विषयक उपलब्धियो की पारस्परिक प्रदर्शनियो की व्यवस्था की जाएगी । ईरान के प्रतिनिधियो और विशेषज्ञ ने हाल में एशियायी पुरातत्व सम्मेलन मे सक्रिय भाग लिया था । मै आशा करता हू कि भविष्य मे कभी ऐसा ही सम्मेलन ईरान के प्राचीन देश मे भी (जो कि अपने गौरवमय अतीत के बल पर उज्ज्वल भविष्य की ओर बढ रहा है) आयोजित किया जाएगा, और सब एशियाई पुरातत्ववेता इसमे सम्मिलित होगे ।

(रूपान्तर : बलवन्त सिह)



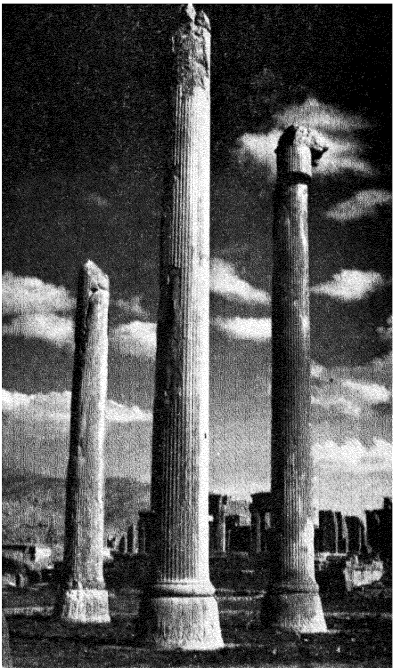


हमदान (ईरान) का एक शिलालेख

ईरान की कुछ



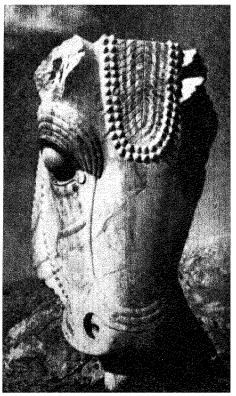
एक



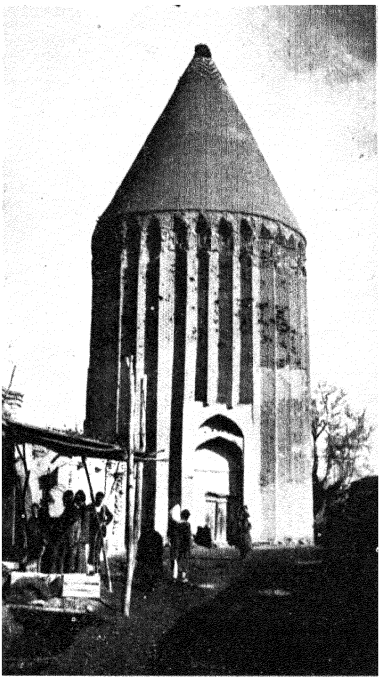
दो

(एक) ईरान की एक पुरानी मूर्ति । मूर्तिकार की छेनी ने दाढी और उष्णीष के निरूपण में अपनी कला का सुन्दर परिपाक दिखाया है । (दो) परसीपोलिस के प्राचीन स्तम्भों का एक दृश्य । स्तंभो की बारीक परन्तु एकरूप रेखाएं द्रष्टव्य है । (तीन) एक कौतुकपूर्ण मूर्ति, जो किसी स्तंभ का शिखर है । (चार) ईरान का स्थापत्य कला की निदर्शक एक बुर्जनुमा इमारत ।

पुरातत्वीय वस्तुएं

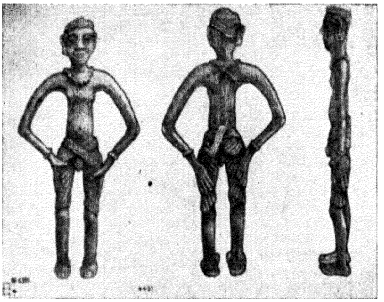


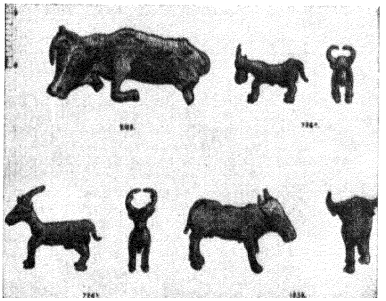
तीन

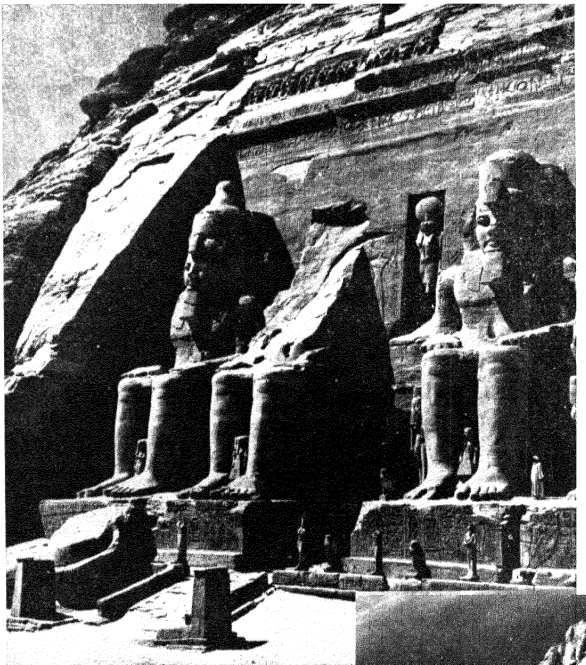


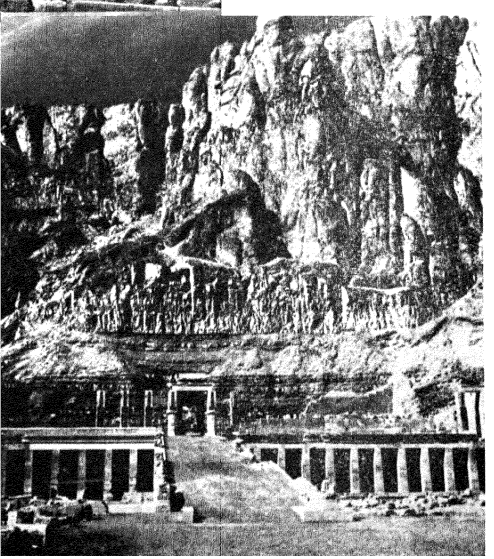
चार

इंडोनेशिया की कुछ पुरावस्तुएं









नूबिया के स्मारकों की दो मनोरम झांकियां, जिनको डूबने से बचाने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय पुरातत्वीय सहकार के रूप में विशाल प्रयत्न चल रहे हैं और जहा भारत ने भी अपना एक पुरातत्व-दल भेजा है ।

नूबिया के स्मारक

डा० एम रियाद अलेतर

नूबिया के 4200 वर्ष पुराने स्मारक ससार की सर्वोत्कृष्ट ९ पुरातात्विक निधियों में से है। ससार मे वस्तुत ऐसा कोई स्मारक नही है जो इजीनियरी की सफलता की दृष्टि से उतनी उत्कृष्ट कृति हो जितना उत्कृष्ट अबू सिम्बले का मदिर है। नील नदी के उस पार सूर्योदय के साथ ही उसकी चचल रजत किरणे जब इस मदिर के सकरे द्वारमार्ग पर पडती हैं और जब वे शैलखनित प्रशालो और मार्गों मे से होकर उसके 180 फीट गहरे भागो तक पहुचती है तो वहा अन्तगृह मे स्थित मिस्र के प्राचीन देवी-देवताओ के ऊपर उनकी शोभाश्री फूट-सी पडती है।

ये महान् स्मारक जिनमे से अनेको का उत्खनन कार्य अभी बाकी है, सयुक्त अरब गणराज्य के आस्वान उच्च बाध का निर्माण होने पर जलमग्न हो जाएगे, लेकिन इस बाध के बिना सयुक्त अरब गण-राज्य का काम भी तो नही चल सकता। साथ ही जैसा कि राष्ट्रपति नासिर ने कई वर्ष पहले कहा भी था कि मिस्र नूबिया की इस महान् कलानिधि की उपेक्षा भी नही कर सकता, क्योंकि वे मिस्र की राष्ट्रीय पित्रागत सम्पत्ति का भाग है। राष्ट्रपति नासिर की अपील पर यूनेस्को ने इस विशाल निधि की रक्षा व्यवस्था के लिए एक योजना बनायी थी और अब स्थिति यह हो गयी है कि यहा की पुरा-सम्पत्ति के रक्षण के लिए होड़-सी लगी हुई है। इसकी तुलना तूत अंखामन की उस समाधि के खोज-कार्य से की जा सकती है, जिसे 1922 में अर्ल आफ कारनारवन और होवर्ड कार्टर ने खोज कर निकाला था।

वीरान रेगिस्तान के बीच से नील नदी बहती है। इसकी समृद्धि-प्रद जल धाराए अपनी प्रति वर्ष आने वाली बाढ़ के साथ नील घाटी की भूमि को और अधिक उर्वरा बना जाती हैं। प्रति वर्ष विभिन्न फसलो के साथ ही इस घाटी मे सुषमा बरस पडती है और उसके साथ ही यहा की भूमि चतुर्दिश जन सकुल हो उठती है। नील नदी ऊपरी मरुभूमि तक अपनी अपार जलराशि लेकर बढ़ती है और फिर उतर जाती है। लेकिन इस सब जल लीला से यहा की खेतिहर भूमि मे रचमात्र भी वृद्धि नही होती।

इस विशाल नदी के जल को रोकने के लिए प्राचीन काल से ही इस पर तटबन्ध बनाये गये है। इससे इस भूमि में अधिक फसले उगाना सम्भव हो सका है और अधिक भूमि भी तोड़ी जा सकी है। किन्तु नील की बाढे सदा की भाति दक्षिण की ओर से प्रति वर्ष आती रहती है जो चारो ओर से ठुकराई जाकर समुद्र मे पहुचकर ही दम लेती है और युगो का तृषित रेगिस्तान देखता ही रह जाता है। आस्वान उच्च बाध की जो योजना बनायी गयी थी वह इस स्थिति मे क्राति पूर्ण परिवर्तन लाने की दृष्टि से बनायी गयी थी। इसका उद्देश्य यह था कि वर्तमान उर्वरा भूमि मे एक तिहाई की वृद्धि हो जाए और बिजली भी पैदा की जा सके।

राष्ट्रपति नासिर ने एक बार लिखा था कि इस उच्च बाध की यह योजना जीवन की आवश्यकताओं को ध्यान मे रखकर ही बनायी गयी है। इससे जनसख्या की सामाजिक और आर्थिक विकास की

आवश्यकताओ की कमी पूरी होगी तथा नीलघाटी के सभी निवासियो को वैभव और समृद्धि की प्राप्ति होगी। किन्तु इन सब आवश्यकताओ के समक्ष हमें यह नही भूल जाना चाहिए कि परम्परा से प्राप्त हमारी कलानिधि की सुरक्षा का प्रबन्ध किया जाना भी अनिवार्य है। इसके अतिरिक्त यह बात भी है कि हमारी कला कृतिया सम्पूर्ण मानव जाति के कला भडार का एक अश ही है। मानव जाति की कलानिधि के प्रति हमारे हृदय में जो इतना अनुराग है उसका आधार वह चिरतन सम्बन्ध है जिससे कि आगामी पीढिया विगत पीढियो से बधी रहती है। हमे यह भली भाति ज्ञात है कि मानव जाति ने प्रगति की है। यह प्रगति इस कारण सम्भव हो सकी है कि उसने पीढी-दर-पीढी सचित कलाकृतियो को विस्मृति के गर्भ मे नही पडने दिया है और इस प्रकार इसे आत्म सम्मान और सत्य की रक्षा कर सकने मे सफलता मिली है।

राष्ट्रपति नासिर नील घाटी के नूबिया भाग का उल्लेख कर रहे थे। यह भाग मिस्र और सूडान के क्षेत्र की एक कडी है। फ्रास के सस्कृति मत्री आन्द्रे मालरो ने नीलघाटी मे स्थित इन कलाकृतियो को 'कला का अतिविशाल सग्रहागार' कहा है। यह विशाल भडार आस्वान उच्च बाध की जलराशि मे सदा के लिए निमग्न हो जाएगा।

मिस्र और सूडान मे इस घाटी मे नूबिया का यह भाग ही पुरातत्व की दृष्टि से सर्वाधिक समृद्ध भाग है।

इसके स्मारक इस महानदी नील के सम्पूर्ण इतिहास के साक्षी है। ये स्मारक इतिहास के आदिकाल से लेकर ईसाई और मुस्लिम युगो तक के है।

यहा विद्यमान पुरा-सामग्री, मिस्री और अफ्रीकी राजकीय और आदिम जातीय कलाओ का स्पष्ट परिचय देती है।

यहा के कुछ स्मारक तो आकार प्रकार मे अनन्य है तथा ऐतिहासिक और कलात्मक महत्व की दृष्टि से भी उनकी कोई तुलना नही है।

यह सामग्री अधिकतर अनुत्खनित अवस्था मे है—उदाहरण के लिए सूडानी क्षेत्र मे ही सौ ज्ञात पुरातात्विक स्थल है, जिनमे से आधे से अधिक को तो उत्खनको ने अभी छुआ तक नही है। नूबिया मे सम्भवत अनेक ऐसी उर्वोत्कृष्ट पुरातात्विक कला-कृतिया है जिनका यदि समुचित रक्षण प्रबन्ध नही किया गया तो वे हमेशा के लिए लुप्त हो जाएगी। बाध के पीछे का सरोवर पाच सौ किलोमीटर लम्बा (तीन सौ किलोमीटर सयुक्त अरब गणराज्य मे और दो सौ किलोमीटर सूडानी क्षेत्र मे) और कही दो कही पचीस किलोमीटर तक चौडा होगा।

अप्रैल, 1959 मे काहिरा से ससार के सभी राष्ट्रो के नाम एक अपील निकाली गयी थी, जिसमे उनसे नूबिया के पुरावशेषो के रक्षण के काम मे सहयोग के लिए कहा गया था। राष्ट्रीय निर्देशन मत्री डा० सरवत ओकाशा ने यूनेस्को से भी अपील की थी। सयुक्त राष्ट्र की इस सस्था ने यह कार्य करना स्वीकार कर लिया है और तदनुसार एक तेरह सदस्योय विशेषज्ञ समिति अक्तूबर मे काहिरा मे आयी थी।

जिन देशो ने इस योजना मे रुचि दिखायी उनकी एक समिति स्वीडन नरेश गुस्टाव षष्ठ एडोल्फ की संरक्षकता मे बनायी गयी। इस समिति ने सहायता के लिए यूनेस्को के ससार व्यापी आन्दोलन के साथ ही 4 मार्च, 1960 से अन्तर्राष्ट्रीय अभियान प्रारम्भ किया। अपील मे राजा गुस्टाव ने कहा था कि 'इन सास्कृतिक अवशेषो को सम्पूर्ण मानव जाति की सार्वजनिक पैतृक सम्पत्ति समझा जाना चाहिए।' ससार में ऐसे स्थान कम ही है जो कि इस बात मे नील की घाटी के बराबर समृद्धिपूर्ण हो।

राष्ट्रपति नासिर ने लिखा था कि इस योजना को पूरा करने के काम मे जो लोग सहयोग दे रहे है, उनके सहकार से इस बात की पुष्टि हो जाती है कि उन्हे विश्वव्यापी सहयोग मे विश्वास है।

राष्ट्रपति इब्राहीम आबूद ने लिखा कि सूडान का पुरातत्व विभाग इतने बड़े कार्य को अकेले पूरा नही कर सकता। इसलिए मै ससार मे सभी देशो से अपील कर रहा हू कि वे आकर हमारी सहायता करे और आठ सौ वर्ग किलोमीटर वाले इस क्षेत्र का अन्वेषण करे।

महासचिव हैमरशोल्ड ने लिखा कि "जो लोग उन अनिवार्य मानवी आवश्यकताओ को समझते है जिनके लिए नूबिया की घाटी को जलमग्न करना पड रहा है, उन सबको इस सकटोन्मुख पुरातात्विक निधि की रक्षा के लिए किये जाने वाले प्रयासो का स्वागत करना चाहिए।' यह मानव जाति की सास्कृतिक थाती का बडा महत्वपूर्ण भाग है।

इस पर कार्यवाही तुरन्त प्रारम्भ हो गयी। व्यापक फोटोमीट्रिक सर्वेक्षण और उसे पूरी तरह लेखबद्ध करने का कार्य होने लगा। फोटोग्राफरो, पुरातत्वज्ञो और उत्खनको के अनेक सघ वर्तमान स्मारको का अध्ययन करने और नये स्मारको को खोज निकालने के लिए इस क्षेत्र मे आ पहुचे। इसमे उस भाग की ओर विशेष ध्यान दिया गया जो नील नदी की वर्तमान सतह की 121 मीटर और 133 मीटर की उस ऊचाई के बीच आते है, जितनी ऊचाई 1966 मे आस्वान उच्च बाध की पहली अवस्था के पूरे हो चुकने के पश्चात् जल की सतह की हो जायेगी। इस बीच विशेषज्ञो ने महत्वपूर्ण स्मारको को पररक्षित करने या उन्हे अन्यत्र ले जाने के उपायो का भी अध्ययन किया।

यूनेस्को की अपील जारी होने के लगभग एक साल बाद आज स्थिति यह है कि काफी मदिरो की पूरी जाच-पडताल कर ली गयी है उनके अन्तर्लेखो और पुरालेखो की प्रतिलिपिया तैयार करली गयी है और उनके क्षेत्रो की खुदाई कर ली गयी है। यहा की कुछ महत्वपूर्ण लब्धिया और भी है हालाकि वे अब तक प्रकाश मे नही आयी है। इनमे ये वस्तुए शामिल है —एक बिजैटीन नगर (जिसे इटली के दल ने खोजा था) मकबरे और इमारते (जिन्हे जर्मन और सयुक्त अरब गणराज्य के दलो ने खोजा था) मदिर और पवित्र जलाशय (जिन्हे सयुक्त अरब गणराज्य के दल ने खोजा था) और सूडान नूबिया मे बुहेन के दुर्ग के ध्वसावशेष। इस क्षेत्र के अनेक मदिरो को ध्वस्त कर उनके पत्थरो की गणना कर ली गयी है। कुछ

को अन्यत्र पहुचा दिया गया है और शेष की रक्षण व्यवस्था के लिये योजनाएं भी अब पूरी बन चुकी हैं।

आज नूबिया एक ऐसा केन्द्र बन गया है, जिसमे पुरासामग्री के रक्षण के लिए होड सी लगी हुई है। इसकी तुलना तूत अखामन की समाधि के अन्वेषण से की जा सकती है जिसे सन् 1922 मे अर्ल आफ कारनारवन और होवर्ड कार्टर ने खोज निकाला था। यह सब गतिविधि नील के पानी के चढने के साथ ही तीव्रतर होती जाएगी।

मानव ने अब तक जितने शिलाखडो पर काम कर उन्हे कला का वेश पहनाया है, उनमे विशालतम शिलाखंड नील घाटी के नूबिया के मैदान मे स्थित है। इस का भार 250,000 टन है और आयतन 60 × 60 × 40 मीटर है। इस शिलाखड को काट-छाट कर मदिर का रूप दिया गया था। इसका मुख भाग चार विराट प्रतिमाओ से बना है जिनमे प्रत्येक बीस मीटर ऊचा है। यह मदिर 3320 वर्ष पुराना है। इस शिलाखड को पार्श्ववर्ती पर्वत से पृथक् करके भूमितल से साठ मीटर ऊपर उठाया जाएगा। ऐसे ही शिला खड पर इससे कुछ छोटा एक मदिर और भी है, इसे भी इसी प्रकार ऊपर ले जाया जाएगा।

मिस्र के अठारहवे प्राचीन राजवश के फरोआ रेमजे द्वितीय से सम्बद्ध अबू सिम्बले के उक्त दोनो मदिरो को पार्श्ववर्ती पर्वत से पृथक् कर ऊपर उठाना ही उन बडे उद्देश्यो मे से एक है जिनके लिए अनेक सरकारो द्वारा ससार व्यापी आन्दोलन किया गया है और जिसका सचालन सयुक्त अरब गणराज्य की सरकार और यूनेस्को के तत्वावधान मे किया गया है। इसका उद्देश्य उन अनेक पुरावस्तुओ की रक्षा करना है जो इस उच्च बाध के जलाशय मे निमग्न हो जाएगी।

नील घाटी के नूबिया भाग मे 1967 मे जब आस्वान उच्च बाध बनकर तैयार हो जायेगा तो यह जलाशय ससार की मानव निर्मित झीलो मे सबसे बडा होगा इसका तीन सौ किलोमीटर भाग मिस्र प्रदेश मे और 180 किलोमीटर सूडान मे होगा। जल की सतह अन्तत 121 मीटर की अपनी औसत सीमा से उठकर 182 मीटर हो जाएगी।

नूबिया मे अनेक प्राचीन स्मारक हैं, जिनमे से बहुतो का अभी तक उत्खनन भी नही हुआ है। इस क्षेत्र के अधिकाश मदिर अन्य स्थानो पर ले जाए जाएगे। उनमे से कुछ उन देशो मे भी जाएगे, जिनका सहयोग इस रक्षण कार्य मे मिला हुआ है। इस क्षेत्र के तीन अतिकाय मदिर फिर भी अपने मूल स्थलो पर बने रहेगे—अबू सिम्बले के दो मंदिर पर्वत के ऊपर उठाये जाएगे और कृत्रिम झील मे फिलाए द्वीप को ककरीट की एक दीवार की सहायता से रक्षित किया जाएगा।

अबू सिम्बले के मदिर विशेष रूप से अपनी चार विशाल प्रतिमाओ और रैमजे द्वितीय की आसीन-प्रतिमाओ के लिए प्रसिद्ध है, जो कि प्रवेश-द्वार के हर ओर स्थित है। इन प्रतिमाओ मे से प्रत्येक के दोनों कर्णस्थलो का अन्तर 106 सेटीमीटर है। प्रत्येक की नाक 98 सेटीमीटर की है और आखे 84 सेटीमीटर चौड़ी है। मदिर के अन्दर एक हाल 63 मीटर का है और उसके पार्श्व भाग आसिरिस के वेश धारी राजा की दस मीटर ऊची आठ प्रतिमाओ से सज्जित है। यह मदिर पर्वत मे बीस मीटर से अधिक अन्दर तक चला गया है। सभी दीवारो पर ऐसे अवशेष विद्यमान हैं, जिनमे आराधना और रैमजे के सग्रामो के चित्र अकित हैं। मदिर का मुख भाग पूर्व की ओर है। सूर्योदय होने पर इस मदिर के हाल उसकी किरणो से उद्दीप्त से हो उठते हैं जिससे उन अवशेषो की शोभाश्री मानो और भी मुखर हो उठती है।

अबू सिम्बले का छोटा मदिर पहाड को काट कर बनाया गया था, जैसा कि इसके पुरोभाग पर अकित लेख से प्रकट होता है। यह रैमजे ने अपनी पत्नी रानी नेफरेतरी और देवी हथोर को अर्पित किया था। इसका पुरोभाग यद्यपि उक्त विशाल मदिर के पुरोभाग से छोटा है तो यह भी उससे कम प्रभावोत्पादक नही है। दस-दस मीटर ऊची तीन विराट प्रतिमाए द्वार मार्ग के दोनो ओर गुहाओ मे स्थित हैं जिनके बीच मे प्रक्षेपी शिलाखड विद्यमान हैं और उन पर एक लेख अकित है। इन तीनो मे राजा की दो प्रतिमाओ के पार्श्व मे रानी की प्रतिमा भी है। मदिर के आन्तरिक भाग मे राजा और रानी के दैनिक जीवन और आराधना सम्बन्धी अति उत्कृष्ट और सर्वाधिक सुन्दर दृश्य प्रस्तर खडो पर अकित किये हुए हैं और उन्हे सुन्दर रगो से सजाया गया है।

इन दो मदिरो को बचाने के लिए जो उत्तम योजना मिलान (इटली) के पियरो गज्जोला द्वारा बनायी गयी है, वह इन दोनो मदिरो को काटकर निकाले जाने के बारे मे है—दोनो को पर्वत भाग मे से काटकर ऊपर उठाया जाएगा। उस योजना को अन्तर्राष्ट्रीय विशेषज्ञो ने इजीनियरी की दृष्टि से पूर्णतया साध्य माना है। इस सम्पूर्ण कार्य मे 60,033,000 डालर खर्च होगे और इसके पूरे होने मे छ वर्ष लगेगे। इस योजना को जनवरी, 1962 से चालू करने की बात तय की गयी है।

नील के पहले महाप्रपात के निकट के फिजी द्वीप का आकार केवल 450 × 145 मीटर है, किन्तु यह सम्पूर्ण भूभाग मदिरो, धर्म सभालयो और किसी प्रकार की इमारतो से परिपूर्ण है।

यह द्वीप ईसिस की उपासना का केन्द्र था (वस्तुत· वहा पर सात विभिन्न ईसिस पथ एक ही समय मे विद्यमान थे)। उसके स्मारको मे बारह मदिर, दो गिरजाघर, दो प्रवेशद्वार, अनेक खभे और एक नाइलो मीटर हैं। ये सब प्राचीन मिस्र के नये राज्य के समय से लेकर सिकन्दर महान् तक के समय के और टोले के समय से लेकर ईसाई साम्राज्य की प्रारम्भिक सदियो तक के हैं। इनमे से सर्वाधिक महत्वपूर्ण हथोर के मदिर, सीजर अगस्टस का बनाया हुआ मन्दिर किओरेक (जिसे फारुआ की शरया कहा गया है), सेट मेरी का गिरजाघर तथा नाइलो मीटर हैं। ये सभी अपने किस्म के अनोखे और महत्वपूर्ण स्मारक हैं। इस द्वीप में प्रति वर्ष

(शेष पृष्ठ 77 पर)

वियना में मुगलकला के नमूने

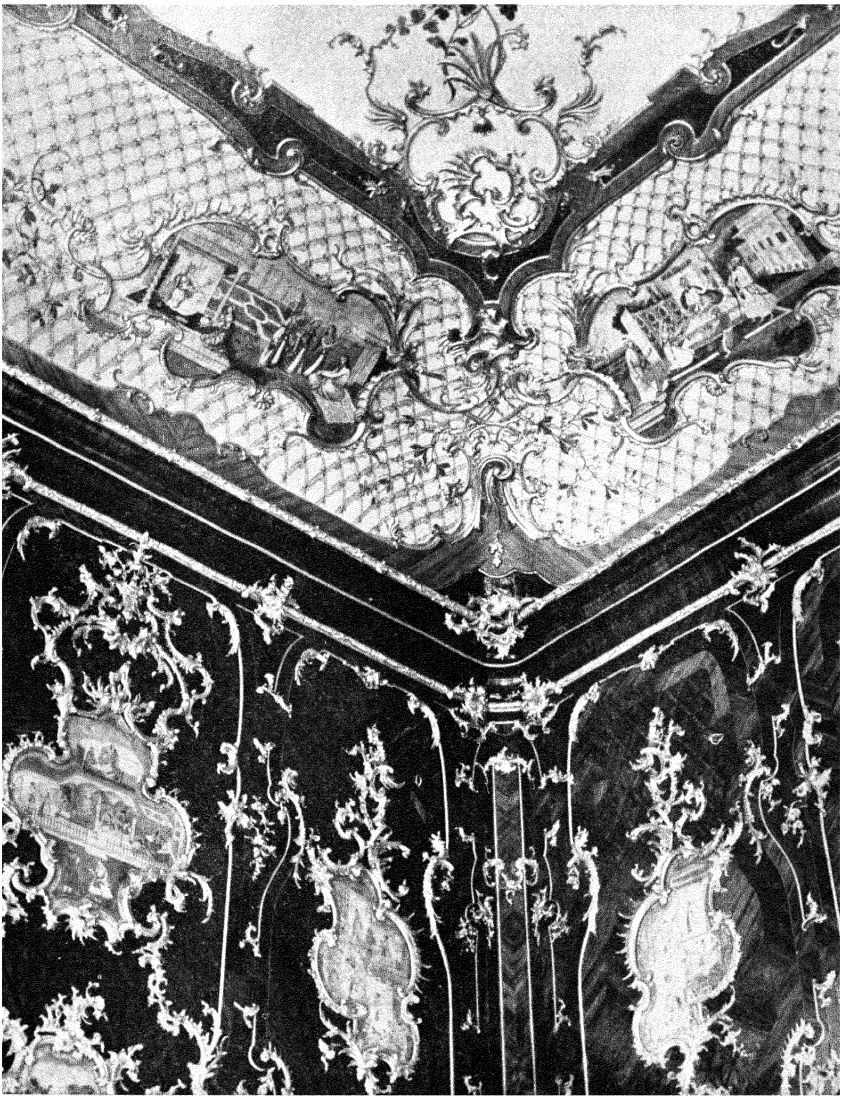
प्रेमनारायण अग्रवाल

वियना मध्य यूरोप में स्थित देश आस्ट्रिया की राजधानी है। यह ससार के अत्यन्त सुन्दर शहरो मे एक है और कला और सस्कृति का प्राचीन केन्द्र है। यहा के गायक ससार मे प्रसिद्ध रहे हैं। इस शहर मे हर जगह विभिन्न प्रकार की प्रस्तर की मूर्तिया मिलती हैं, जो आस्ट्रियावासियो की कला मे अभिरुचि की सजीव प्रतीक हैं। इस शहर के प्रमुख दर्शनीय स्थानो मे, वहा का एक ऐतिहासिक राजप्रासाद भी है, जिसे 'शून ब्रून' कहते हैं। उसका निर्माण सन् 1695 से 1700 ई० के बीच हुआ। इसका भीतरी भाग 1743 से 1749 ईसवी के बीच बनकर तैयार हुआ। महारानी मेरिया थेरेसा ने अपने शासनकाल मे इसमे रद्दोबदल कराकर इसे अपनी रुचि के अनुकूल साज सामान से लैस कराया और 1746 से इसी मे रहना प्रारम्भ कर दिया। इसके कुछ और हिस्से आगे भी बनते रहे और इसको कलात्मक ढग से सजाने का कार्य भी जारी रहा। सन् 1805 से 1809 ई० तक यह राजप्रासाद नेपोलियन का प्रधान कार्यालय रहा और वह स्वय भी इसी मे रहता था। द्वितीय महायुद्ध के समय बमो द्वारा इसके प्रत्येक भाग को क्षति पहुची थी। पाच साल तक मरम्मत होने के बाद, जिसमे काफी धन व्यय हुआ, यह अपने पुराने रग-रूप मे आ सका है।

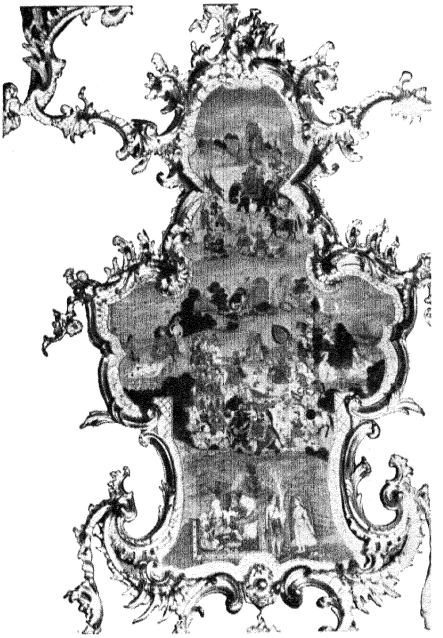
हमने अपनी प्रथम यूरोपयात्रा के समय इस राजप्रासाद को देखा था। इसके सबसे अधिक सुन्दर कमरे का नाम मिलियन चेम्बर है। इसमे लगे हुए मुगलकाल की कला के नमूनो ने हमारा ध्यान विशेष रूप से आकर्षित किया। द्वितीय यूरोप यात्रा के समय भी वियना मे हमने इस राजप्रासाद को देखा। मुगलकालीन कला के इन नमूनो ने हमे इनके बारे में विशेष जानकारी प्राप्त करके भारतीय जनता को बताने के लिये फिर प्रेरित किया।

इस भव्य ऐतिहासिक राजप्रासाद का सबसे ज्यादा सौन्दर्यमय स्थान यही मिलियन चेम्बर है। इसकी दीवाले बेशकीमती गुलाब की लकडी से सजायी गयी है। और इसमे मुगलकालीन भारतीय कला के सैकडो छोटे-छोटे रगीन चित्र एक खास तौर पर तैयार किये हुए चमडे पर बने सोने के आकर्षक फ्रेमो मे लगाकर लगाये गये है। झाडफानूस की रोशनी मे यह परियो के काल्पनिक निवासस्थान जैसा रग-बिरगा और मनमोहक लगता है।

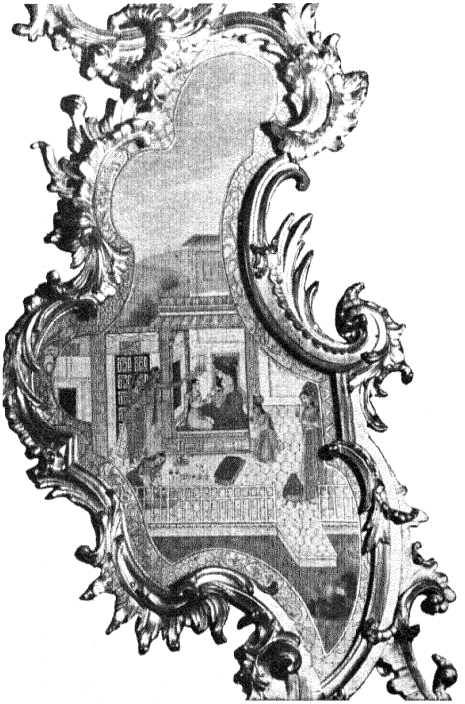
इसे देखकर हमारे मन मे अनेक प्रश्न उठते है। ये चित्र यहा कैसे आये, किसने बनवाये इनके बनाने वाले भारतीय कलाकार थे या यूरोपीय आदि? आस्ट्रिया की वैभवशालिनी महारानी मेरिया थेरेसा को इनको प्राप्त करके यहा लगवाने का श्रेय है। यह अनुमान किया जाता है कि ये अब से दो सौ वर्ष पूर्व सन् 1761-62 के करीब इसमे लगाये गये थे। उस जमाने से यूरोप के मालदार बादशाहो मे यह फैशन था कि वह अपने राजप्रासादो को दूर-दूर देशो की कलात्मक चीजो से सजाते थे। मेरिया थेरेसा ने भी वैसा ही किया। उसे यह

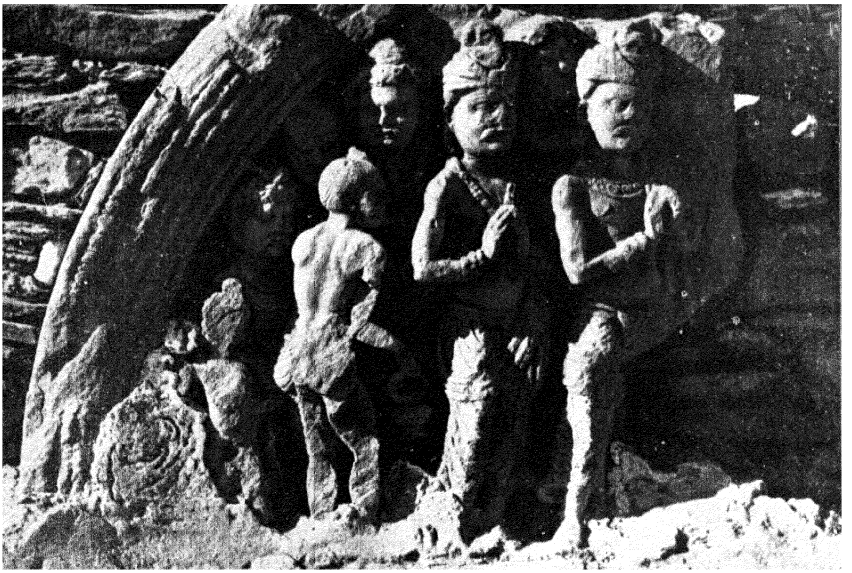


शोनब्रून महल के मिलियन चेम्बर की दीवाल का एक भाग । पैनलों में जड़े हुए मुगल-चित्र द्रष्टव्य हैं ।



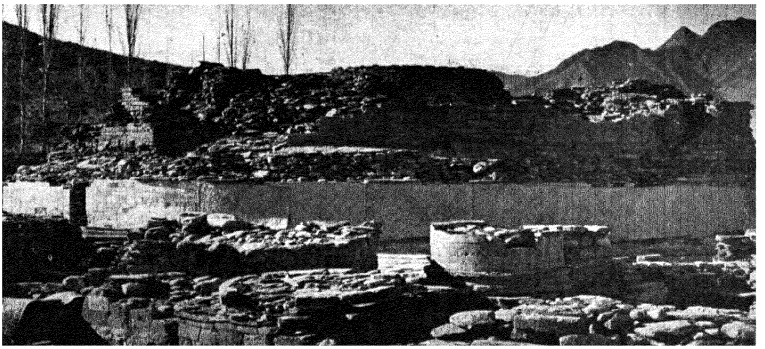
दो पैनलें और उनके भीतर जड़े हुए मुगल चित्र

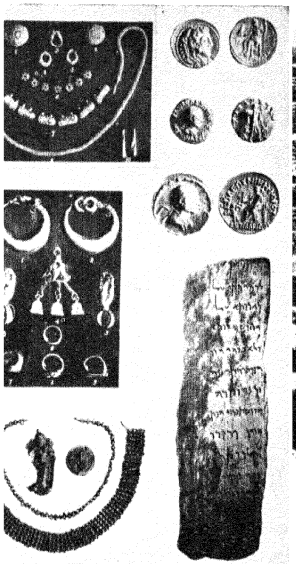


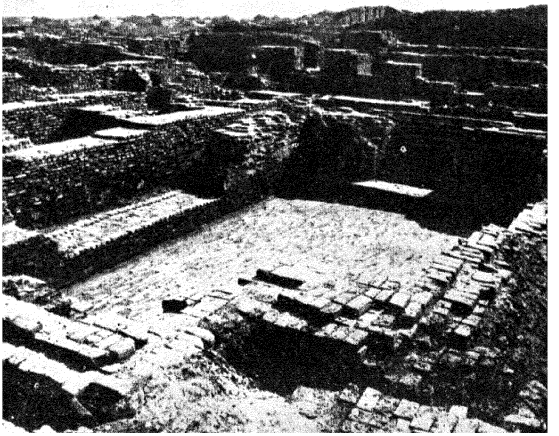


पाकिस्तान की कुछ पुरातत्वीय झांकियां

(ऊपर) गान्धार मूर्तियों का एक दृश्य (नीचे) कलात-स्वात राज्य का एक बौद्ध स्थल जिसकी खोज और खुदाई इटली के प्रो० तूची ने हाल ही में की ।

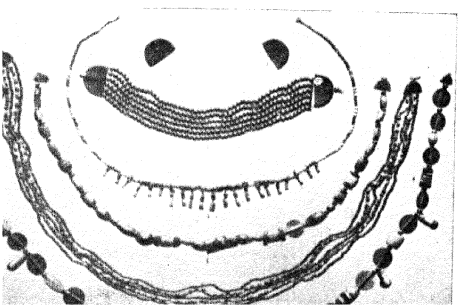






(ऊपर) मोहेनजोदडो का सुप्रसिद्ध सार्वजनिक स्नानागार (नीचे) गान्धार बुद्ध जो दीर्घ उपवास के कारण क्षीणकाय दिखाये गये हैं

(ऊपर) गान्धार के कुछ भारत-ग्रीक सिक्के और मोहेनजोदडो के आभूषण (नीचे) मोहेनजोदडो के कुछ और आभूषण





कलात्मक चित्र किसी ने भेंट स्वरूप दिये थे। यह पता नहीं चल सका कि किसने और कब वे उन्हें भेंट किये थे। अनुमान यह है कि सन् 1762 में किसी ने महारानी को इनको भेंट में दिया था और उन्होंने अपने महल में उनको लगवाया।

महल के एक कमरे में लगे हुए इन छोटे-छोटे चित्रों की संख्या 260 है। इनमें एक चित्र से यह अन्दाजा होता है कि वह 1627 ई० अर्थात् अब से 325 वर्ष से भी पहले का बना हुआ है। शेष चित्र बाद के मालूम होते हैं, क्योंकि उनमें शाहजहां और औरंगजेब के चित्र भी हैं। इनके कलाकारों के बारे में कुछ पता नहीं चल सका। एक अनुमान यह भी है कि महारानी थेरेसा के पास ये हालैण्ड से आये, जो उस समय आस्ट्रिया का ही एक हिस्सा था और जिसका भारत के साथ खासा व्यापारिक सम्बन्ध सत्रहवीं-अठारहवीं शताब्दी में था। हालैंड के प्रसिद्ध शहर एम्सटरडम में उस समय ईस्ट इंडिया कम्पनी का प्रधान कार्यालय था और भारत की अनेक चीजें वहां मिलती थीं। हालैण्ड के प्रसिद्ध कलाकार रेमब्रा के पास उस समय भारतीय चित्रों का एक अलबम था, जो उन्होंने शायद किसी व्यापारी से खरीद लिया था। इसमें सत्रहवीं शताब्दी के भारतीय कलाकारों द्वारा निर्मित चित्र थे, जो उन्होंने मुगल बादशाहों के लिए बनाये थे। रेमब्रा ने स्वयं इनमें से करीब पचीस चित्रों के अनुसार अपने चित्र बनाये थे, जिनका समय 1650–56 था। शोनब्रून राजप्रासाद के कई चित्र इनके चित्रों से मिलते-जुलते हैं। यह भी अनुमान है कि इस अलबम के चित्र ही इस राजप्रासाद में लगा दिये गये हैं।

इन कलात्मक चित्रों को इस महल में लगाने में भी कम दक्षता की आवश्यकता नहीं पड़ी। उनको वहां लगा हुआ देखने पर पता चलता है कि उनको रोकोको ढंग से विशेष प्रकार के बने हुए फ्रेमों में जड़कर और ऐसे काटकर लगाया गया है जिससे वे कलात्मक ढंग से कटी हुई गुलाब की लकड़ी की दीवालों में बढ़िया ढंग से फिट हो सकें। इस प्रकार सीमित स्थान में लगाने के लिए उनमें विशेष परिश्रम व सावधानी की आवश्यकता पड़ी। उनको कई बार काटना पड़ा और कई बार उनपर दुबारा पेंटिंग करनी पड़ी, जिससे उनका अपनापन ज्यों का त्यों बना रहे। यह आसान काम नहीं था। यह कार्य वहां के प्रसिद्ध बरुख ढंग के पेंटर जोहान बरगल ने किया था। इन मुगलकालीन चित्रों ने उसे भी प्रभावित किया था।

इस प्रकार भारतीय कला के दो सौ वर्षों से भी अधिक पुराने सर्वोत्कृष्ट नमूने आस्ट्रिया के शानदार राजप्रासाद के सर्वाधिक सुन्दर महल की शोभा बढ़ाकर संसार के यात्रियों का मन लुभा रहे हैं।



(पृष्ठ 75 का शेषांश)

दिसम्बर से लगभग अप्रैल तक बाढ़ आती है जिसमें ये मंदिर शिखर भाग तक निमग्न हो जाते हैं। वर्ष के शेष भाग में ये मन्दिर जल प्लावन से मुक्त रहते हैं।

फिलाए द्वीप की रक्षण व्यवस्था के लिए जो योजना बनायी गयी है उसके अनुसार इसकी सुरक्षा एक ऐसी दीवार बनाकर की जाएगी जिससे कि वर्ष भर पानी यहां तक नहीं आ पायेगा। इस कार्य में 5,500,000 डालर खर्च होंगे और इसके पूरे होने में चार वर्ष का समय लगेगा।

नूबिया घाटी की शेष पुरातात्विक सामग्री अन्य स्थलों पर पहुंचा दी जाएगी।

(रूपान्तर गोकुल प्रसाद जैन)

परिचय

अमलानन्द घोष भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के महानिदेशक

बहादुरचन्द्र छाबड़ा भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के संयुक्त महानिदेशक

ब्रजवासीलाल निदेशक, पुरातत्व विद्यालय, नई दिल्ली

यज्ञदत्त शर्मा भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के उपमहानिदेशक

एम० एन० देशपांडे भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के उपमहानिदेशक

वी० डी० कृष्णस्वामी भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के उपमहानिदेशक

केदारनाथ पुरी सहायक निदेशक, राष्ट्रीय सग्रहालय, नई दिल्ली

बी० बी० लाल पुरातत्व केमिस्ट, भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण, देहरादून

डब्ल्यू० जी० आर्चर प्रसिद्ध भारतविद्या विशेषज्ञ, विक्टोरिया-अलबर्ट सग्रहालय लन्दन मे भारत अनुभाग के अध्यक्ष

फूलचन्द्र पांडेय सास्कृतिक विषयो के लेखक

महमूद तफज्जुली भारत मे इरानी दूतावास के भूतपूर्व सास्कृतिक परामर्शदाता

एम० रियाद अलेंतर सयुक्त अरब भारतीय गणराज्य चासरी मे सास्कृतिक सहचारी

एम० शरदजितो इडोनशियाई दूतावास मे सास्कृतिक सहचारी

रामकिशोर शर्मा सास्कृतिक विषयो के लेखक

प्रेमनारायण अग्रवाल पत्रकार और लेखक

काशीराम शर्मा सपादक (हिन्दी) केन्द्रीय हिन्दी निदशालय

श्रीधर लिमये सपादक (हिन्दी) केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय

ना० प्र० पांडेय अनुसधान सहायक, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय

सुरेश मिश्र वरिष्ठ अनुसधाता, वाणिज्य-उद्योग मत्रालय

त्रिलोकीनाथ मेहरोत्रा अनुवादक, विधि मंत्रालय

विश्वेश्वर नारायण अनुवादक, विधि मत्रालय

ईश्वरचन्द्र निगम अनुवादक, विधि मत्रालय

बलवन्तसिंह अनुवादक, विधि मत्रालय

गोकल प्रसाद जैन अनुवादक, विधि मत्रालय

बसन्तकुमार पांडे अनुवादक, विधि मत्रालय

विद्याभूषण गंगल अनुवादक, लोक सभा सचिवालय

रमेशचन्द्र शर्मा सास्कृतिक विषयो क लेखक

मुद्रक : प्रबन्धक भारत सरकार मुद्रणालय, फरीदाबाद, पंजाब ।

संस्कृति का अत्यन्त मनोरम विशेषांक

रवीन्द्रनाथ ठाकुर विशेषांक

भूमिका लेखक : हुमायून् कबिर

रोचक सामग्री

संस्मरण

डा०बी० गोपाल रेड्डी, सुधी रजनदास और अमिता सेन ।

जीवन और कृतित्व की झाकिया

भवानी भट्टाचार्य, अवनीन्द्र विद्यालकार, वी०एस० नरवणे, अशोक मित्र, आर्चर, नीहार रजन रे, नोएले, समीरण चटर्जी, धीरेन्द्रनाथ दत्त, जी० रामचन्द्रन्, एस०सी० सरकार, रवीन्द्रलाल राय, प्रभात मुखर्जी, मोहनलाल बाजपेयी

आदि लेखको द्वारा कवीन्द्र रवीन्द्र के जीवन के विभिन्न पहलुओ पर प्रकाश डालने वाले रोचक लेख; विशेतय निम्नाकित विषयो पर · रवीन्द्रनाथ के गीत, मानवतावाद, नीतिशात्र, चित्रकला, कला और यथार्थ, रवीन्द्र सगीत, ग्राम-पुनर्निमाण, शिक्षा-आदर्श, धर्म आदि-आदि ।

आधुनिक भारतीय साहित्य : एक संगोष्ठी

भारतीय साहित्य को आधुनिक समस्यायो पर बालकृष्ण राव, उमाशंकर जोशी, मुल्कराज आनन्द, गगाधर गाडगील, हेम बरुआ, ख्वाजा अहमद अब्बास के विचार-प्रेरक लेख ।

रवीन्द्र कविता कुज

रवीन्द्रनाथ के चुने हुए गीतो का सर्वश्री सियाराम शरण गुप्त, रामधारीसिंह 'दिनकर', भवानीप्रसाद मिश्र, हसकुमार तिवारी, बालस्वरूप राही, देवराज दिनेश, राजीव सक्सेना द्वारा पद्यानुवाद ।

पत्रावली

रवीन्द्रनाथ के दो चुने हुए पत्र, जिनमे से एक 'सर' का खिताब छोडने के बारे में है और दूसरा उनका अन्तिम पत्र है ।

समीक्षा

रवीन्द्र-साहित्य की छ. नयी हिन्दी पुस्तकों की समीक्षा ।

तकनीकी ब्यौरे

* आकर्षक चौरगा आवरण, आर्ट कार्ड (आयात किया हुआ)
* पाठ्य सामग्री 104 पृष्ठ, सुपर कलेंडर कागज ।
* चित्र बहुरगे आठ, एकरगे बीस ।
* रवीन्द्रनाथ का पूरे पृष्ठ का एक आकर्षक चित्र (सभी 64 पौड के आर्ट कागज पर) ।
* अनेक रेखाचित्रो से सुसज्जित ।

मूल्य : केवल एक रुपया

पुस्तक-विक्रेता कमीशन, एजेंसी आदि के लिए कृपया शीघ्र लिखे ।

संपादक 'संस्कृति'
वैज्ञानिक अनुसन्धान और सास्कृतिक कार्य मंत्रालय,
1 ई 3, करजन रोड 'ए' बैरक्स,
नई दिल्ली ।

हमारे अन्य अवश्य-पठनीय प्रकाशन

सस्कृति क्या है : एक संगोष्ठी

इस पुस्तिका मे संस्कृति के साम्राज्य की दुर्बोध्य सीमा को परिभाषित और निर्धारित करने वाले कुछ विचारपूर्ण दृष्टिकोण दिये गये है । सस्कृति के विशाल क्षेत्र मे रुचि रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह पुस्तिका बडी ही सग्रहणीय है । रोचक सामग्री और आकर्षक मुद्रण इस पुस्तिका की अनन्य विशेषताए है ।

मूल्य · पच्चीस नये पैसे

आज की कहानी : एक संगोष्ठी

इस पुस्तिका मे अमरिका, आस्ट्रेलिया, फ्रास, ब्रिटेन और भारत के कथा साहित्य का अद्यावधिक सर्वेक्षण करने वाले मनोरजक लेख है । हिन्दी कहानी के बारे मे एक परिचयात्मक लेख अलग से भी दिया गया है, जिसके लेखक हिन्दी के एक मूर्धन्य लेखक श्री चन्द्र-गुप्त विद्यालंकार है । इस पुस्तिका की सामग्री बडी ही पठनीय है ।

मूल्य । पच्चीस नये पैसे

भारतीय रंगमंच के क्षितिज

भारतीय रगमच की बहुत-सी कठिनाइयो की चर्चा इस पुस्तिका के लेखो मे की गयी है और भविष्य के दिशा निर्देश के लिये अनेक सुझाव दिये गये है । प्रत्येक नाटक-प्रेमी के लिए इस पुस्तिका का पठन और सग्रह अपरिहार्य रूप मे आवश्यक है, ऐसा हमारा दृढ विश्वास है ।

मूल्य : पच्चीस नये पैसे

भारतीय संस्कृति

डा० गोविन्द दास द्वारा लिखित महत्वपूर्ण पुस्तिका ।

मूल्य · पच्चीस नये पैसे

संस्कृति और जन साधारण

जनसाधारण और सस्कृति के सम्बन्ध और जनसाधारण को कैसे सुसस्कृत बनाया जा सकता है, इत्यादि विषयो पर उपयोगी लेखों वाली यह पुस्तिका प्रत्येक सस्कृति-प्रेमी के लिये सग्रहणीय है ।

मूल्य पच्चीस नये पैसे

भारतीय साहित्य की मूलभूत एकता

ऊपरी विभिन्नता के होते हुए भी भारतीय साहित्य की अन्तर्निहित एकता का ज्ञापन कराने वाले ये लेख पाठको के लिए बडे ही रोचक और ज्ञानवर्द्धक सिद्ध होगे । पुस्तिका अपरिहार्य रूप से पठनीय है ।

मूल्य : पच्चीस नये पैसे

हमारा रहन सहन : एक संगोष्ठी

भारत के विभिन्न क्षेत्रो की रहन-सहन की झाकी देने वाली इस पुस्तिका की प्रशसा 'गागर मे सागर' कह कर की गयी है । इस सचित्र पुस्तिका का मूल्य पाठको की सुविधा के लिये बहुत कम रखा गया है । आज ही अपनी प्रति के लिए मनीआर्डर भेज दे ।

मुल्य · पच्चीस नये पैसे

प्रेस में

कठपुतली . कला और सयस्याए ।
अनुवाद कला और समस्याए ।
समान लिपि एक सगोष्ठी ।

उद्योग-व्यापार पत्रिका
की एक और अद्वितीय देन

'निर्यात संवर्द्धन विशेषांक'

'उद्योग-व्यापार पत्रिका' का अप्रैल 1962 अंक 'निर्यात संवर्द्धन विशेषांक' के रूप मे प्रकाशित किया जा रहा है। पत्रिका के स्थायी स्तम्भो के अतिरिक्त इस विशेषांक मे निर्यात सवर्द्धन सम्बन्धी विविध परिषदो के गत तथा भावी कार्यकलापो की जानकारी विषयक अनेक सचित्र लेख होंगे। स्मरण रहे 'निर्यात संवर्द्धन विशेषांक' 'उद्योग-व्यापार पत्रिका' के प्रेमी पाठको की सेवा मे 18वा विशेषांक होगा। इसमें कुछ विशेष लेख इस प्रकार होगे –

चमड़े का निर्यात	लाख के निर्यात की सम्भावनाए
खेलो के सामान का निर्यात सवर्द्धन	काजू और उसका निर्यात सवर्द्धन
भारतीय तम्बाकू	सूती कपडा उद्योग

अनेक चित्रो से सुसज्जित 120 पृष्ठो के इस विशेषांक का मूल्य होगा—केवल पचास नये पैसे, जिसे आप पोस्टल आर्डर अथवा मनी आर्डर द्वारा भेजकर अपनी प्रति सुरक्षित करा लें।

डाक टिकट स्वीकार नही किए जाते

विशेषांक विज्ञापन का अनुपम साधन सिद्ध होगा। अत इच्छुक विज्ञापनदाता शीघ्र ही अपने विज्ञापन-आर्डर भेजकर स्थान सुरक्षित करा लें।

विशेषांक प्रत्येक दृष्टिकोण से संग्रहणीय होगा।

एजेंटो को भरपूर कमीशन

निदेशक, व्यापार प्रकाशन निदेशालय, वाणिज्य तथा उद्योग मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली

अपूर्व शोध-पत्रिका और पंजाब की प्रबुद्ध प्रतिभा का प्रतीक।

सप्तसिन्धु

(मासिक)

जो निरन्तर सात वर्षो से साहित्य-साधना के क्षेत्र मे मौलिक
चिन्तन, स्वस्थ परम्परा, अपूर्व लोकप्रियता के नये मानदण्ड स्थापित कर रहा है।

इसके शोध-भाग मे आप को—	ज्ञानवर्धक लेख	शोध-पूर्ण निबन्ध
	भाषावैज्ञानिक निष्कर्ष	ऐतिहासिक अनुसन्धान
	आलोचनात्मक अध्ययन	साहित्यिक मूल्याकन
तथा जन पाठक भाग मे—	मार्मिक कविताएं	रोचक लोक-वार्ताए
	मनोरंजक कहानिया	मनोहारी विवरण
	भावात्मक निबन्ध	व्यग चित्र

सम्बन्धी नवीनतम एव उत्तमोत्तम सामग्री उपलब्ध होगी।

आकर्षक आवरण, सुन्दर गेट अप, बढिया छपाई के साथ।

जन-जागरण और साहित्य-सेवा के इस अनुष्ठान मे आप भी हमारे सहयोगी हो सकते है —
अपनी श्रेष्ठ रचना भेज कर, स्वय ग्राहक बन कर, इष्टमित्रो को ग्राहक बनवाकर, अपने अमूल्य सुझाव भेजकर,
—क्योकि सप्तसिन्धु आपका अपना पत्र है।

वार्षिक चन्दा छ. रु० मात्र — एक प्रति का मूल्य पचास नये पैसे

पत्र-व्यवहार इस पते पर कीजिये —

सम्पादक-सप्तसिन्धु, हिन्दी विभाग, पंजाब, पटियाला।

रेलवे मंत्रालय, भारत सरकार का, रेलवे सम्बन्धी प्रामाणिक जानकारी से परिपूर्ण एकमात्र सचित्र हिन्दी मासिक

भारतीय रेल

अवश्य पढिये, क्योकि इसमें बताया जाता है कि.—

देश के आर्थिक विकास मे रेलो का क्या योग रहा है और भविष्य में क्या करने का विचार है, हमारे दैनिक, सामाजिक, राजनीतिक एव सास्कृतिक जीवन को रेले कितना प्रभावित करती है भारतीय रेलो का निर्माण किन कठिनाइयो पर विजय पा कर किया गया है और आज किस प्रकार बढ़ते देश में रेलो का कितना जाल फैल चुका है, अपना सामान स्वय बनाने लगने में रेलो ने क्या–कितनी सफलता पायी है और यात्रियो की सुविधाए बढाने तथा यात्रा को सुखद बनाने के लिए क्या–कुछ किया जा रहा है।

आर्ट पेपर पर सादे एव रगीन चित्रो से सज्जित इस पत्रिका को गीत, कहानियो एव विशेष लेखो से रोचक बनाया जाता है। पत्रिका के अन्य स्थायी स्तम्भ · (1) सुना आपने (2) रेलो के अचल से (3) रेलवे शब्दावली और हिन्दी पर्याय (4) कुछ विदेशी रेलो से (5) भारतीय रेले· सौ साल पहले और अब।

एक प्रति का मूल्य 60 न० पै०, वार्षिक मूल्य 6 रु० तथा रेल कर्मचारियो के लिए रियायती वार्षिक शुल्क 4 रु० मात्र।

आज ही ग्राहक बनिये।

नमूना पत्र लिखकर मगाइये। एजेन्टो को भरपूर कमीशन।

"भारतीय रेल" विज्ञापन का अच्छा साधन है।

संपादक,
भारतीय रेल,
पो० बा० 467, नयी दिल्ली

हिन्दी विभाग, पजाब का नया प्रकाशन

जन-साहित्य

मासिक

जो अपनी अनूठी और रोचक सजधज के साथ शीघ्र ही पाठको के हाथ मे होगा।

यह मासिक पत्र

—हिन्दी मे नवीन एव उत्कृष्टतम साहित्य साधना का प्रतिनिधि होगा ?
—विभिन्न प्रान्तीय भाषाओ की उच्चतम कृतिओ का सकलन होगा।
—विश्व की उन्नत भाषाओ के साहित्य का दर्पण होगा।
—पजाब की प्रबुद्ध साहित्य चेतना का स्वर मुखरित करेगा।
—पजाब के उदीयमान लेखको के लिये प्रोत्साहन का केन्द्र बनेगा।

इस पत्र के प्रत्येक अक मे आपको मार्मिक कविताएं, मनोरंजक कहानिया, भावात्मक लेख, रोचक लोकवार्ता, मनोहारी विवरण, व्यंग्य-विनोद, एवं अनेक स्थायी स्तम्भों के रूप मे रूचिपूर्ण एव उत्तमोत्तम सामग्री उपलब्ध होगी।

आज ही छ रुपये भेज कर वार्षिक ग्राहक बनिये। अपनी उत्कृष्ट रचना भेज कर सहयोग दीजिए

एक प्रति का मूल्य 50 नये पैसे — वार्षिक चन्दा 6 रुपये मात्र

पत्रव्यवहार के लिये पता—

निदेशक, हिन्दी विभाग, पंजाब, पटियाला।